कयमास-वध

[पृथ्वीराज रासो]

—राकेश एम० ए०

कयमास-वध
(पृथ्वीराज रासो)

कयमास-वध

[पृथ्वीराज रासो]

(मूल पाठ, विस्तृत व्याख्या, विश्लेषण और आलोचना सहित)

संपादक
श्री राकेश, एम० ए०

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

अपनी बात

'पृथ्वीराज रासो' हिन्दी का आदि महाकाव्य है। इसकी प्रामाणिकता अप्रामाणिकता के सम्बन्ध में जो विद्वानों में खण्डन-मण्डन या विवाद चलता रहा, वह अब भी उसी रूप में है। यदि इस विवाद को छोड़कर देखा जाय तो निःसन्देह 'पृथ्वीराज रासो' काव्य-कौशल से पूर्ण उत्कृष्ट कृति है। अनेक विद्वानों के मतों को दृष्टि में रखते हुए रासो की प्रामाणिकता और अप्रामाणिकता के सम्बन्ध में मैंने अपनी मान्यताएँ स्थिर की हैं, लेकिन मेरा मुख्य दृष्टिकोण कृति का साहित्यिक अध्ययन प्रस्तुत करने का ही रहा है।

'पृथ्वीराज रासो' के अन्तर्गत 'कयमास-वध' एक अवान्तर घटना है। इसके द्वारा जहाँ पहले के कथानक से शृङ्खला जुड़ती है, वहाँ पृथ्वीराज के कन्नौज-गमन, संयोगिता-हरण और जयचन्द से युद्ध की पृष्ठभूमि भी बनती है। 'कयमास-वध समय' में कवि का सर्वाधिक रसानुभूति पूर्ण अभिव्यक्ति कौशल व्यक्त हुआ है। इसकी भाषा अपभ्रंश और डिंगल से इतनी अधिक प्रभावित है कि पाठक सरलता से रसास्वादन करने में असफल रहते हैं। मेरा उद्देश्य इस कृति में 'कयमास-वध' (पृथ्वीराज रासो) का प्रामाणिक मूल पाठ सरल-सुबोध टीका के साथ विभिन्न विश्वविद्यालयों के एम० ए० के छात्रों के लिए साहित्यिक मूल्यांकन सहित प्रस्तुत करना रहा है। मुझे विश्वास है कि मेरी इस कृति के द्वारा सामान्य पाठकों एवं छात्रों के लिए 'कयमास-वध' का अध्ययन एवं 'पृथ्वीराज रासो' के काव्य-सौष्ठव की परख सुगम हो जायगी।

प्रस्तुत कृति के सृजन में मैंने अनेक विद्वानों की कृतियों और शोध कार्य का आश्रय लिया है। अतः इसमें जो कुछ उत्तम बन पड़ा है, वह उन्हीं की महती कृपा का फल है। अतः मैं बड़ी विनम्रता से इस कृति को उन्हीं को सादर और सप्रेम समर्पित करता हुआ सन्तोष-लाभ करता हूँ—

"मेरा मुझको कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर।
तेरा तुझको सौंपता, क्या लागै है मोर॥"

—राकेश

द्वितीय संस्करण

पाठकों ने जिस रुचि से **'कयमास-वध'** को अपनाया, उसका आभार प्रकट करते हुए मैं द्वितीय संस्करण प्रस्तुत कर रहा हूँ। 'पृथ्वीराज-रासो' जैसे विवाद-ग्रस्त प्राचीन काव्य के पाठ की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में दावा करना तो कोरा अहं ही होगा, परन्तु जहाँ तक सम्भव हो सका, तत्कालीन भाषा-प्रवृत्ति और व्याकरण के नियमों को दृष्टि में रखते हुए शुद्ध पाठ देने का मेरा प्रयास रहा है। मुझे इसमें कहाँ तक सफलता मिली है, इसका निर्णय विद्वान ही करेंगे। मूल पाठ के सम्बन्ध में जो सुझाव सुविज्ञ पाठकों और विद्वानों से प्राप्त होंगे, उन पर साभार विचार करते हुए आगामी संस्करण में स्थान दूँगा।

मैं संचालक 'विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा' का हृदय से आभारी हूँ, जिन्होंने इस पुस्तक से सम्बन्धित आवश्यक सामग्री-संकलन में पूर्ण सहयोग दिया।

—राकेश

अनुक्रमण

क्रम | पृष्ठ

पृथ्वीराज रासो

१. रासो काव्य-परम्परा और पृथ्वीराज रासो

२. कथानक में इतिहास और प्रामाणिकता

प्रश्न पृष्ठ

(ङ) कयमास-वध

प्रश्न | पृष्ठ

कयमास-वध

[पृथ्वीराज रासो]

भूमिका

रासो-परम्परा

'पृथ्वीराज रासो' रासो काव्य की एक निश्चित एवं पुष्ट परम्परा का विकसित रूप है। इस परम्परा का 'सन्देश रासक' प्रथम ग्रन्थ है। 'भरतेश्वर बाहुवली रास', 'बुद्धि रास', 'जीवदया रास', 'चन्दनवाल रास', 'उपदेश रसायन रास', 'गयसुकुमाल रास', 'मुक्तावलि रास', 'वीसलदेव रासो', 'जम्बूस्वामी रास', 'रेवन्तगिरि रास', 'कच्छुनि रास', 'गोतम रास', 'दशार्णभद्र रास', 'वस्तुपाल-तेजपाल रास', 'श्रेणिक रास', 'पेठड़ रास', 'समरसिंह रास', 'सप्तक्षेत्रि रास', 'कुमारपाल रास' आदि इसी प्रकार के ग्रन्थ हैं। 'पृथ्वीराज रासो' के पश्चात् जो रासो काव्य मिलते हैं, उनमें 'हम्मीर रासो','परमाल रासो' और 'विजयपाल रासो' ही प्रमुख हैं। पूर्ववर्ती और परवर्ती कोई भी रासो काव्य 'पृथ्वीराज रासो' की समता में नहीं ठहर सकता। 'पृथ्वीराज रासो' हिन्दी का प्रथम पुष्ट महा-काव्य है। यह एक विशाल काव्य-ग्रन्थ है। इसमें महाकाव्य के समस्त शास्त्रीय लक्षणों का निर्वाह हुआ है। मिश्रवन्धुओं ने चन्दवरदाई की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए लिखा है :—

"चन्दवरदाई की कविता से प्रकट होता है कि वह प्रौढ़ रचना है और छन्द आदि की रीतियों पर उसमें ऐसा अनुगमन हुआ है, जान पड़ता है कि यह महाशय दृढ़ रीतियों पर चलते थे और स्वयं उन्होंने हिन्दी-काव्य रचना की नींव डाली है।"

'पृथ्वीराज रासो' रासो काव्य-परम्परा का पुष्ट और सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है। इस विशालकाय महाकाव्य में वर्णन-विस्तार, छन्दों की विविधता, वर्णन-सम्बन्धी प्रवन्ध-कौशल और कलात्मकता आदि सभी कुछ मिलता है। आद्यान्त वर्णन-चातुरी, वाग्वैदग्ध्य और कवि-कौशल प्रकट हुआ है। कला-विस्तार और वर्णन-कौशल की दृष्टि से 'पृथ्वीराज रासो' अप्रतिम है।

ऐतिहासिकता और प्रामाणिकता

'पृथ्वीराज रासो' में इतिहास-प्रसिद्ध हिन्दू-सम्राट पृथ्वीराज के युद्धों, विवाहों, उनसे सम्बन्धित घटनाओं और शाहबुद्दीन गोरी से युद्धों का वर्णन बड़ी व्यापकता से हुआ है। प्राचीन काव्य-ग्रन्थ होने के कारण रासो के संस्करणों में प्रक्षिप्त अंश बहुत अधिक आ गया है। अतः यह निर्णय करना सरल नहीं है कि इसका कितना भाग ऐतिहासिक, कितना कल्पना-प्रसूत और कितना प्रक्षिप्त है। 'पृथ्वीराज रासो' की ऐतिहासिकता और प्रामाणिकता के सम्वन्ध में विद्वानों में जितना अधिक विवाद रहा, उतना किसी अन्य ग्रन्थ के सम्वन्ध में नहीं। इतिहास के अनेक विद्वान इसको जाली और 'भट्ट-भणंत' कहते हैं। विद्वानों का दूसरा वर्ग इसे प्रामाणिक ग्रन्थ मानता है। विंसेन्ट स्मिथ ने 'पृथ्वीराज रासो' को निरर्थक ग्रन्थ घोषित करते हुए लिखा है :—

"आज रासो जिस रूप में प्राप्त है, इतिहास की दृष्टि से भ्रान्तिपूर्ण और महत्त्वहीन है।"

परन्तु कर्नल टॉड ने अपने ग्रन्थ 'एनल्स ऐण्ड एंटिक्विटीज ऑव राजस्थान' में 'पृथ्वीराज रासो' को ऐतिहासिक ग्रन्थ मानते हुए उसकी प्रशंसा की है :—

"चन्द की कृति अपने समय का विश्व इतिहास है। पृथ्वीराज के अद्भुत कार्यों से सम्वन्धित इन उनहत्तर अध्यायों और एक लाख छन्दों में राजस्थान के प्रत्येक प्रतिष्ठित वंश के पूर्वजों का कुछ-न-कुछ विवरण मिल जाता है।"

कविराजा श्यामलदास, मुरारिदान, डा० बूलर, मुन्शी देवीप्रसाद, डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, अमृतशील डा० रामकुमार वर्मा, पं० मोतीलाल मेनारिया पृथ्वीराज रासो को अप्रामाणिक ग्रन्थ मानते हैं। उदयपुर के कविराजा श्यामलदास और जोधपुर के मुरारिदान ने 'एशियाटिक सोसाइटी' के जर्नल में एक लेख प्रकाशित कराकर घटनाओं, संवतों, भाषा आदि के आधार पर 'पृथ्वीराज रासो' की ऐतिहासिकता और प्रामाणिकता का खण्डन करते हुए निम्न निष्कर्ष दिये :—

१. 'पृथ्वीराज रासो' चन्द लिखित प्रामाणिक ग्रन्थ नहीं है। इसकी रचना चन्द से कई शताब्दी पश्चात् हुई।

२. कोटारिया अथवा वेदला के चौहानों के किसी भाट ने चन्द के नाम

से रचना की। 'पृथ्वीराज रासो' की रचना पृथ्वीराज के समय के चन्दवरदाई के द्वारा नहीं हुई।

३. रासो में दिये गये सम्वत् और तिथियाँ अशुद्ध हैं।

४. इसमें १० प्रतिशत के लगभग फारसी के शब्दों का प्रयोग हुआ है।

५. रासो का निर्माण वि० स० १६४०–१६७० के बीच हुआ।

६. वाक्य-विन्यास और भाषा-शैली से स्पष्ट है कि इसकी रचना राजपूताना में अवश्य हुई।

डा० बूलर ने 'पृथ्वीराज विजय' को प्रामाणिक ग्रन्थ मानते हुए उसके आधार पर पृथ्वीराज रासो को अप्रामाणिक मानकर कविराजा श्यामलदान की मान्यता को पुष्ट कर दिया। मुंशी देवीप्रसाद ने भी 'पृथ्वीराज विजय' को कसौटी मानते हुए रासो की अप्रामाणिकता घोषित की। डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने 'पृथ्वीराज रासो' को पूर्ण रूप से अनैतिहासिक और अप्रामाणिक ग्रन्थ घोषित किया। उनके निष्कर्ष निम्न प्रकार हैं—

(१) १६वीं शताब्दी के पहले के शिलालेखों और पुस्तकों में अग्निवंश के यज्ञ के सम्बन्ध में कोई बात नहीं मिलती। जयानक के 'पृथ्वीराज विजय' तथा 'हम्मीर' महाकाव्य में चौहानों को सूर्यवंशी माना गया है। १७वीं शताब्दी पूर्व 'अग्निवंश' विषयक कोई सामग्री नहीं मिलती। अतः 'रासो' पृथ्वीराज के समय में न लिखा जाकर १७वीं शताब्दी के ही आस-पास लिखा गया प्रतीत होता है।

(२) 'पृथ्वीराज रासो' में चौहानों की दी गई वंशावली, अशुद्ध है।

(३) 'रासो' के अनुसार पृथ्वीराज की माता का नाम कमला था, जो दिल्ली के राजा अनंगपाल की पुत्री थी। परन्तु 'पृथ्वीराज विजय', 'हम्मीर महाकाव्य' तथा 'सुर्जन चरित्र' में पृथ्वीराज की माता का नाम कर्पूरमंजरी दिया गया है, जो चेदि के कलचुरि राजा अचलराज की पुत्री थी।

(४) 'पृथ्वीराज रासो' में पृथ्वीराज की बहन पृथाकुमारी का विवाह मेवाड़ के रावल समरसिंह के साथ होना बतलाया गया है। परन्तु रावल समरसिंह पृथ्वीराज की मृत्यु (सं० १२४६) के १०६ वर्ष (सं०१३५८) तक विद्यमान रहे। अतः पृथा का उनके साथ विवाह होना संभव नहीं है। सं० १३३० और १३५२ के बीच में प्राप्त शिलालेखों में भी इसका उल्लेख नहीं है।

(५) रासो के अनुसार पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर की मृत्यु गुजरात के राजा भीमदेव के हाथों हुई। अपने पिता की मृत्यु का प्रतिशोध लेने के लिये पृथ्वीराज ने भीमदेव का वध किया। ये दोनों घटनायें कल्पित हैं। एक प्राप्त दानपत्र के अनुसार भीमदेव का समय सं० १२३५ से १२९८ तक है।

(६) रासो में पृथ्वीराज के जिन अनेक विवाहों का वर्णन किया गया है, वे कल्पित हैं।

(७) इस प्रकार 'रासो' की घटनाएँ अनैतिहासिक हैं।

(८) 'रासो' की भाषा १३वीं शताव्दी की न होकर वि० सं० की १६वीं शताव्दी के आसपास की है। उसमें १० प्रतिशत फारसी के शव्द पाये जाते हैं।

(९) 'रासो' के सम्बत् काल्पनिक हैं। 'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार वीसलदेव का राज्यारोहण वि० सं० ८२१ है। उनके शिलालेख वि० सं० १२१०,१२११ तथा १२२० के मिले हैं। अतः उनका राज्याभिषेक वि० सं० ८२१ किसी प्रकार भी नहीं माना जा सकता।

ओझा जी के आधार पर ही आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डा० रामकुमार वर्मा, अमृतशील, पं० मोतीलाल मेनारिया आदि विद्वानों ने 'पृथ्वीराज रासो' को अनैतिहासिक और अप्रामाणिक ग्रन्थ माना है।

उपर्युक्त मतों का खंडन करते हुए पं० मोहनलाल विष्णुलाल पाण्डया, डा० ग्रियर्सन, मिश्रबन्धु, डा० श्यामसुन्दरदास, पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, मथुरा प्रसाद दीक्षित, डा० दशरथ शर्मा, मुनि जिन विजय, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, श्री कविराज मोहनसिंह ने रासो की प्रामाणिकता और ऐतिहासिकता के पक्ष में अपना मत दिया है।

डा० विपिनविहारी त्रिवेदी ने अपने 'रेवातट' की भूमिका में रासो के सम्बन्ध में सन्तुलित विचार निम्न प्रकार प्रकट किये हैं—

"कवि चन्दवरदाई की मूल कृति विकृत रूप में निस्संदेह उपस्थित है, जिसका पृथक किया जाना दुःसाध्य भले ही हो, असाध्य नहीं। इस प्रकार बिना 'पृथ्वीराज रासो' का अवलोकन किये 'रासोसार' मात्र पढ़कर कविराजा श्यामलदान और विशेषकर म० प० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के रासो विरोधी तर्क जानकर तदनुसार राग अलापना अपेक्षाकृत आसान है। आज रासो की

समस्या उसे अप्रामाणिक सिद्ध करने की इतनी नहीं है, जितनी उसके अन्दर से उसके प्रक्षेप-जाल का आवरण दूर करने की है।"

'पृथ्वीराज रासो' सर्वथा भट्ट-भणंत, अप्रामाणिक और अनैतिहासिक ग्रन्थ नहीं है। चन्द अन्तिम हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज चौहान के समकालीन और उसके दरवारी कवि थे। आज रासो का मूल रूप प्राप्त नहीं है। उसमें प्रक्षिप्त अंश वरावर मिलता रहा और आज वह वृहदाकार रूप में सामने है। चन्द ने पृथ्वीराज के समय में ही उसके मूल रूप की रचना की, परन्तु वाद में प्रक्षिप्त छन्द उसमें स्थान पाते गये। वर्तमान में प्राप्त 'पृथ्वीराज रासो' प्रक्षिप्त संकलन मात्र है। संकलन कर्त्ताओं की कृपा से ही अनैतिहासिक तथ्य रासो में वढ़ते चले गये।

महाकाव्यत्व

'पृथ्वीराज रासो' हिन्दी का सर्वप्रथम विशाल ग्रन्थ और महाकाव्य है। अनेक विद्वान इसके महाकाव्यत्व को स्वीकार करते आये हैं। परन्तु उदय नारायण तिवारी और डा० श्यामसुन्दरदास 'पृथ्वीराज रासो' को महाकाव्य के रूप में स्वीकार नहीं करते। डा० श्यामसुन्दरदास इसे महाकाव्य न मानकर एक विशालकाय वीर काव्य मानते हैं। इसी प्रकार उदयनारायण तिवारी स्थान स्थान पर कथानक की शिथिलता और घटनाओं की अनेकरूपता का दोष वतलाकर इसके महाकाव्यत्व को स्वीकार नहीं करते। वावू गुलावराय ने 'पृथ्वीराज रासो' को अपने 'काव्य के रूप' ग्रन्थ में 'स्वाभाविक विकासशील महाकाव्य', (ऐपिक ऑफ ग्रोथ) माना है। पं० मोतीलाल मेनारिया पृथ्वीराज रासो में महाकाव्य की भव्यता और दृश्यकाव्य की सजीवता मानते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे एक सफल काव्य माना है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित रासो के सम्पादकों ने इसे 'साहित्य दर्पण' में मिलने वाले लक्षणों से युक्त महाकाव्य कहा है। डा० विपिनविहारी ने कतिपय त्रुटियों का निर्देशन करते हुए भी 'पृथ्वीराज रासो' के महाकाव्यत्व को स्वीकार किया है।

'पृथ्वीराज रासो' भारतीय आचार्यों द्वारा दिये गये महाकाव्य के लक्षणों की कसौटी की दृष्टि से सफल है। यह विशालकाय चरित्रात्मक महाकाव्य है। इसमें ढाई हजार पृष्ठ और सोलहसौ से भी अधिक छन्द हैं। सारा कथानक ६९ समयों (सर्गों, अध्यायों) में विभाजित है। प्रवन्धात्मकता की दृष्टि से

कथानक की शिथिलता का दोष लगाया जाता है। यह दोष प्रक्षिप्त अंशों के प्रवेश पा जाने का परिणाम है। सारी घटनाएँ पृथ्वीराज से सम्बन्धित होकर उनके चरित्र विकास में सहायक बनी हैं। चन्द ने कथानक के अन्तर्गत मार्मिक स्थलों का अनुभूतिपूर्ण वर्णन किया है। कथानक की विशाल योजना और वस्तु-गठन की दृष्टि से 'पृथ्वीराज रासो' सफल महाकाव्य है।

'पृथ्वीराज रासो' का कथानक लोक-विश्रुत है। पृथ्वीराज, भीमराव चालुक्य, संयोगिता परमर्दि चन्देल, कयमास, शाहबुद्दीन गोरी आदि इतिहास प्रसिद्ध हैं। इस महाकाव्य की कथा का प्रारम्भ ओंकार (ब्रह्म) गुरु, सरस्वती, विष्णु, शिव तथा ब्रह्मा की प्रार्थना के मंगलाचरण से होता है। कथानक के नायक हिन्दू-सम्राट् पृथ्वीराज चौहान धीरोदात्त नायक हैं। उनमें एक धीरोदात्त नायक के समस्त उदात्त गुण विद्यमान हैं। इसमें आठ से अधिक अर्थात ६९ समय (सर्ग) हैं। प्रत्येक सर्ग में छन्दों की एकता के महाकाव्यीय नियम का पालन नहीं हुआ है। छन्दों के आधिक्य तथा वड़ी शीघ्रता से छन्द-परिवर्तन के कारण कथानक में कहीं भी अस्वाभाविकता और अरोचकता नहीं आने पाई। सर्गान्त में आगे के सर्ग की कथा की सूचना मिल जाती है। वर्ण्य-कथा के आधार पर समय (सर्ग) का नामकरण हुआ है। जैसे 'पद्मावती समय', 'रेवातट', 'चित्र-लेखा समय', 'नाहरराय समय' आदि। महाकाव्य का नामकरण चरित्र नायक पृथ्वीराज के नाम पर है। रस-योजना की दृष्टि से नव-रस योजना है, किन्तु अंगी रस वीर रस है। वीर रस के साथ में शृङ्गार-रस सहायक बनकर उपस्थित हुआ है। भारतीय महाकाव्यों के कथानक के अन्तर्गत नाटकीय संधियों की अन्विति आवश्यक मानी गई है। 'पृथ्वीराज रासो' में नाटकीय संधियों का प्रयोग कुछ शिथिल है। चतुर्वर्ग की प्राप्ति में रासो में मोक्ष्य फल साध्य है; अर्थ, धर्म और काम की भा उपेक्षा नहीं है। 'पृथ्वीराज रासो' में खलों की निन्दा और सज्जनों की स्तुति तत्त्व का भी पालन हुआ है। पहले समय के छन्द-संख्या ५१-५२ में खल और सज्जन दोनों को स्मरण किया गया है।

पृथ्वीराज रासो में संध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, अन्धकार, दिन, प्रभात, आखेट, वन, पर्वत, सागर, संयोग-वियोग, युद्ध, विवाह आदि का सांगोपांग वस्तु-वर्णन है। 'पृथ्वीराज रासो' में भारतीय काव्यशास्त्र की दृष्टि से महाकाव्य के समस्त लक्षण मिलते हैं। इसमें यह महान् जीवन-सन्देश है कि सम्मान और

राष्ट्र की रक्षा के लिए पृथ्वीराज की तरह जीवन का उत्सर्ग कर देना चाहिए। इस महान् सन्देश के कारण 'रासो' सदैव अमर रहेगा।

'पृथ्वीराज रासो' एक विशाल महाकाव्य है। इसमें मुख्य कथानक के साथ असंख्य घटनाएँ और प्रसंग आये हैं। ऊपर से देखने में समय (सर्ग) स्वतन्त्र लगते हैं और कहीं-कहीं पर कथानक भी शिथिल दिखाई देने लगता है, परन्तु सत्य यह है कि प्रत्येक घटना और प्रत्येक प्रसंग चरित्र-नायक से सम्बन्धित होकर कथानक के विकास में सहायक हो गया है। कथानक की एकरसता के बीच में आये हुए अनुभूतिपूर्ण मार्मिक स्थलों के वर्णन, कथानक को रोचकता प्रदान करते हैं। आज 'पृथ्वीराज रासो' का जो वृहदाकार रूप सामने है उसमें प्रक्षिप्त अंश बहुत मिल चुका है; इसीलिए उस पर वस्तु-संविधान में शिथिलता और घटनाओं में अन्विति न होने का दोष लगाया जाता है। परन्तु महाकवि चन्द का मूल 'पृथ्वीराज रासो' सर्वथा निर्दोष महाकाव्य होगा, यह उसके वर्तमान रूप से सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

चरित्र-चित्रण

'पृथ्वीराज रासो' एक विशाल वीर काव्य है। इसमें पात्रों की संख्या असंख्य है। कथानक के सभी पात्र असामान्य वीरता का प्रदर्शन करते हैं। पृथ्वीराज कथानक के नायक हैं। एक धीरोदात्त नायक के समस्त उदात्त गुण उनमें विद्यमान हैं। सारे कथानक में आद्यान्त उन्हीं का गरिमामय चरित्र विकसित हुआ है। उनके पश्चात् महाकवि चन्दवरदाई ही एक ऐसे पात्र हैं जिनकी स्थिति समान्तर रूप से आद्यान्त बनी रही है। संयोगिता जैसी प्रमुख पात्री का, जो कि नायिका का स्थान ग्रहण करती है, चरित्र अधूरा ही सामने आता है। वह पृथ्वीराज के साथ दिल्ली आकर एक मुग्धा युवती के रूप में विलास में डूब जाती है। इसके पश्चात् शाहबुद्दीन से युद्ध आदि की लम्बी घटनावली में रासोकार उसे स्मरण तक नहीं करता।

जयचन्द और शाहबुद्दीन गोरी को कथानक में प्रतिनायक का स्थान प्राप्त है। वे पृथ्वीराज के प्रबल प्रतिद्वन्द्वी भी हैं। रासोकार ने उनकी वीरता का विकास नहीं दिखाया है। चन्द ने जयचन्द की तुलना में पृथ्वीराज को वास्तविक शूर कहा है। परन्तु जयचन्द की शूरता के कृत्यों का विस्तार और विकास नहीं है, जिससे पाठक स्वयं तुलना करके सन्तुष्ट हो सके। शाहबुद्दीन गोरी में

वीरता के स्थान पर नृशंसता ही रासोकार ने अधिक दिखाई है। वह पृथ्वीराज से ग्यारह बार पराजित होता है। पृथ्वीराज ने उसे छोड़कर अपनी वीरता, उदारता और क्षमाशीलता का परिचय दिया, परन्तु शाहवुद्दीन पृथ्वीराज को अन्तिम युद्ध में बन्दी बनाकर ले जाता है और उसकी आँखें निकलवाकर बन्दी-गृह में डाल देता है। उसकी इस पशु-तुल्य नृशंसता और जघन्यता पर पाठक क्षुब्ध होता है पृथ्वीराज के शब्द-बेधी वाण से उसका वध देखकर सन्तोष एवं आनन्द की प्राप्ति होती है। शाहबुद्दीन की नृशंस वीरता और कालिमामय चरित्र ही सामने आया है।

अन्य पात्रों में अनेक सामन्त हैं, जिनका वीर चरित्र एक झाँकी के रूप में सामने आता है। उनके युद्धों और वीरतापूर्ण कृत्यों का रासोकार ने अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया है। हरीसिंह, कनक बड़ गूजर, निडर राठौर, कान्ह, अल्हन, अचलेस, सलप, लपन आदि सामन्त पृथ्वीराज की रक्षा में प्राणोत्सर्ग करते हुए दिखाई पड़ते हैं। शाहबुद्दीन गोरी के कुछ सेनापतियों के नाम का भी उल्लेख हुआ है।

काव्य-सौन्दर्य

काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से 'पृथ्वीराज रासो' एक अनुपम काव्य है। इसमें वस्तु-वर्णन और भाव-व्यंजना उच्च कोटि की है। कथानक का विकास पृथ्वीराज के शौर्य-प्रदर्शन और युद्ध-वर्णन में हुआ है। 'रासो' के प्रायः सारे युद्ध इच्छिनी, पद्मावती, संयोगिता आदि प्रेमिकाओं को लेकर हुए हैं। युद्धों का कारण राजकुमारियाँ होने के कारण वीर-रस के साथ में शृंगार-रस की धारा भी प्रवाहित हुई है। वस्तु-वर्णन वड़ा ही सजीव वन पड़ा है। सेना-सज्जा, सेना-प्रयाण, युद्ध, नगर, पनघट, उत्सव, नख-शिख और वारहमासा आदि के वर्णन वड़े रोचक हैं। वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद आदि के वर्णन भाषा, भाव, ध्वनि और विम्व उपस्थित करने की दृष्टि से उत्तम वन पड़े हैं। रूप-वर्णन के वड़े सजीव चित्र चन्द ने सजाकर रखे हैं।

रस-योजना

'रासो' में नव रस-योजना का सुन्दर निर्वाह हुआ है, जैसा कि रासोकार के निम्न कथनों से स्पष्ट है :—

"उक्ति धर्म विसालस्य, राजनीति नवं रसं।
षट भाषा पुराणं च कुरानं कथितं मया।
—आदि पर्व
रासो अभ-नव रस सरस, चन्द छन्द किय अमिय सम।
श्रृंगार, वीर, करुना, विभध, भय, अद्भुत हंसत सम।"

रासो में वीर-रस अंगी तथा अन्य रस वीर-रस के सहायक वनकर आये हैं। आलम्वन, उद्दीपन, अनुभाव, विभाव और संचारियों की सांगोपांग योजना वीर-रस की निष्पत्ति में सहायक हुई है। सेना-सज्जा और रण-प्रयाण के वड़े ही गतिशील चित्र उभरे हैं। पद्मावती समय में भाषा की धारावाहिकता में पृथ्वीराज द्वारा किये हुए युद्ध का सजीव चित्र प्रस्तुत हो गया है।

"गही तेग चहुआंन हिन्दवान रानं।
गजं जूथपरि कोपि केहरि समानं॥
करे रुंड 'मुंडं' करी कुंभ फारे।
वरं सूर सामंत हुंकि गर्ज भारे॥
करी चीह चिक्कार कर कलप भग्गे।
मदं तज्जियं लाज ऊंमंग मग्गे॥
दौरि गज, अंध चहुँआन केरो।
घेरियं गिरद्दं चिहौ चक्क फेरो॥
गिरद्दं उड़ी भान अँधार रैनं।
गई सूझि सुझ्झै नहीं मझ्झि नैनं॥"

पं० मोतीलाल मेनारिया ने लिखा है :—

"रासो की विशेषता यही है कि उसमें वीर हृदय के उच्छवास संग्रहीत हैं।"

रासो में वीर-रस के अन्तर्गत ही 'रौद्र' और 'वीभत्स' रस की व्यंजना हुई है। 'पृथ्वीराज रासो' में 'रस-योजना' की मुख्य विशेषता वीर और श्रृंगार-रस की मैत्री है। अनेक स्थलों पर वीर-रस के साथ में श्रृंगार-रस की व्यंजना हुई है। रूप और श्रृंगार-वर्णन की दृष्टि से निम्न प्रसंग वड़े अनूठे वन पड़े हैं :—

१. इञ्छिनी का श्रृंगार
२. पंडीरी दाहिमी रूप

३. पृथा का शृंगार
४. इन्द्रावती का रूप
५. हंसावती के शृंगार का वर्णन
६. अप्सराओं का सौंदर्य-वर्णन
७. संयोगिता का अंग-सौन्दर्य-वर्णन

सद्यःस्नाता इच्छिनी के सौन्दर्य का एक चित्र देखिए। वह मुनियों और योगियों का भी ध्यान भंग करने वाला है :—

"कवहूँ गहि सुक्त सिषंड वरैं, मनो नंषत केसन सिंधु सरैं।
जो सितं सित नीर लिलाट धसैं, सु मनो मिलि सोमहि गंग लसैं॥
जल में भिजि मुँहूँ कला, दुसरी, सुलरैं मनु बाल अतीन वरी।
वुधि चित्त उपंग कितीक कहौं, निज पट्टि अभै-व्रत वेद लहौं॥"

चन्द ने नख-शिख-वर्णन जितना सुन्दर किया है, उतना अन्यत्र दुर्लभ है। चन्द ने प्रिय समागम और सुरति-सुख का भी वर्णन किया है, परन्तु अन्य कवियों की तरह वर्णन में अश्लीलता नहीं आने पाई है।

विप्रलम्भ शृंगार के अंतर्गत पूर्वराग जनित विप्रलम्भ का निरूपण अधिक हुआ है। राजकुमारियाँ पृथ्वीराज के शौर्य-सौन्दर्य और गुणों की प्रशंसा सुनकर पृथ्वीराज की ओर आकर्षित होती हैं। मिलन में बाधाएँ उनकी प्रेम-पीड़ा को उद्दीप्त करती हैं। पृथ्वीराज का यश श्रवण करते ही पद्मावती प्रेम-पीड़ा में तड़पने लगती है। उसके तन-मन में पृथ्वीराज वस जाता है। वह शुक से शीघ्र ही दिल्ली जाकर बुला लाने को कहती है :—

"सुनत श्रवन प्रथिराज जस, उमँग वाल विधि अंग।
तन-मन चित चहुँआन पर, वस्यो सुरत्तह रंग।
× × ×
पदमावती विलषि वर बाल वेली,
कही कीर सौं वात तव हो इकेली।
झंट जाहु तुम कीर दिल्ली सुदेसं,
वरं चहुआंन जु आनौ नरेसं॥
आनौ तुम चहुँआंन वर, अस कहि इहैं संदेसं।
साँस सरीरहि जौ रहै, प्रिय प्रथिराज नरेसं॥"

विप्रलम्भ शृंगार के अन्तर्गत अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुण-कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता, मरण आदि काम-दशाओं का वर्णन मिल जाता है। रासो में विप्रलम्भ शृंगार पूर्वराग की अवस्था के ही अन्तर्गत है। साथ ही संयोग-शृंगार की तरह उसे विस्तार भी नहीं मिला है।

प्रकृति-चित्रण

'पृथ्वीराज रासो' में प्रकृति के भव्य चित्र अंकित हुए हैं। अधिकांश प्रकृति-वर्णन उद्दीपन के रूप में हुआ है, परन्तु उसकी सवसे बड़ी विशेषता यह है कि वह कथानक का अंग वन गया है। चन्द दरवारी कवि थे। राज दरवार की परिधि में रहते हुए भा उन्होंने प्रकृति के आलम्वन रूप में सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये हैं। षट्ऋतु-वर्णन 'रासो' के प्रकृति-वर्णन की अपनी विशेषता है। षट्ऋतु-वर्णन उद्दीपन के रूप में है। संयोगिता तथा अन्य रानियों के रति-भाव को प्रत्येक ऋतु आकर उद्दीप्त करती है और वे पृथ्वीराज को रोकना चाहती है। 'रासो' में आलंकारिक रूप में भी प्रकृति का पर्याप्त चित्रण हुआ है। नख-शिख-वर्णन में प्रकृति से चुन-चुनकर उपमान जुटाये गये हैं। प्रकृति के विभिन्न रूपों को लेकर उत्प्रेक्षा, रूपक तथा उपमा का सफल निर्वाह चन्द ने किया है।

कलापक्ष

भावपक्ष के समान ही 'पृथ्वीराज रासो' का कलापक्ष भी पुष्ट है। छन्द-योजना, अलंकार-योजना और भाषा की दृष्टि से यह अप्रतिम ग्रन्थ है।

छन्द-योजना

'रासो' में चन्दवरदाई का छन्द-कौशल अद्भुत है। उनके समान छन्दों पर अधिकार अन्य किसी कवि का नहीं मिलता। भावों के अनुसार छन्द वदलते रहते हैं। 'रासो' में लगभग वहत्तर प्रकार के मात्रिक, वर्णिक, संयुक्त तथा फुटकर छन्दों का प्रयोग हुआ है। इनमें कवित्त, छप्पय, दूहा, पद्धरी, गाहा, आर्या, मुरिल्ल, नाराच, त्रोटक, साटक, भुजंग प्रयात, तोमर आदि छन्द प्रमुख हैं। छप्पय छन्द अपेक्षाकृत अधिक प्रभावशाली वन पड़ा है। डा० नामवर सिंह का 'रासो' की छन्द योजना के सम्वन्ध में निम्नलिखित कथन सत्य ही है :—

"वस्तुतः हिन्दी में चन्द को छन्दों का राजा कहा जा सकता है। भाव-भंगिमा के साथ-साथ दनादन भाषा नए-नए छन्दों की गति धारण करती चलती है और विशेषता यह है कि बल खाती हुई नदी में वहते हुए चित्त को कोई मोड़ नहीं खटकता। छन्द-परिवर्तन के प्रवाह में सहज आत्म-विस्मृति का ऐसा सुख अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। रासो में एक ही साथ संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश की छन्द-परम्परा के पुनरुज्जीवन तथा हिन्दी के नूतन छन्द-संगीत के सूत्रपात की संधि-वेला है। इस तमाम छन्द-संघठन में भी रासो का अपना हिन्दी काव्योचित संगीत सर्वोपरि है।"

अलंकार-योजना

'पृथ्वीराज रासो' की अलंकार-योजना में पांडित्य-प्रदर्शन का प्रयास नहीं है और न व्यर्थ ही अलंकार ठूँसने की प्रवृति ही दिखाई पड़ती है। सभी अलंकार भावाभिव्यक्ति में सहायक वनकर सहज ही आ गये हैं। रासो में शब्दालंकार एवं अर्थालंकार—दोनों ही प्रकार के अलंकारों में सहजता और स्वाभाविकता का गुण मिलता है। डा० विपिनविहारी त्रिवेदी ने 'पृथ्वीराज रासो' की अलंकार-योजना के सम्वन्ध में कहा है :—

"कुछ अलंकारों को छोड़कर रासो में उनकी योजना स्वाभाविक रूप में है।"

अभिव्यक्ति-कौशल और भाषा

'रासो' में अभिव्यक्ति-कौशल देखते ही वनता है। अनुभूति और अभिव्यक्ति का सुन्दर समन्वय हुआ है। निम्न उदाहरण में उत्प्रेक्षा अलंकार के द्वारा कवि नव-युवती की सुकुमारता के साथ ही उसकी लज्जाशीलता, अनुराग और हृदय की उमंग आदि आन्तरिक भावों का चित्रण कर देता है। शशिव्रता मन्दिर की ओर वढ़ रही है। सखियाँ उसके साथ में हैं। मन्दिर में उसे पृथ्वीराज का प्रथम दर्शन हुआ। सुकुमार लज्जा भार-भरिता शशिव्रता की शोभा देखते ही बनती है। पृथ्वीराज ने उसकी वाँह पकड़ी, मानो गजराज ने लहराती हुई कंचन-लता को पकड़ लिया हो। यहाँ कवि की कवित्व शक्ति का पूरा परिचय मिलता है—

"चौहान हथ्थ बाला गहिय,
सो ओप्पम कवि चन्द कहि।

मानो कि लता कंचन लहरी,
मत्त वीर गजराज गहि ॥"

'रासो' में अभिव्यक्ति-कुशलता सबसे अधिक भाषाधिकार के रूप में देखी जा सकती है। कवि अपनी इच्छानुसार शब्दों का प्रवाह मोड़ देता है। प्रत्येक शब्द जैसे उसके इंगित पर नाचता हुआ दिखाई पड़ता हैं। उसने प्रत्येक शब्द बहुत तराश-तराश कर रखा है। शब्द-योजना इतनी समर्थ है कि वर्णनीय वस्तु का चित्र सा खड़ा हो जाता है। शब्द-चयन, पद-योजना की सार्थकता, ध्वन्यात्मकता, और नाद-सौन्दर्य रासो की भाषा की विशेषता है। 'रासो' की भाषा चित्र-विधायिनी है और भाषा-वैचित्र्य का उदाहरण प्रस्तुत करती है। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश हिन्दी के मिश्रण से रासो की भाषा का रूप बना है। यत्र-तत्र अरबी, फारसी के शब्द भी मिलते हैं। छन्द-परिवर्तन के आधार पर भाषा में परिवर्तन हुआ है। मात्रिक छन्दों के प्रयोग में भाषा का सहज रूप मिलता है। इसमें न तो अनुस्वार-रंजन मिलेगा और न समास एवं तत्सम् शब्दों के प्रयोग की अधिकता है। वर्णिक छन्दों की भाषा में संस्कृतमयता लाने का प्रयास किया गया है। रासो की भाषा के सम्बन्ध में डा० विपिनविहारी त्रिवेदी का निम्न निष्कर्ष द्रष्टव्य है--

"भाषा-शास्त्री को यदि भारत की गौड़ीय भाषाओं की अभिसंधि देखनी है, तो रासो से अधिक चमत्कृत करने वाला दूसरा कोई ग्रन्थ उसे न मिलेगा। विभिन्न भारतीय भाषाओं की संख्या में उसे अनोखे और क्रान्तिकारी सिद्धान्तों के नियमन का अवसर स्थल-स्थल पर आयेगा।......इसकी भाषा की परीक्षा करने पर कठिन समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इसमें वैदिक, संस्कृत, पालि, पैशाची, मागधी, अर्द्ध मागधी, शौरसेनी, महाराष्ट्री, अपभ्रंश, प्राचीन राजस्थानी, प्राचीन गुजराती तथा पंजाबी, ब्रज आदि भारतीय आर्य भाषाओं के शब्दों के अतिरिक्त अरबी, फारसी और तुर्की के शब्दों की अनोखी खिचड़ी तैयार मिलती है तथा देशज शब्दों की एक बड़ी संख्या है। परन्तु इस काव्य में कई शताब्दियों के अवान्तर में प्रक्षेपों का घटाटोप होते-होते भाषा का रूप और अधिक विकृत हो गया है। अनेक शब्दों के संस्कृत से लगाकर आधुनिक काल तक जितने रूपान्तर हुए, उन सबका प्रयोग 'रासो' में मिलता है। चन्द ने स्वयं रासो में छः भाषाओं, पुराण और कुराण का होना उल्लेख किया है—

"षट भाषा पुराणं च, कुराणं च कथितं मया ।
× × ×
संस्कृत प्राकृतं चैव, अपभ्रंश पिशाचिका ।
मागधी सूरसेनी च, षट भाषाश्चैव जायते ।।"

साहित्यिक दृष्टि से 'रासो' उत्कृष्ट महाकाव्य है । इसमें चन्द का उद्देश्य हमारी जतीय भावना का उत्थान है । स्वाधीन जाति की उठती हुई उमंगों, आकांक्षाओं के लिए रासो का चरितनायक युद्धों में कूद पड़ता है । शाहबुद्दीन से उसके सारे युद्ध देश-रक्षा के लिए ही होते हैं । उसके केलि-विलास का परिणाम चन्द ने उसकी पराजय के रूप में दिखाया है । अन्त में चन्द की उक्तियों से वह अधर्मी शत्रु का संहार कर 'धरती को वर-वधू' के समान उत्फुल्ल करने में भी सफल होता है । इस प्रकार चन्द का उद्देश्य सर्वत्र स्वाधीन जाति की उमंगों और आकांक्षाओं को चित्रित करना रहा है ।

कयमास-वध

[मूल पाठ]

[संक्षिप्त कथा, व्याख्या-विश्लेषण सहित मूल पाठ]

कयमास-वध की संक्षिप्त कथा

कथासार

संयोगिता के विरह-ताप में सन्तप्त पृथ्वीराज चौहान का मन स्थिर नहीं रहता। वह दिल्ली का शासन-भार प्रधान अमात्य कयमास को सौंपकर वन में दिन-रात आखेट में व्यतीत करने लगता है। इधर कयमास अन्तःपुर की सुन्दरी करनाटी दासी के विलास में निमग्न हो जाता है। एक तांबूल-वाहिनी को कयमास का यह प्रणय-प्रसंग मालूम हो जाता है, वह इसकी सूचना पटरानी को देती है। पटरानी तत्काल दासी से एक पत्र पृथ्वीराज के पास भेजकर सारी घटना सूचित करती है। पृथ्वीराज तत्काल आकर केलि-भवन में ही कयमास और करनाटी दासी का वध करते हैं। वे कयमास के शव को गडढे में गड़वा देते हैं और रात्रि में ही वन को लौट जाते हैं। उनके जाने और लौट आने की बात का पत' सेना और साथियों को नहीं लगता। कयमास-वध की सारी घटना सरस्वती स्वप्न में चन्द को वतलाती हैं और उसके आग्रह पर प्रत्यक्ष होकर स्पष्ट करती हैं। प्रातः होने पर पृथ्वीराज आखेट से लौट आते हैं और सभा जोड़ते हैं। वे कयमास के विषय में पूछते हैं, कोई कुछ नहीं बता पाता। चन्द कयमास-वध की सारी घटना सभा में बतलाता है। कयमास-वध का समाचार चारों तरफ फैल जाता है। कयमास की स्त्री सती होने के लिए चन्द से पति का शव दिलवाने की प्रार्थना करती है। चन्द पृथ्वीराज से शव देने का आग्रह करते हैं। पृथ्वीराज इस शर्त पर शव देना स्वीकार करते हैं कि चन्द उनको जयचन्द का दर्शन कराये। चन्द यह शर्त स्वीकार कर लेता है। पृथ्वीराज उसका अनुचर बनकर कन्नौज जाने को तैयार हो जाता है। कयमास का शव उसकी स्त्री को मिल जाता है। वह सती हो जाती है। पृथ्वीराज जयचन्द द्वारा किये गये अपमान से वहुत दुखी है। चन्द और पृथ्वीराज दोनों गले मिलते हैं। अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए पृथ्वीराज को सन्नद्ध देखकर चन्द को प्रसन्नता होती है। कयमास-वध की कथा का इतना ही सार है।

कथानक की पृष्ठभूमि

'कयमास-वध डा० माताप्रसाद गुप्त द्वारा संपादित 'पृथ्वीराज रासो' का तीसरा सर्ग है। दूसरा सर्ग 'जयचन्द का राजसूय और संयोगिता का प्रेमानुष्ठान' है। कयमास-वध के बाद की घटनाएँ निम्नलिखित हैं—

१. पृथ्वीराज का कन्नौज-गमन।
२. पृथ्वीराज का कन्नौज में प्राकट्य।
३. संयोगिता-परिणय।
४. पृथ्वीराज-जयचन्द-युद्ध।

'कयमास-वध' प्रसंग के द्वारा ये सारी घटनाएँ एकसूत्र में गुँथ गई हैं। कयमास-वध से पहले के 'समय' में पृथ्वीराज को जयचन्द के राजसूय और संयोगिता के प्रेमानुष्ठान का पता लग जाता है। उसे यह भी समाचार मिलता है कि जयचन्द ने उसे अपमानित करने के लिए राजसूय में द्वारपाल का काम सौंपा है। संयोगिता के प्रेम-विरह में पृथ्वीराज का मन जहाँ अस्थिर हो जाता है, वहाँ जयचन्द से अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए वह क्षुब्ध भी हो उठती है। वह दिल्ली का शासन-सूत्र प्रधान अमात्य कयमास को सौपकर वन में रहकर दिन-रात आखेट में व्यतीत करने लगता है। इसी पृष्ठभूमि में 'कयमास, वध' 'समय' की कथा आरम्भ होती है—

"तिहि तप आषेटक भमइ, थिर न रहइ चहुवान।
वर प्रधान जुग्गिनि पुरह, घर रष्षइ परवान॥"

संयोगिता के विरह में जलने के कारण पृथ्वीराज का मन स्थिर नहीं रहता। वह वन में आखेट करता हुआ मारा-मारा फिरता है। उसकी अनुपस्थिति में प्रधानामात्य कयमास दिल्ली के साम्राज्य की रक्षा करता हुआ शासन-सूत्र चला रहा है।

कयमास की केलि-विलास में निमग्नता

पृथ्वीराज वन में रहकर आखेट करते हुए अपने स्थिर-मन को शान्ति दे रहे थे। इधर राजसत्ता का सूत्र हाथ में लेकर कयमास विलासोन्मुख हो रहा था। वह स्त्रियों के साथ विलास-क्रीड़ा में फँस गया। इस प्रकार कामान्ध होकर वह प्रधानामात्य के कर्त्तव्य से च्युत हो गया। राजकीय सभागृह में एक अति सुन्दरी करनाटकी दासी थी, उसने कयमास को आकर्षित कर लिया।

दासी से प्रेम-निमंत्रण पाकर कयमास रात्रि का प्रथम प्रहर समाप्त होते दासी के महल में पहुँच गया और उसके साथ शय्या पर रति-क्रीड़ा में लग गया।

तांबूल-वाहिनी द्वारा पटरानी को सूचना

तांबूल-वाहिनी सखी कयमास और करनाटकी दासी के प्रणय-व्यापार को देख लेती है। वह पटरानी को सूचना देती है कि कयमास राजमहल में दासी के साथ रति-क्रीड़ा कर रहा है। पटरानी इस सूचना से क्रोधित हो उठती है।

पृथ्वीराज को सूचना

पटरानी कयमास और करनाटकी दासी की सारी घटना लिखकर एक दासी को पृथ्वीराज के पास भेजती हैं और उनको तत्काल बुलाती हैं। दासी क्षण-मात्र में पृथ्वीराज के आखेट-शिविर में पहुँच जाती है। उस समय पृथ्वीराज गहरी निद्रा में सो रहे थे। दासी अपने नूपुरों की मधुर ध्वनि से उनकी निद्रा भंग करती है। पत्र को सुनते ही पृथ्वीराज क्रोधित हो उठते हैं। आखेट के स्थान से वे महल में चले आते हैं। उनके आने की बात का पता उनके साथियों और सेना को नहीं चलता। महल में आकर पृथ्वीराज पटरानी और एक दासी को साथ लेकर कयमास के भवन में जाते हैं। कयमास करनाटकी दासी के साथ रति-क्रीड़ा कर रहा था।

कयमास-वध

कयमास को करनाटकी दासी के साथ रति-क्रीड़ा करते देखकर पृथ्वीराज क्रोध में उबल पड़ते हैं। उनका धनुष कयमास का वध करने के लिये चारों ओर घूमने लगता है। अत्यधिक क्रोध के कारण पृथ्वीराज की मुट्ठी और दृष्टि डोल गई, इससे पहला वाण अपने लक्ष्य से चूककर निकल गया। परमारी पटरानी ने उनके हाथ में दो वाण और दिये और उन्हें उत्तेजित किया। पृथ्वी-राज के धनुष से वाण छूटते ही कयमास का सिर कटकर भूमि पर गिर पड़ा। पृथ्वीराज ने करनाटकी दासी का भी वध कर दिया। दोनों को आधी रात के समय गड्ढा खोदकर गड़वा दिया। इसके पश्चात् पृथ्वीराज रात्रि में ही आखेट-शिविर में चले गये।

सरस्वती ने स्वप्न में प्रत्यक्ष होकर कयमास-वध की सारी घटना चन्द को बतलाई।

कयमास-वध की सारी घटना सरस्वती चन्द को स्वप्न में सुना देती हैं। परन्तु चन्द उनसे प्रत्यक्ष होकर सारी घटना सुनाने के लिए आग्रह करते हैं। सरस्वती चन्द के सामने प्रत्यक्ष हो गईं। चन्द ने उनका दर्शन करते हुए उनका अनेक प्रकार से वर्णन किया।

चन्द द्वारा घटना का प्रकाशन

महाराज पृथ्वीराज आखेट समाप्त कर सवेरा होते ही राजधानी आ गये। उन्होंने चन्द से शाहबुद्दीन गोरी पर अपनी विजय का वर्णन करने को कहा। इसके पश्चात् पृथ्वीराज ने समस्त शूर-वीर सभासदों को बुलाकर सभा की। चन्द ने आकर महाराज पृथ्वीराज को आशीर्वाद दिया। पृथ्वीराज ने कयमास के सम्बन्ध में पूछा। सभी ने उत्तर दिया कि संध्याकाल में सूर्य छिपते समय हमने उसको सिर झुकाया था, परन्तु प्रातःकाल से महल में नहीं देखा। इसके पश्चात् पृथ्वीराज कन्नौज विजय की इच्छा प्रकट करके चन्द से कयमास के सम्बन्ध में पूछते हैं। चन्द उत्तर देते हैं कि कयमास तीनों लोकों में दुर्लभ हो गया है। पृथ्वीराज चन्द को चुनौती देते हुए कहते हैं कि या तो वे कयमास कहाँ है, यह बता दें या यह कहना छोड़ दें कि उनको महादेव की सिद्धि प्राप्त है :—

"कइ कयमास वताहि मो,
कै हर सिद्धी वर छंड़ि ॥"

चन्द निर्भीकता से उत्तर देता है कि चाहे शेषनाग पृथ्वी का धारण करना छोड़ दें और सूर्य अपने ताप को छोड़ दें, परन्तु चन्द महादेव की सिद्धि का वरदान नहीं छोड़ सकता। चन्द आगे कहता है कि यदि मैं राजा की गोपनीय बात को बताता हूँ, तो मृत्यु-दंड पाने का अधिकारी होता हूँ। यदि नहीं बताता हूँ, तो भी राजा की आज्ञा उल्लंघन का दोषी होने से मृत्यु-दंड पाने का अधिकारी बनता हूँ। अतः आप आज्ञा दें तो मैं कयमास-वध का प्रसंग आपके सामने वर्णन करूँ।

चन्द कयमास-वध के प्रसंग का वर्णन करते हुए कहते हैं कि आपने पहला बाण कयमास का वध करने के लिए छोडा, परन्तु वह चूक गया। फिर आपने

दूसरा वाणा-संधान कर उस वीर कयमास को मार डाला। उसके वाद उसे गड्ढा खोदकर गड़वा दिया। आपके इस प्रलय जैसे भयानक कार्य से क्या वनेगा? भला आप ने ऐसा क्यों किया? चन्द सें कयमास-वध की घटना सुनकर समासद डर गये और वे पलायन कर गये। पृथ्वीराज रात्रि भर जागते रहे। प्रातः काल चन्द कवि ने कयमास-वध की घटना का वर्णन कर सर्वत्र प्रसारित कर दिया। चन्द पृथ्वीराज के क्रोध से सूख रहा था। घर-घर में यह चर्चा फैल गई थी, कि कयमास ने कोई वड़ा अपराध किया है, इसीलिए राजा द्वारा असका वध किया गया है।

कयमास की स्त्री के द्वारा पति-शव माँगने आना

सूर्योदय होने पर कयमास की स्त्री चन्द के पास अपने पति का शव माँगने गई। वह पति के शव के साथ सती होने का संकल्प कर चुकी थी। चन्द कयमास की स्त्री का आग्रह न टाल सके, वे उसको लेकर पृथ्वी के पास गये, पृथ्वीराज क्रोध में जल रहे थे। चन्द पृथ्वीराज से कयमास का शव उसकी स्त्री को दे देने का आग्रह करते हैं। पृथ्वीराज कहते हैं कि कयमास गड्ढे के द्वारा अपहृत हो चुका है। अव उसे कौन निकाल सकता है। चन्द के वहुत आग्रह करने पर पृथ्वीराज इस शर्त पर कयमास का शव देने को तैयार होते हैं कि चन्द उनको जयचन्द को दिखाने का आश्वासन दे। चन्द यह शर्त स्वीकार कर लेते हैं। पृथ्वीराज चन्द के साथ अनुचर के रूप में जाने का प्रस्ताव रखते हैं।

पृथ्वीराज का दृढ़ संकल्प और चन्द को प्रसन्नता

पृथ्वीराज के चित्त की अस्थिरता दूर हो जाती है। वे उत्साह में भरकर चन्द से कहते हैं कि यदि हमारी मृत्यु ही लिखी है, तो कन्नौज चलकर ही मरूँगा। मैं जयचन्द की भूमि पर युद्ध-नृत्य करूँगा और अपना रण-कौशल दिखाऊँगा। अन्त में कयमास का शव उसकी स्त्री को दे दिया गया। चन्द को पृथ्वीराज की कन्नौज-गमन की वात से प्रसन्नता हुई। कयमास-वध की कथा यहीं समाप्त होती है।

ऐतिहासिकता

डा० दशरथ शर्मा ने जैन-ग्रन्थ 'पुरातन-प्रवन्ध-संग्रह' के आधार पर पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता सिद्ध की है। उनके अनूसार पृथ्वीराज योगिनीपुर

(दिल्ली) का शासक था, तथा जयचन्द का शत्रु था। उसके दो मंत्री थे, जिनमें एक था दाहिमा वंश का कयमास और दूसरा प्रतापसिंह श्रीमाल। प्रताप सिंह के कहने पर पृथ्वीराज ने कयमास का वध कर डाला। इसका वर्णन दूसरी रात्रि को चन्दवद्दलिक ने इस प्रकार किया ;—

"इक्कु वाणु पहुवीसु जु पइं कइं बासह मुक्कउ।
उरभितरि खडहरिउ धीर कक्खंतरि चुक्कउ।
बीअं करि संधीउ भंमइ सूमेसर नंदणु।
एहु सु गडि दाहिमओं खणइ खुद्दइं सइं भंखिणु,"

रासो में कयमास-वध का कारण उसका करनाटी दासी से रति-क्रीड़ा करना दिया गया है।

प्रबन्ध-कौशल और कथा-प्रवाह

'कयमास-वध' रासो का तृतीय समय है। इसमें पृथ्वीराज द्वारा अपने प्रधानामात्य कयमास-वध का प्रसंग है। इससे पूर्व के समय में जयचन्द के 'राजसूय और संयोगिता के प्रेमानुष्ठान' का प्रसंग है। राजसूय में जयचन्द ने पृथ्वीराज को द्वारपाल का काम देकर अपमानित किया। इधर उसकी पुत्री संयोगिता पहले ही से पृथ्वीराज पर अनुरक्त है। इन दोनों कारणों से पृथ्वीराज का चित्त अस्थिर है।

'कयमास-वध' 'पृथ्वीराज रासो' की एक अवान्तर घटना है। यह घटना पृथ्वीराज के कन्नौज गमन की पृष्ठभूमि तैयार करती है। साथ ही स्वतन्त्र रूप से भी कथा-प्रवाह में प्रबन्ध-कौशल बना रहता है। कथानक का प्रारम्भ इस प्रकार होता है—

"तिहि तप आखेटक भमइ, थिर न रहइ चहुवान।
वर प्रधान जुगिन्नि पुर, धर रष्षइ परवान॥"

'तिहि तप' वाक्य इस समय की घटना का सम्बन्ध पूर्व समयों की घटना से जोड़ देता है। प्रश्न यह उठता है कि किस ताप में चहुवान का मन स्थिर नहीं है और जिसके कारण वह दिल्ली का शासन प्रधानामात्य कयमास को सौंपकर वन में आखेट करता हुआ मारा-मारा फिर रहा है। इसका उत्तर इनसे पहले के समय "जयचन्द का राजसूय और संयोगिता का प्रेमानुष्ठान" में मिल जाता है :—

(१) जयचन्द ने राजसूय यज्ञ का आयोजन किया और उसमें पृथ्वीराज को अपमानित करने के लिए उनकी प्रतिष्ठा के विरुद्ध द्वारपाल का काम सौंपा। पृथ्वीराज इस अपमान से तप रहा है।

(२) संयोगिता पृथ्वीराज पर पहले ही से अनुरक्त थी। पृथ्वीराज को उसके प्रेमानुष्ठान का भी पता लग चुका था। अतः जयचन्द के द्वारा किया गया अपमान तथा संयोगिता के प्रेम-वियोप में तप्त होकर पृथ्वीराज का मन अस्थिर हो रहा है और वे राजकाज कयमास को सौंपकर वन में आखेट करते हुए मन वहला रहे हैं। इस प्रकार इस 'समय' की कथा की शृंखला पूर्व 'समयों' की कथा से जुड़ जाती हैं। कथानक का प्रारम्भ पृथ्वीराज के मन की अस्थिरता दिखाकर वड़ी स्वाभाविकता से किया गया है। मन की इसी अस्थिरता के कारण आगे चलकर वे कयमास का वध करेंगे।

कथा का विकास

प्रारम्भ के पश्चात् ही कथा का विकास तीव्र गति से होने लगता है। पृथ्वीराज आखेट-शिविर में हैं और कयमास अधिकार पाकर रमणी-रमण में लगा हुआ है। वह करनाटकी दासी के साथ रति-क्रीड़ा में डूबकर कर्त्तव्य-च्युत हो गया है। कवि वड़ी नाटकीय मोड़ों से कयमास की करनाटकी दासी के रति-विलास की सूचना पटरानी को तांवूल-वाहिनी से दिलवाता है और नाटकीय लाघव से ही पृथ्वीराज आकर कयमास का वध करते हैं। वे कयमास को पृथ्वी खोदकर गड़वा देते हैं और रात्रि में ही आखेट-शिविर को लौट जाते हैं। उनके आने जाने का पता उनके साथ की सेना और साथियों को भी नहीं लग पाता। सारा रहस्य पृथ्वीराज, पटरानी और विश्वासपात्र दासी तक ही सीमित रहता है। १४वें छन्द तक कयमास-वध की घटना घटित हो जाती है।

कयमास-वध का प्रकाशन नाटकीय रीति से होता है। सरस्वती चन्द को पहले स्वप्न में और फिर उनकी विनय पर प्रत्यक्ष होकर कयमास-वध की सारी घटना वतलाती हैं। सवेरे चन्द पृथ्वीराज के हठ पर भरी सभा में सारी घटना को प्रकाशित कर देते हैं। यहाँ कथावस्तु **चरमसीमा** पर पहुँच जाती है। कयमास-वध की घटना को सुनकर शूर-सामन्त भयभीत वने हुए अपने-अपने घरों को चले जाते हैं। यहाँ पर वड़ी ही संवेदनापूर्ण नाटकीय स्थिति आ जाती

है । ३०वें छन्द से बड़ा ही मार्मिक और करुण दृश्य सामने आता है । सती होने को उद्यत कयमास की पत्नी चन्द की शरण में आती है और पति का शव पृथ्वीराज से दिलाने को कहती है । उसके द्वारा जीवन की निस्सारता का वर्णन जीवन के मोह को दूर कर कर्म में प्रवृत्त । यहाँ से कथानक वड़ी ही तीव्र गति से उपसंहार की ओर वढ़ता है । चन्द पृथ्वीराज के पास कयमास की पत्नी को लेकर जाते हैं । पृथ्वीराज इस शर्त पर शव देने को तैयार होते हैं कि चन्द उनको जयचन्द के यहाँ ले जाये । वे चन्द के साथ अनुचर रूप में कन्नौज जाकर रण-नृत्य करने को उद्यत हैं । वे चन्द से कहते हैं—

"अव उपाउ सुझ्झउ एक संचउ ।
सुनि कवि मरनु टरइ नहिं रंच्यउ ॥
समर तिथ्थ गंगह जल षंच्यउ ।
अवसरि अव से पंग धर नंच्यउ ॥"

पृथ्वीराज के मन की निराशा और अस्थिरता दूर हो जाती है । इससे चन्द को प्रसन्नता होती है । अन्तिम छन्द में कवि कथा का उपसंहार करता है—

"धरि वरु पंगु प्रगट्ट अरु थट्ट विहंडिहइं ।
इत उपहास-विलास न प्रान पमूकिहइं ॥"

ये पंक्तियाँ आगे की कथा की पृष्ठभूमि वन जाती हैं । इस सार के पश्चात् ही संयोगिता-हरण तथा जयचन्द से युद्ध की घटनायें घटित होती हैं ।

इस प्रकार 'कयमास-वध' जहाँ 'रासो' की प्रवन्धात्मकता में कथा-शृंखला की सुन्दर कड़ी बन गया है वहाँ स्वतन्त्र रूप में भी उसमें प्रवन्धात्मकता और आरोह-अवरोह के रूप में सुशृंखलित कथा-प्रवाह है । प्रवन्ध के अन्तर्गत कवि ने मर्मिक स्थलों का अनुभूति पूर्ण चित्रण किया है । इससे सारे कथानक में रसात्मकता आ गई है । कयमास के कामान्ध होने, पृथ्वीराज के क्रोध, सती होने के शृंगार से सजी हुई कयमास की पत्नी का दृश्य, तथा पृथ्वीराज का चन्द के गले से लगकर कन्नौज जाने का निश्चय करना आदि वर्णन वड़े ही मार्मिक और अनुभूतिपूर्ण हैं । प्रवन्ध-कौशल की मार्मिकता की दृष्टि से 'कयमास-वध' 'पृथ्वीराज रासो' का सर्वाधिक प्रभावशाली और संवेदनापूर्ण 'समय' है ।

कयमास-वध

[१]

तिहि तप आषेटक भमइ, थिर न रहइ चहुवान।
वर प्रधान जुग्गिनि पुरह, धर रष्षइ परवान॥

शब्दार्थ—तिहि=उस। तप=विरह-ताप। आषेटक=आखेट में, शिकार करता हुआ। भमइ=भ्रमित होता था, घूमता-फिरता था। स्थिर=एक स्थान पर स्थिर, चित्त की स्थिरता। न रहइ=नहीं रहता था। चहुवान=पृथ्वीराज चौहान। वर=श्रेष्ठ। प्रधान=अमात्य, मंत्री। जुग्गिनि पुरह=योगिनीपुर, दिल्ली। धर=धरा, पृथ्वी। रष्षइ=रक्षा करता था। परवान=अधिकार से, प्रमाण रूप से।

पूर्व-प्रसंग—कन्नौज-नरेश जयचन्द और पृथ्वीराज में ईर्ष्या थी। जयचन्द ने राजसूय यज्ञ और उसके साथ संयोगिता स्वयंवर का अनुष्ठान किया। जयचन्द ने पृथ्वीराज को निमन्त्रित किया, परन्तु उसे अपमानित करने के लिये द्वारपाल का काम सौंपा। उधर संयोगिता पृथ्वीराज पर अनुरक्त थी। इसकी सूचना भी पृथ्वीराज को मिल चुकी थी। अतः संयोगिता के प्रेम-वियोग के कारण और जयचन्द द्वारा अपमानित होने से उसका चित्त स्थिर नहीं रहा था। वह मनःस्ताप को भुलाने के लिए राज्य का शासन-सूत्र कयमास को सौंपकर वन में आखेट करता हुआ घूमता-फिरता था। यहीं से 'कयमास-वध समय' की कथा प्रारम्भ होती है।

सन्दर्भ—प्रस्तुत दोहे में संयोगिता के विरह-ताप में राज-काज कयमास को सौंपकर अस्थिर चित्त पृथ्वीराज के वन में आखेट खेलने के प्रसङ्ग का वर्णन है।

अर्थ—पृथ्वीराज संयोगिता के विरह-ताप में अस्थिर बना हुआ आखेट करता हुआ इधर-उधर मारा-मारा फिरता था। (उसकी अनुपस्थिति में) श्रेष्ठ अमात्य

(कयमास) पृथ्वीराज द्वारा दिये हुए अधिकार से दिल्ली की रक्षा कर रहा था।

व्याख्या—सुन्दरी संयुक्ता पृथ्वीराज पर अनुरक्त है और वह उन्हें वरण करने का दृढ़ व्रत कर चुकी है। यह समाचार चर से पृथ्वीराज को मिलता है। वे उसके वियोग की अग्नि में जलने लगते हैं। विरह-ताप में सन्तप्त रहने के कारण उनका चित्त स्थिर नहीं रहता। वे वन में आखेट करते हुए इधर-उधर मारे-मारे फिरते हैं। अपनी अनुपस्थिति में दिल्ली के शासन का अधिकार इन्होंने प्रधानामात्य कयमास को दे दिया था। इस प्रकार अधिकार से वह दिल्ली की भूमि की रक्षा और शासन कर रहा था।

विशेष—१. 'तिहि तप'='तिहि' तप शब्द इस 'समय' की कथा का सम्बन्ध पूर्व प्रसंगों से जोड़ देता है—

(क) संयोगिता ने पृथ्वीराज के वरण करने का दृढ़ व्रत धारण किया था। उसका अनुराग सुनकर पृथ्वीराज उसके प्रेम-वियोग में सन्तप्त रहता था।

(ख) जयचन्द ने ईर्ष्या वश पृथ्वीराज को अपमानित करने के लिये राजसूय में पृथ्वीराज को द्वारपाल का काम देना निश्चय किया था।

उक्त दोनों कारणों से पृथ्वीराज का चित्र आस्थिर रहता था।

२. इस दोहे में तत्कालीन शासन-व्यवस्था के सम्बन्ध में यह संकेत मिलता है कि राजा की अनुपस्थिति में प्रधानामात्य शासन-सूत्र संचालन करता था।

३. **रस**—विप्रलम्भ शृंगार—पृथ्वीराज आश्रय, संयोगिता आलम्बन, पृथ्वीराज का राज-काज छोड़कर वन में आखेट करते हुए मारा-मारा फिरना अनुभाव, मति, भ्रम, चपलता आदि संचारी भाव हैं। स्थायी भाव रति पुष्ट हो रहा है।

४. **अलंकार**—तप (विरह-ताप) में रूपक अलंकार।

५. **छन्द**—दोहरा (दोहा) मात्रिक छन्द है। इसमें १३, ११ पर यति देकर २४ मात्रायें होती हैं।

६. **व्याकरण**—'धर', 'तप' में ह्रस्वीकरण है। 'थिर' में प्रथम व्यंजन 'स्' का लोप है। 'भमइ', 'रष्षइ' में क्रियाओं में स्वर-संयोगों की सुरक्षा है। 'परवान' में 'म' 'व' में परिवर्तित है।

[२]

राजं जा प्रतिमा स चीन धर्मा रामा रमे सा मतीन् ।।
नित्तीरे कर काम वांम वसना संगेन सेज्या गतिः ।
अंधारेन जलेन छिन्न क्षितया तारानि धारा रत ।
सा मन्त्री कयमास काम अंधा देवी विचित्रा गति ।।

शब्दार्थ—राजं=राजा। जा=जो। प्रतिमा=प्रतिनिधि। स=वह। चीन=लघु, नीच। चीन धर्मा=नीच कर्मी। रामा=स्त्री। रमे=रमण में। मतीन्=बुद्धि वाला। नित्तीरे=विना तीर वाला, कामदेव को तीरों से रहित कहा गया है। काम=कामदेव। वांम=स्त्री। वसना=वश में। संगेन=साथ। सेज्या=शय्या। गतिः=स्थित। अन्धारेन=अन्धकारयुक्त। जलेन=जल से। छिन्न=आहत। छितया=पृथ्वी। तारानि=तारागण। धारा=जल की धारा। रत=लीन। काम अन्धा=काम में अन्धा वना हुआ। देवी विचित्रा गति=दैव की गति अति विचित्र है।

सन्दर्भ—पृथ्वीराज की अनुपस्थिति में राजाज्ञा से कयमास ने दिल्ली का शासन-सूत्र सम्हाला। वह राज-सत्ता को पाकर विलास-क्रीड़ाओं में डूव गया। प्रस्तुत छन्द में उसकी इसी स्थिति का वर्णन है—

अर्थ—जो (कयमास) राजा का प्रतिनिधि था, वह नीच-कर्मा हो गया। उसकी वुद्धि कामिनियों में रमण करने लगी। वह हाथों में तीर रहित कामदेव की रामा अर्थात् कामिनी के वश में होकर उसके साथ शय्यागत हुआ। अँधेरे में वर्षा के जल से पृथ्वी छिन्न हो रही थी और तारागण भी वर्षा में लीन हो रहे थे (छिप गये थे), वह मंत्री कयमास कामांध हो गया। दैव की गति भी वड़ी विचित्र है।

व्याख्या—संयोगिता के प्रेम-विरह में दग्ध पृथ्वीराज कयमास को शासन सूत्र सौंपकर मन वहलाने के लिए आखेट करते हुए वन में इधर-उधर भटक रहे थे। कयमास राजा का प्रतिनिधि स्वरूप राज्य-शासन करता हुआ नीच-कर्मा हो गया। उसकी वुद्धि स्त्रियों में रमण करने लगी अर्थात् वह भोग-विलास में लिप्त हो गया। जिसके हाथ में वाण नहीं है, इस प्रकार धनुर्धर कामदेव के वशीभूत होकर कयमास काम-वामा अर्थात् रमणियों को लेकर शय्यागत हुआ अर्थात् उनके साथ रति-क्रीड़ा और विहार करने लगा। भीषण अँधेरी रात्रि है, घने अन्धकार में वर्षा की जल-धारा से पृथ्वी छिन्न हो रही और तारागण भी

जल-धारा में लीन दिखाई देते हैं अर्थात् मूसलाधार वर्षा हो रही है। घना अन्धकार छाया हुआ है। अन्धकार और वर्षा में तारागण भी छिप गये हैं। ऐसे समय में प्रधानामात्य कयमास कर्त्तव्य-च्युत होकर कामांध हो रहा है। दैव की भी विचित्र गति है।

विशेष—१. एक अमात्य के लिए राज-भवन की दासी से विलास करना राज्य-मर्यादा के विरुद्ध था।

२. राज-सत्ता किस प्रकार मदान्ध और कामांध बना देती है, इसका यहाँ चित्रण हुआ है—

"भरतहि दोसु देइ को जाएँ।
जग बौराइ राज पदु पाएँ॥
ससि गुरु तिय गामी नहुषु, चढ़ेउ भूमिसुर यान।
लोक वेद तें बिमुख भा, अधम को बेनु समान॥
सहसबाहु सुरनाथ त्रिसंकू।
केहि न राजमद दीन्ह कलंकू॥"

—तुलसीदास

३. 'रामा', 'वामा' शब्द सामान्य नारी, कामिनी अथवा रमणी वाचक हैं—

"बामा, भामा, कामिनी, कहि बोलहु प्रानेस,
प्यारी कहत लजात नहिं, पावस चलत विदेस॥

—बिहारी

४. अन्धकारमय रात्रि और उसमें मूसलाधार वर्षा के संश्लिष्ट प्राकृतिक वातावरण का सजीव चित्रण हुआ है।

५. 'देवी विचित्रा गति' में नियति (ईश्वर) की सर्वशक्तिमानता को स्वीकार किया गया है।

६. काव्य-सौन्दर्य—

(१) रस—संयोग-शृङ्गार

(२) भाषा में संस्कृत की तत्समता है।

(३) छन्द—साटिका—यह वर्णिक छन्द है। इसमें चार चरण और प्रत्येक छन्द में १९ वर्ण होते हैं।

(४) अलंकार—अनुप्रास, 'देवी विचित्रा गति' में लोकोक्ति।

[३]

करनाटी दासी सुबन, रजनी अथ्थि अवास ।
काम मुच्छ कयमास तनु, दिठ्ठि विलग्गी तास ॥

शब्दार्थ—करनाटी दासी=करनाटक प्रदेश की दासी । सुवन=सुन्दर वर्ण वाली । अथ्थि=थी । अवास=राजकीय निवास, सभा गृह । काम मुच्छ =काम-विमोहित । तनु=ओर । दिठ्ठि=दृष्टि । विलग्गी=लग गई । तासु=उसकी ।

सन्दर्भ—प्रस्तुत दोहे में कयमास की करनाटकी दासी के प्रति काम-विमुग्धता का वर्णन है ।

अर्थ—करनाटक प्रदेश की एक सुन्दर दासी रात्रि में राजकीय आवास में रहती थी । काम-विमोहित कयमास की ओर उसकी दृष्टि लग गई ।

व्याख्या—राजकीय निवास-गृह में करनाटक प्रदेश की एक दासी थी । जिसका वर्ण सुवर्ण के समान देदीप्यमान था । वह बड़ी सुन्दर थी । मन्त्री कयमास काम-विमोहित था । अतः कयमास की ओर उसकी दृष्टि लग गई ।

विशेष १. राज-महल में रहने वाली दासियों के पतित चरित्र का चित्रण है, वे काम-विमोहित व्यक्ति को फँसा लेती थीं ।

२. 'अथ्थि', 'दिठ्ठि' और 'विलग्गी' शब्दों में व्यंजन-द्वित्व है ।

३. छन्द-दोहरा (दोहा)

४. अलंकार—अनुप्रास ।

[४]

चलउ मुहिलि कयमास रयणि नट्ठी जाम इक्कत ।
तंबोलय सषि साषि पट्ट रगिनीअ निधि संकित ।
दीपक जरह संकूरि भमिअ रत्तिअ पति अंतह ।
अति स रोस भरि भूज लिहि दीय दासी करि कंतह ।
पल्लाणि अस्व तंषिन षरीय अवधि दीइअ दुहु घरिय कहं ।
पल गयण प्रयण वनि संचरिअ नयन सयन प्रथिराज जहं ॥

शब्दार्थ—मुहिलि=महल । रयणि=रात्रि । नठ्ठी=नष्ट, व्यतीत । जाम=याम, प्रहर । इक्कत=एक । तंवोलय=ताँबूल वाहिनी । सषि=सखी ।

साषि=साक्षी। पट्ट रागिनीअ=पटरानी। निधि=खजाना, स्नेह। संकित=शंकित होकर। संकूरि=सिकुड़ा हुआ। भमिअ=घूम रहा है। रत्तिअ=रात्रि। रत्तिअपति=रात का स्वामी अर्थात् चन्द्रमा। अंतह=अंत:पुर। स=उसने। रोस=क्रोध। भरि=भरकर। भुज='भुर्जपत्र। लिहि=लिखकर। दीय=दिया। करि=हाथ में। कंतह=पति के लिए। पल्लाणि=कसकर। तंषिन=उसी क्षण। षरीय=खरी, केवल। दीइअ=दिया। दुहु=दो। कहं=के लिए। गयण=हाथी। प्रयण=भरा हुआ। वनि=वन में। संचारिअ=संचरन करने लगी, जा पहुँची। सयन=संकेत।

सन्दर्भ—करनाटी दासी के निमंत्रण पर कयमास उसके महल में आकर रति-क्रीड़ा में लगता है। तांवूल वाहनी सखी इसकी सूचना पटरानी को देती है। पटरानी पृथ्वीराज को तत्काल बुलाने के लिये दासी से पत्र भेजती है। इस छन्द में चन्द ने इसी प्रसंग का वर्णन किया है।

अर्थ—एक पहर रात्रि व्यतीत होते-होते कयमास उस महल को चला। तांवूल-वाहिनी सखी ने उन दोनों के प्रेम से शंकित होकर पटरानी को सूचना दी कि दीपक मंद-मंद जल रहा है और चन्द्रमा के समान कयमास अंत:पुर में फिर रहा है। यह सुनकर रानी क्रोध में भर गई और भूर्ज पत्र लिखकर उसने दासी के हाथों में अपने कंत के लिए दिया। तत्क्षण अश्व कसकर रानी ने पृथ्वीराज को लाने के लिए दो घड़ी की अवधि दी। दासी पल भर में गजों से भरे हुए वन में नेत्रों के संकेत मात्र के समय में वहाँ जा पहुँची, जहाँ पृथ्वीराज थे।

व्याख्या—करनाटकी दासी के मोह-पाश में कयमास जकड़ चुका था। उसका प्रेम-निमंत्रण पाकर रात्रि का प्रथम-पहर समाप्त होते ही वह करनाटी दासी के महल को चला। एक तांवूल-वाहिनी सखी ने देख लिया। उसने करनाटकी दासी और कयमास की उस स्नेह रूपी निधि से शंकित होकर पटरानी के समीप जाकर सूचना देते हुए वतलाया कि करनाटकी दासी के महल में दीपक धीरे-धीरे जल रहा है और रात्रि के स्वामी चन्द्रमा के समान मंत्री कयमास अन्त:पुर में घूम रहा है। अर्थात् जिस प्रकार चन्द्रमा रात्रि में आकाश में विचरण करता है उसी प्रकार कयमास महल में करनाटकी दासी के साथ रति-रंग कर रहा है। ताम्बूल-वाहिनी से यह समाचार पाते ही पटरानी परमारी रानी क्रोध में भर जाती हैं।

और भूर्ज-पत्र पर अपने स्वामी महाराज पृथ्वीराज को एक पत्र लिखकर दासी के हाथों में देती है। वे उसे तत्क्षण अश्व कसकर पृथ्वीराज को महल में लाने के लिए केवल दो घड़ियों का समय देती हैं। दासी पल भर में हाथियों से भरे हुए उस वन में जा पहुँचती है, जहाँ महाराज पृथ्वीराज आखेट-शिविर में थे। दासी पलक मारने भर के समय में पृथ्वीराज के पास पहुँच गई।

विशेष—१. ताम्बूल वाहिनी की जागरूकता और पटरानी की प्रत्युत्पन्न मति का पता चलता है।

२. पटरानी के क्रोध में शासकोचित दर्प है।

३. 'दीपक जरइ संकूरि' में लेखक संकेतात्मक शैली में छुपकर हो रही रति-क्रीड़ा का वर्णन कर देता है। चन्द के शृंगार-वर्णन की यह विशेषता है कि संकेत-शैली में होने के कारण वह कहीं असंयत और अश्लील नहीं हो पाया है।

४. तत्कालीन युग में भूर्ज-पत्र पर लिखने की पृथा का संकेत दिया गया है।

काव्य-सौन्दर्य—

१. 'नठ्ठी', 'इक्कत', 'पट्ट', 'रात्तिअ' आदि में **व्यंजन-द्वित्व** 'रयणि', 'गयण', 'पल्लाणि' में वर्ण की सुरक्षा, चलउ, रगनीअ, 'रत्तिय' 'संचरिअ' में स्वर-संयोगों की सुरक्षा हैं।

२. भाषा में ओज-गुण की प्रधानता है।

३. **छन्द-कवित्त**—(छप्पय) यह मात्रिक छन्द है। इसमें प्रथम चार चरण रोला के होते हैं। जिनमें ११, १३ पर यति देकर २४ मात्राएँ होती हैं। अन्तिम दो चरण उल्लाला के होते हैं, जिसके प्रत्येक चरण में १५, १३ पर यति देकर २८ मात्रायें होती हैं।

४. **अलंकार**—(क) 'सषि-साषि' में 'स', 'भरि-भूज' में 'भ', 'दीय-दासी में 'द', 'दीइअ-दूहु' में 'द', 'गयण-प्रयण' में 'ण', 'नयन-सयन' में 'न', 'करि कंतह' में 'क' वर्ण की एक वार आवृत्ति से अनुप्रास।

(ख) 'दीपक·········अंतह' में रूपकातिशयोक्ति।

(ग) 'पल गयण·········जहँ' में अतिशयोक्ति।

३

[५]

भूभ्रत सचित सुनिद्दा संग सा रयणि जग्गइ अविध्धा ।
दीपकु जरइ सुमुद्‌धा नूपुर सद्दानि भानि अच्छानि ।।

शब्दार्थ—भूभ्रत=भूमि का भरण करने वाला, भूपति, राजा । सचित =सावधान होकर । सुनिद्दा=सुन्दर नींद, गहरी नींद । सा=वह । रयणि= रात्रि । जग्गइ=जाग रही थी । अवध्धा=अवैध रूप से । सुमुद्‌धा=उस मुग्धा ने । नूपुर=बिछुए । सद्दानि=शब्द । भानि=भंग किया । अच्छानि=स्वच्छ, सुन्दर ।

सन्दर्भ—पटरानी की भेजी हुई दासी पृथ्वीराज के पास वन में आखेट-शिविर में पहुँच गई । उसने अपनी नूपुर-ध्वनि से गहरी निद्रा में सोते हुए पृथ्वीराज की निद्रा भंग कर दी । इस छन्द में इसी प्रसंग का वर्णन है ।

व्याख्या—पटरानी की भेजी हुई दासी वन में स्थित पृथ्वीराज के आखेट-शिविर में पहुँच गई । सम्राट पृथ्वीराज चौहान उस समय सुचित्त होकर सुन्दर निद्रा का सुख ले रहे थे । उस समय उनके साथ रात्रि भी अवैध रूप से जाग रही थी । उस मुग्धा सुन्दरी नव-यौवना दासी ने उस समय अपने नूपुरों की मधुर ध्वनि से महाराज पृथ्वीराज की निद्रा भंग कर दी ।

विशेष—१. दासी द्वारा महाराज की निद्रा भंग करने से सन्देश का महत्त्व प्रतिपादित हुआ है ।

२. दासी द्वारा नूपुरों की मधुर ध्वनि से सम्राट की निद्रा भंग करने में कलात्मक-सौन्दर्य की सृष्टि हुई है ।

३. छन्द—गाथा—यह मात्रिक छन्द है ।

४. अलङ्कार—रात्रि पृथ्वीराज की प्रेयसी के रूप में चित्रित हुई है । अतः मानवीकरण अलङ्कार है ।

५. व्यंजन-द्वित्व की योजना है ।

६. 'मुग्धा' शब्द स्पष्ट करता है कि दासी युवती है ।

[६]

भूकंपं जयचन्द राय कटके शंकापि न ग्यायते ।
सं साहिस्स सहाबसाहि सकलं इच्छामि युद्धाइने ।

सिद्धं चालुक चाइ मंत्र गहने दूरे स विस्वासरे ।
अग्यानं चहुआंन जांन रहियं दैयोऽपि रक्षा करे ।।

शब्दार्थ—भूकंपं=पृथ्वी का कम्पायमान होना । राय=राजा । कटक=सेना । शंकापि=शंका की । न ग्यायते=नहीं ज्ञात होती थी । सं=उसने । साहिस्स=साहस-युक्त । सहावसाहि=गजनी और गोरी का सुल्तान शाहबुद्दीन गोरी । सकलं=सारे । इच्छामि=इच्छा पूर्वक । युद्धाइने=युद्ध । सिद्ध=जैन । चाइ=चाव, उत्साह । मंत्र=मन्त्री कयमास । गहने=पकड़ा था । दूरे=दूर । स=वह । विस्वासरे=प्रदेश विशेष । अग्यानं=न जान पाया । जानं रहियं=ज्ञान-रहित । दैंयोऽपि=दैव ही ।

सन्दर्भ—प्रस्तुत छन्द में चन्द ने पृथ्वीराज के शौर्य-पराक्रम और कयमास की अज्ञता का वर्णन किया है ।

व्याख्या—जिस कन्नौज के राजा जयचन्द की सेना के चलने पर पृथ्वी काँपने लगती थी, परन्तु महाराज पृथ्वीराज को उससे किंचित भी शङ्का नहीं होती थी । उन्होंने वादशाह शाहबुद्दीन गोरी से भी समस्त युद्ध साहस और उत्साह के साथ लड़े और उनको जरा भी शंका नहीं हुई थी । जब मन्त्री कयमास ने गुजरात के जैन राजा चालुक्य को बड़े उत्साह से पकड़ा था, उस समय तो पृथ्वीराज दूर विश्वासर प्रदेश में थे । उन्होंने इस युद्ध में भाग तक नहीं लिया था; क्योंकि चालुक्य भीमराज को तो वह कुछ समझते ही नहीं थे । ऐसे वीर और प्रतापी सम्राट पृथ्वीराज को मन्त्री कयमास न जान पाया अर्थात् ज्ञान-हीन हो गया और वह राज-महल के नियम का उल्लंघन कर करनाटकी दासी के साथ रति-क्रीड़ा में निमग्न हुआ । अतः अब दैव ही पृथ्वीराज के क्रोध से कयमास की रक्षा कर सकता है ।

विशेष—१. पृथ्वीराज के शौर्य और पराक्रम का उल्लेख हुआ है ।

२. इस ओर भी कवि ने संकेत किया है कि पृथ्वीराज ने शाहबुद्दीन को अनेक वार पराजित किया था ।

३. व्यंजन-द्वित्व और स्वर-संयोग एवं आनुनासिकता की प्रवृत्ति दृष्टव्य है ।

४. छन्द-साटिका—यह वर्णिक छन्द है । इसके प्रत्येक चरण में १९ वर्ण होते हैं ।

५. अलङ्कार—(क) 'भूकंपं जयचन्द राय कटके' में अतिशयोक्ति।
(ख) यत्र-तत्र अनुप्रास।
(ग) 'दैवोऽपि रक्षा करै' में लोकोक्ति।

[८७]

छत्तिय हथ्थु धरंत नयन्नु चाहियउ।
तब हि दासि करि, हथ्थ सु बंचि सुनावियउ।
बानावरि दुहु बाह रोस रिस दाहियउ।
मनहु नागपति पतिनि अप्प जगावियउ॥

शब्दार्थ—छत्तिय=छातीपर। हथ्थु=हाथ। धरंत=रखते ही। नयन्नु=नेत्रों से। चाहियउ=देखा। करि=हाथ में। सु=वह पत्र। बंचि=वांचकर। सुनावियउ=सुनाया। बानावरि=वाणावलि। दुहु=दोनों। बाह=बाहों। रोस रिस=क्रोध। दाहिउ=दग्ध हो गया। नागपति=शेषनाग। पतिनि=पत्नी। अप्प=स्वयं ही। जगावियउ=जगाया।

सन्दर्भ—दासी ने पृथ्वीराज को जगाकर पटरानी का भेजा हुआ पत्र सुनाया। उसे सुनते ही पृथ्वीराज क्रोध से जलने लगे। प्रस्तुत छन्द में चन्द ने इसी प्रसंग का वर्णन किया है—

अर्थ—जगाने के लिए दासी के छाती पर हाथ रखते ही पृथ्वीराज ने आँखों से उसकी ओर देखा। दासी ने तत्काल पत्र को हाथ में लेकर उसे बाँचकर सुना दिया। पत्र को सुनते ही पृथ्वीराज की दोनों बाहुओं में वाणावलि शोभित होने लगी और वह रोष से दग्ध हो उठा। दासी के द्वारा जगाया हुआ पृथ्वीराज ऐसा लग रहा था मानों शेषनाग को उसकी पत्नी ने जगाया हो।

व्याख्या—दासी ने पृथ्वीराज को जगाने के लिए उनकी छाती पर हाथ रख दिया। उनकी आँख खुल गई और उन्होंने दासी की ओर देखा। दासी ने तत्काल ही पटरानी का दिया हुआ पत्र हाथ में लेकर पृथ्वीराज को बाँचकर सुना दिया। पत्र को सुनकर वे क्रोध से भर गए और कयमास को दण्ड देने के लिए उनकी दोनों बाँहों में वाणावली शोभित होने लगी। दासी के द्वारा पृथ्वीराज को जगाया जाना उस समय ऐसा लग रहा था, मानों शेषनाग को उसकी पत्नी ने स्वयं ही जगाया हो।

विशेष—१. मुग्धा दासी द्वारा पृथ्वीराज को जगाया जाना शृङ्गार-परक हैं। साथ ही दासी का सम्राट के हृदय पर हाथ रखना मर्यादा-विरुद्ध भी है।

२. काव्य-सौन्दर्य—(क) 'छत्तिय', 'नयन्ननु', 'हथ्थ', 'अप्प' में व्यंजन-द्वित्व है। 'धरंत' की रूप-रचना अपभ्रंश की है, यह तत्कालिक कृदन्त है। 'चाहियउ', 'सुनावियउ', 'दाहियउ', 'जगावियउ' में 'स्वर-संयोग' है।

(ख) छन्द—रासा है। यह मात्रिक छन्द है। इसके प्रत्येक चरण में २१ मात्राएँ होती हैं।

(ग) रस—रौद्र-रस—स्थायी भाव क्रोध है। आश्रय पृथ्वीराज, आलम्बन कयमास, पटरानी का भेजा हुआ पत्र उद्दीपन, भुजाओं में वाणावलि शोभित होना और रिस में जलना अनुभाव है। उग्रता, चपलता, कंप, रोष आदि संचारी भाव हैं।

(घ) अलङ्कार—(अ) 'रोस रिस' में अनुप्रास।

(व) अन्तिम पंक्ति में दासी द्वारा पृथ्वीराज को जगाने में शेषनाग को उसकी पत्नी द्वारा जगाने की सम्भावना होने से उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

[८]

संग सयन्न न सथ्थि नृपत्ति न जानयउ।
दुहुं विच्चि इक दासिय संग संमानयउ।
इंदु फणेंदु नर्‌यंदन अथ्थि स भानयउ।
घरह घरिय दुहुं मझ्झि ततष्षिन आनयउ॥

शब्दार्थ—सयन्न=सेना। संग सयन्न=साथ की सेना। सथ्थि=साथी। विच्चि=बीच में। संमानयउ=सम्मानित किया, ले लिया। इन्दु=इन्द्र। फणेंदु=शेषनाग। नर्‌यंदन=नरेन्द्र, राजा लोग। अथ्थि=गोष्ठी। स=उससे। भानयउ=भंग या समाप्त कर दिया। घरह=घर। घरिय=घड़ी भर का समय। मझ्झि=बीच में। ततष्षिन=उसी क्षण। आनयउ=ले आई।

सन्दर्भ—पृथ्वीराज पटरानी और दासी के साथ उस महल में पहूँच जाते हैं, जिसमें कयमास करनाटकी दासी के साथ विहार कर रहा था।

अर्थ—संग की सेना और साथियों को भी पृथ्वीराज के जाने का पता नहीं

लगा। पटरानी और अपने बीच में एक दासी को संग में रखकर पृथ्वीराज ने उसे (दासी को) सम्मानित किया। उसने राजाओं, शेषनाग और इन्द्र की भी गोष्ठियों को समाप्त कर दिया। वह दो घड़ियों में पृथ्वीराज को करनाटकी दासी और कयमास के विलास-भवन पर ले आई।

व्याख्या—दासी से पटारानी का पत्र पाकर महाराज आखेट-शिविर से तत्काल ही महल को चले आये। उसके आने की बात को उनके साथ की सेना और साथी भी न जान सके। वे बिना किसी से कुछ कहे सुने ही महल में आ गये। महल में आकर पृथ्वीराज ने अपने और पटरानी इन दोनों के बीच में एक दासी को ले लिया और इस प्रकार दासी को सम्मानित किया। वे पटरानी और दासी सहित कयमास के केलि-भवन में आ गये। उस समय आने के वेग से पृथ्वीराज, पटरानी और दासी ने इन्द्र, शेषनाग और नरेन्द्रों की गोष्ठियों के गर्व को भी भंग कर दिया। दासी दो घड़ी के समय में ही पृथ्वीराज को उस महल में ले आई, जिसमें कयमास करनाटकी दासी के साथ रति-क्रीड़ा कर रहा था।

विशेष—१. कथा-विकास की दृष्टि से यह छन्द महत्त्वपूर्ण है। पूरे छन्द में पृथ्वीराज के आखेट-शिविर से पटरानी के महल तक आने और वहाँ से पटरानी तथा दासी के साथ कयमास के महल तक पहुँचने की कथा संक्षेप में सामने आ जाती है।

२. शासन-व्यवस्था सम्बन्धी यह सूचना मिलती है कि राजा महत्त्वपूर्ण कार्यों और योजना को अपने साथियों तथा सेना से भी गुप्त रखते थे।

३. भाषा में ओज गुण की प्रधानता है। सयन्न, सथ्थि, बिच्च, अथ्थि आदि में व्यंजन-द्वित्व है।

४. **छन्द**—रासा छन्द है।

५. **अलंकार**—(क) "संग......सथ्थि' में 'स' वर्ण की एक से अधिक वार आवृत्ति होने से वृत्यनुप्रास।

(ख) अनुप्रास।

(ग) 'इन्दू......भानयउ' में प्रतीप।

(घ) 'घरह......आनयउ' में अतिशयोक्ति।

[९]

नवति नवप्पल निसि गलित, धनु घुम्मइ चिहुं पासि ।
पानि न अंषि न संचरइ, महुल कहल कयमास ।।

शब्दार्थ—नवति नवप्पल=निन्यानवें पल। निसि गलित=रात बीतने पर। धनु घुम्मइ=धनुष घूमता है। चिहुँ पास=चारों ओर। पानि=हाथ। अंषि=आँखें। संचरइ=संचरण कर रहे थे। महुल=महल। कहल=केलि।

सन्दर्भ—इस छन्द में चन्द ने रात्रि के अन्धकारपूर्ण वातावरण में पृथ्वीराज द्वारा कयमास वध करने के लिए सर-संधान करने के प्रसंग का वर्णन किया है—

अर्थ—निन्यानवें पल रात्रि और व्यतीत हो गई थी। पृथ्वीराज का धनुष कयमास के चारों ओर घूमने लगा। जब कयमास महल में केलि कर रहा था, उस समय अन्धकार के कारण आँखें और हाथ संचरण नहीं कर पा रहे थे।

व्याख्या—जिस समय पृथ्वीराज कयमास के महल में आ गये थे, उस समय निन्यानवें पल रात्रि और व्यतीत हो चुकी थी। पृथ्वीराज का धनुष कयमास का वध करने के लिए उसे लक्ष्य बनाकर उसके चारों ओर घूमने लगा। उस समय कयमास करनाटकी दासी के साथ केलि कर रहा था। रात्रि के सघन अन्धकार के कारण हाथ और नेत्र संचरण नहीं कर पा रहे थे।

विशेष—१. रात्रि की अन्धकारपूर्ण प्रकृति का वातावरण उपस्थित किया गया है।

२. 'महुल कहल कयमास' शृंगार-रस की व्यंजना है।

३. 'नवप्पल', 'घुम्मइ' में व्यंजन-द्वित्व है।

४. 'संचरइ' में स्वर-संयोग है।

५. छन्द—दोहरा (दोहा)।

६. अलंकार—(क) 'नवति······निसि' में 'न' वर्ण की एक से अधिक बार आवृत्ति होने से वृत्यनुप्रास।

(ख) 'महुल······कयमास' में अनुप्रास।

[१०]

रतिपति मुच्छि अलुष्षि तन, धनु ड्डुल्लइ बिय काज।
तड़ित कियउ अंगुलि अधम, सु भरिग बान प्रथीराज।

शब्दार्थ—रतिपति=कामदेव। मुच्छि=मूर्च्छित। अलुष्पि=अलक्ष्य। तन=शरीर। धनु=धनुष। डुल्लइ=डोल रहा था। विय=दोनों। तड़ित=विजली। कियउ=किया। अधम=सवसे छोटी। सु=सो। भरिग=भर गया।

सन्दर्भ—प्रस्तुत छन्द में करनाटकी दासी और कयमास के वध के लिए पृथ्वीराज के सर-संधान करने के प्रसंग का वर्णन किया गया है—

अर्थ—जिनके शरीर काम से मूर्च्छित और अलक्ष्य हो रहे थे, ऐसे दोनों के वध के लिये पृथ्वीराज का धनुष डोल रहा था। अधम (सवसे छोटी) उँगली ने विजली के समान कार्य किया और पृथ्वीराज का वाण धनुप पर चढ़ गया।

व्याख्या—पृथ्वीराज का धनुष कयमास को लक्ष्य बनाने के लिये घूम रहा है। वे देखते हैं कि कयमास करनाटकी दासी के साथ विलास-क्रीड़ा में डूब रहा है। कयमास और करनाटकी दासी दोनों के शरीर काम-वासना में मूर्च्छित हो रहे थे और अन्धकार के कारण वे अलक्ष्य भी थे। पृथ्वीराज का धनुष उनका वध करने को उद्यत था। उसी समय पृथ्वीराज की सवसे छोटी उँगली ने विजली के समान कार्य किया और उनका वाण धनुष पर जा चढ़ा।

विशेष—१. **शृंगार-रस**—कवि ने रति-क्रीड़ा और सुरति का वर्णन किया है। परन्तु वर्णन इतना संयत है कि स्थूलता और अश्लीलता नहीं आने पाई है। वह 'रतिपति मुच्छि अलुष्पि' कहकर ही पर्दे की वात का संकेत कर देता है। इतने से ही रति-विलास का यथार्थ चित्र सामने आ जाता है।

२. पृथ्वीराज के वाण-संधान में 'उत्साह' भाव की सुन्दर व्यंजना हो गई है।

३. 'अलुष्पि', 'डुल्लइ' में व्यंजन-द्वित्व है।

४. छन्द—दोहरा (दोहा)।

५. अलंकार—(क) धनुष पर अँगुली से विजली के समान वाण-संधान होने से उपमा।

(ख) 'अंगुली अधम', में 'अ वर्ण की एक वार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास।

(ग) पूरे दोहे में अतिशयोक्ति अलंकार है।

[११]

भरिग वान चहुआंन जानि दुरि देव नाग नर।
मुट्ठि दिट्ठि रिसि डुलिग चुक्कि निक्करिग एक सर।
उभय बान दिअ हथ्थि पुठ्ठि परमारि पचारिय।
वानावरि तटकंति घुटित धर धरनि आधारिय।
किय कव्वु सव्वु सरसइ गनित, फुणिव कहउ कवि चंद तत।
इम परउ अयास अवास तइं, जिम्मि निसि नसित नषत्रपति ।।

शब्दार्थ—भरिग=भर गया। "भरिग वान···नाग नर"=पृथ्वीराज का वाण चढ़ गया, यह जानकर देवता, नाग तथा मनुष्य छिप गये। दुरि=छिप गये। मुट्ठि=मुट्ठी। दिट्ठि=दृष्टि। रिसि डुलिग=क्रोध से डोल गया। चुक्कि=चूक गया। निक्करिग=निकल गया। मुट्ठि दिट्ठि······एक सर=क्रोध के कारण पृथ्वीराज की मुट्ठी तथा दृष्टि डोल गई और एक वाण चूककर निकल गया। उभय=दो। दिअ=दिये। हथ्थि=हाथ में। पीठ=पीछे। परमारि=परमारि पटरानी। परचारि=ललकार कर उत्तेजित किया। उभय वान······पचारि=परमारी पटरानी ने उसके हाथ में दो वाण और दिये और पीछे से ललकार कर उत्तेजित किया। वानावरि=वाणावलि। तटकंति=टंकार के होते ही। घुटित=आहत। धर=धड़। आधारिय=गिर पड़ा। "वानावरि······आधारिय"=वाणावलि से टंकार होते ही कयमास का आहत धड़ आकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। किय=किया। कव्वु=काव्य। सव्वु=सव। सरसइ=सरस्वती। गनित=विचारकर। फुणिव=पुनः, तदनन्तर। कहउ=कहा। तत=तव। "किय कव्वु······तत"=सारा काव्य सरस्वती ने विचार के किया और तदनन्तर उसने इसे कवि चन्द से कहा। इम=इस प्रकार। परउ=पड़ा। अवास=महल। तइं=से। जिम=जिस प्रकार। निसि=रात्रि। नसित=नष्ट होने पर। नवत्रमति=नक्षत्रों का स्वामी चन्द्रमा "इम············नषत्रपति"=कयमास आकाश चुम्बी प्रासाद से इस प्रकार गिरा जैसे रात्रि में चन्द्रमा विनष्ट होकर गिरा हो।

व्याख्या—पृथ्वीराज ने कयमास का वध करने के लिए धनुष पर वाण चढ़ा लिया। उनके द्वारा धनुष पर वाण चढ़ाते ही भय के कारण देवता, नाग और मनुष्य छिप गये। अत्यधिक क्रोध के कारण धनुष पर वाण संधान करते

हुए पृथ्वीराज की मुट्ठी और दृष्टि डोल गई। इससे एक वाण अपने लक्ष्य से चूक कर निकल गया। यह देखकर परमारी पटरानी ने उनके हाथ में पीछे से दो वाण और दे दिये और ललकार कर उत्तेजित किया। पृथ्वीराज ने पुनः वाण संधान किया। धनुष से वाण छूटते ही कयमास का सिर से छिन्न धड़ आकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। यह सारा काव्य देवी सरस्वती ने विचार कर किया और इसके पश्चात् कवि चन्द ने इसे कहा, अर्थात् चन्द कवि ने इस प्रकार वर्णित किया कि मंत्री कयमास का धड़ आकाश के समान ऊँचे आवास से इस प्रकार गिरा जैसे रात्रि के चन्द्रमा रात्रि के व्यतीत होने पर आकाश से गिरा हो।

विशेष—१. पृथ्वीराज के शौर्य और पराक्रम का निरूपण है। पृथ्वीराज के धनुष पर वाण रखते ही देवता, नाग और मनुष्य छिप जाते हैं, यहाँ भय की व्यंजना हो जाती है।

२. 'मुट्ठि', 'दिट्ठि', 'हत्थि', 'कव्वु' आदि में व्यंजन-द्वित्व है और अपभ्रंश का प्रभाव स्पष्ट है।

३. 'दिअ', 'कहउ', 'परेउ' में स्वर-संयोग है।

४. छन्द—छप्पय (कवित्त)।

५. अलंकार—(क) अनुप्रास।

(ख) 'धर-धरनि' में सभंगपद यमक।

(ग) 'इम परउ······नषत्रपति' में उपमा।

(घ) "वानावरि···आधारिय" में कारण के साथ ही कार्य होने से अक्रमातिशयोक्ति।

६. रस—रौद्र रस, पृथ्वीराज आश्रय, कयमास आलम्वन, क्रोध के कारण मुट्ठी और दृष्टि डोलना अनुभाव है।

[१२]

सुन्दरि गहि सारंगो दुज्जन दमनोइ पिष्षि साइक्क।
किं किं विलास गहियं किं किं दुष्षाय दुष्षाय॥

शब्दार्थ—गहि=पकड़ो। सारंगो=धनुष। दुज्जन=दुष्ट कयमास। दमनोइ=दमन करने वाले। पिष्षि=देखो। साइक्क=वाण। "सुन्दरी·········साइक्क"=हे सुन्दरी ? तू इस धनुष को पकड़ और दुष्ट कयमास का दमन

करने वाले वाणों को देख। किं-किं=क्या-क्या। विलास=शृङ्गार-क्रीड़ा। गहि=किया। दुष्षाय=दुखों के लिए। "किं किं........दुष्पाय"=उसने क्या-क्या विलास किये, किन-किन दुखों के लिये।

संदर्भ—यहाँ पृथ्वीराज कयमास वध के अनन्तर पटरानी को धनुप-वाण दिखाते हुए कहते हैं—

व्याख्या—हे सुन्दरी ! तू इस धनुष को पकड़ और दुष्ट कयमास का वध करने वाले मेरे वाण को देख, उस दुष्ट कयमास ने किन-किन दुःखों के लिये क्या-क्या विलास किये। विलास-क्रीड़ाओं में डूबकर उसने यह सोचा भी नहीं था कि इसका परिणाम क्या हो सकता है ? विलास-क्रीड़ाओं के ही कारण उसे अपने जीवन से हाथ धोना पड़ा।

विशेष—१. इस छन्द में विलास की सार-हीनता और विलास के दुष्परिणाम की ओर संकेत है।

२. दूसरी पंक्ति में लोकोक्ति है।

३. छन्द—गाथा।

४. अलंकार—अनुप्रास, पुनरुक्तिप्रकाश।

[१३]

षनि गड्डउ नृप अर्ध निसि, सम दासी सुरया ति।
देव धरह जल घन अनिल, कहिग चंद कवि प्राति॥

शब्दार्थ—षनि=खोदकर। गड्डउ=गाढ़ दिया। सुरया=सुन्दर। ति=साथ। "षनि............ति"=पृथ्वीराज ने उस सुन्दर दासी के साथ कयमास को आधी रात्रि के समय गड़वा दिया। देव=देवताओं। धरह=पृथ्वी। घन=वादल। अनिल=वायु। कहिग=कहा गया। प्राति=प्रातः काल के समय। "देव.........प्राति"=देवताओं, पृथ्वी, जल, वादल और वायु से भी चन्द कवि ने प्रातः काल कहा।

संदर्भ—प्रस्तुत छन्द में पृथ्वीराज द्वारा कयमास को वध के पश्चात् पृथ्वी में गड़वा देने के प्रसंग का वर्णन है।

व्याख्या—महाराज पृथ्वीराज ने वध किये हुए कयमास और सुन्दरी करनाटकी दासी को आधी रात्रि के समय ही गड्ढा खोदवाकर गड़वा दिया। चन्द कवि ने कयमास के वध तथा उसे भूमि में गाड़ दिये जाने के समाचार

को प्रातःकाल देवताओं, पृथ्वी के प्राणियों, जल, वादलों तथा वायु से कहा अर्थात् सबेरा होने पर चन्दवरदाई ने पृथ्वीराज द्वारा कयमास-वध की घटना को सर्वत्र प्रकाशित कर दिया।

विशेष—१. इस छन्द में कयमास को दण्ड देने से तत्कालीन कठोर शासन-नीति का संकेत मिलता है।

२. दूसरी पंक्ति में घटना के व्यापक प्रसार का संकेत दिया गया है। चन्द की अभिव्यक्ति-शैली की यह विशेषता है कि वे संकेत में ही घटनावली को प्रकाशित कर देते हैं।

३. 'घरह' शब्द में अन्त्य 'ह' के योग की प्रवृत्ति तत्कालीन भाषा-प्रवृत्ति को सूचित करती है।

४. छन्द—दोहरा (दोहा)।

५. अलंकार—'सम दासी सुरया ति' में दीपक अलंकार।

[१४]

अप्पु राय वलि वनि गयु, सुन्दरि संउपि स दाय।
सुपनंतरि कवि चंद सउं, सरसइ वद्दि सु आय॥

शब्दार्थ—अप्पु=स्वयं ही। राय=राजा पृथ्वीराज। वलि=लौटकर। वनि=वन। गयु=गया। सुन्दरि=सुन्दरी पटरानी परमारी। संउपि=सौंपकर। स=उस। दाय=उस दाय या सम्पत्ति के भेद को। "अप्पु···दाय"= पृथ्वीराज कयमास-वध के भेद को सुन्दरी परमारी पटरानी को सौंपकर वन को लौट आया। सुपनंतरि=स्वप्न में। सउं=से। सरसइ=सरस्वती। वद्दि= कही। सु=सो, वह। आय=आकर। "सुपनंतरि······आय"=स्वप्न में कवि चन्द से सारी घटना सरस्वती ने आकर वतलाई।

सन्दर्भ—पृथ्वीराज कयमास-वध का सारा रहस्य परमारी पटरानी तक सीमित रखकर वन को लौट जाते हैं। सरस्वती स्वप्न में सारी घटना चन्द को वतला देती हैं—

व्याख्या—कयमास और करनाटकी दासी का वध करके पृथ्वीराज उनको पृथ्वी खुदवाकर गढ़वा देते हैं। वे सारा रहस्य परमारी पटरानी को सौंपकर रात्रि में ही वन को लौट जाते हैं और किसी को कयमास-वध प्रसंग का पता

नहीं चलता। परन्तु सरस्वती कयमास-वध की सारी घटना चन्द को स्वप्न में सुना देती हैं।

विशेष—१. रात्रि में कयमाम-वध की घटना से तत्कालीन राजनीति में रहस्य को गुप्त रखने की प्रवृत्ति का पता चलता है।

२. इस छन्द से पता चलता है कि पृथ्वीराज पटरानी पर वहुत विश्वास करते थे।

३. चन्द स्पष्ट करते हैं कि उनका काव्य सरस्वती का कहा हुआ है, अतः विश्वसनीय है।

४. 'अप्पु', 'वद्दि' आदि शब्दों में व्यंजन-द्वित्व है। 'वलिं', 'सउंपि' पूर्वकालिक क्रियाएँ इकारान्त हैं।

५. छन्द—दोहरा (दोहा)।

६. अलंकार—अनुप्रास।

[१५]

सु जोतिष तप गति उपाय बिनु, नहि देष्यउं सुनि अष्षि।
तउ मानउं स्यामिनि सयल, जउ सु होइ परतष्षि॥

शब्दार्थ—सु=वह। तप गति=तपस्या। देष्यउँ=देखा। सुनि=सुनकर। अष्षि=आँखों से। "सु जोतिष......अष्षि"=ज्योतिष, तपोबल, तथा उपाय के विना मैंने कहा हुआ आँखों से नहीं देखा। तउ मानउँ=तो मानूंगा। सयल =समस्त। जउ=जो। परतष्पि=प्रत्यक्ष। "तउ......परतष्षि"=मैं वह सब तब मान सकता हूँ, यदि तू प्रत्यक्ष हो।

सन्दर्भ—प्रस्तुत छन्द में चन्द सरस्वती से प्रत्यक्ष होकर कयमास-वध की घटना सुनाने का अनुरोध करते हैं—

व्याख्या—चन्द को कयमास-वध की सारी घटना सरस्वती स्वप्न में बतलाती हैं। चन्द उनसे प्रत्यक्ष होकर स्वप्न को प्रमाणित करने का आग्रह करता है कि हे मातेश्वरी मैं न तो ज्योतिष जानता हूँ और न मेरे पास तपोवल ही है। मैंने कोई उपाय भी नहीं किया है। इन साधनों के बिना मुझे ज्ञान किस प्रकार हो सकता हैं। मैंने तो तेरा कहा हुआ सुना है। आँखों से देखा नहीं। आपकी सुनाई हुई घटना को तो मैं तब सत्य मान सकता हूँ, जब आप

प्रत्यक्ष होकर सुनायें। अतः आप प्रत्यक्ष होकर इस घटना को बताने की कृपा करें।

विशेष—१. इस छन्द में चन्द के चरित्र की महत्ता प्रतिपादित हुई है—

(क) वे सरस्वती को प्रत्यक्ष कर सकते हैं।

(ख) उनका काव्य सरस्वती से प्रमाणित वाणी है।

(ग) वे सिद्ध पुरुष हैं और ज्योतिष का भी ज्ञान रखते हैं।

२. 'अष्षि', 'परतष्षि' में व्यंजन-द्वित्व है।

३. 'देष्यउं', 'तउ', 'जउ' और 'मानउं' में 'स्वर-संयोग' है।

४. छन्द—दोहरा (दोहा)।

५. अलंकार—अनुप्रास।

[१६]

भइ परतष्षि कव्वि मनि आई।
उगति उकंठ कंठ समुहाई॥
बाहन हंस अंस सुषदाई।
तब तिहि रूप चंद कवि धाई॥

शब्दार्थ—भइ=हो गई। परतष्षि=प्रकट, प्रत्यक्ष। कव्वि=कवि चन्दवरदाई। उगति=उक्ति। उकंठ=उत्कंठा। कंठ समुहाई=कंठ में आने लगी। अंस=कन्धा। सुषदाई=सुख देने वाली। "तब तेहि···धाई"=तब उसके रूप का चन्द ने ध्यान किया।

सन्दर्भ—प्रस्तुत छन्द में चन्द के समक्ष सरस्वती के प्रत्यक्ष होने का वर्णन है—

व्याख्या—चन्द ने सरस्वती से प्रकट होने की प्रार्थना की। वे उसके कंठ में आई और इस प्रकार प्रत्यक्ष हो गईं। सरस्वती के प्रत्यक्ष होते ही चन्द के हृदय में नाना प्रकार से सरस्वती का वर्णन करने की उत्कठा जागृत हो गई। सरस्वती के वाहन हंस का कंधा सुख प्रदान करने वाला था। तब चन्द ने सरस्वती के उस रूप का ध्यान किया और वर्णन किया।

विशेष—१. यहाँ सरस्वती के प्रकट होने की कल्पना बड़ी ही सुन्दर और काव्यात्मक बन पड़ी है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी कहा है—

"भगत हेतु विधि भवन विहाई।
सुमिरत सारद आवति धाई॥"

२. पुराणों में 'हंस' सरस्वती का वाहन प्रसिद्ध है।

३. 'परतष्षि' और 'कष्षि' में व्यंजन-द्वित्व है।

४. छन्द—अडिल्ल—यह मात्रिक छन्द है। इसके प्रत्येक चरण में १६ मात्रायें और अन्त में यगण होता है।

५. अलंकार—(क) अनुप्रास।

(ख) 'उत्कंठ कंठ' में सभंग पद यमक।

[१७] (क)

मराल बाल आसनं।
अलित्त छाय सासनं।
सोहंति जासु तुंबरं।
सुराग राज धुंमरं।
कयंद केस मुक्करे।
उरग्ग बास विठ्ठरे।
कपोल रेख गातयो।
उवंत इंदु प्रातयो।

शब्दार्थ—मराल=हंस। वाल=बालक। अलित्त=भ्रमर। छाय=छाये हुए थे। सासनं=नियन्त्रण पूर्वक। जासु=जिसका। तुंवर=वीणा का तुम्वा। सुराग=सुन्दर राग। राज=शोभित हो रहा था। धुंमरं=धूम्र। कयंद=कलिंग, काले। केस=अलकावली। मुक्करे=खुले हुए। उरग्ग=सर्प। वास=सुगन्ध। विठ्ठरे=बैठे हुए हों। गातयो=शरीर में। उवंत=उगा हुआ। प्रातयो=प्रातः।

सन्दर्भ—सरस्वती चन्द के आग्रह पर प्रत्यक्ष हो जाती हैं। वे उनकी वन्दना करने लगते हैं।

व्याख्या—देवी सरस्वती का आसन (सवारी) बाल हंस की थी। उन पर संयत रूप में भ्रमर छाये हुए थे। देवी सरस्वती के हाथों में वीणा का तुम्वा परम शोभायमान हो रहा था। उस वीणा से निकलने वाले सुन्दर-सुन्दर रागों का स्वर बड़ा सुन्दर लग रहा था।

देवी सरस्वती की केश-राशि कलिंद के समान और खुली हुई थी। वह ऐसी प्रतीत होती थीं, मानों, मुख की सुन्दर सुगन्ध लेने के लिए सर्प बैठे हुए हों।

सरस्वती के शरीर में उनके कपोलों की रेखा ऐसी प्रतीत होती थी मानो प्रातःकाल में चन्द्रमा उदय हुआ हो।

अलंकार—(क) 'अलित्त······सासनं' में केशों में भ्रमरों की सम्भावना होने से उत्प्रेक्षा।

(ख) 'कयंद केस' में उपमा।

(ग) लटकते हुए केशों में मुख-वास लेते हुए सर्पों की सम्भावना होने से उत्प्रेक्षा।

(घ) कपोलों में चन्द्रमा के उदय होने की सम्भावना होने से उत्प्रेक्षा।

[१७] (ख)

बभूव जूव षंचये।
कलंक राह वंचये।
श्रवन्न ताट पिष्षयो।
अनंग रथ्थ चक्कयो।
उछंमि वारि षंजयो।
तिरंति रूव रंजयो।
सुबाल कीर सुद्धयो।
तकंत रत्त बिंबयो।

शब्दार्थ—बभूव=बहुत। जूव=जुआ। षंचये=खींच रहा हो। कलंक=कालिमा। राह=राहु। वंचये=बचने के लिये। श्रवन्न=कानों में। ताट=ताटंक। पिष्षयो=दिखाई पड़ रहे थे। अनंग=कामदेव। रथ्थ=रथ। चक्कयो=चक्र, पहिया। उछंमि=छोटे। षंजयो=खंजन। तिरंति=तैर रहे हों। रूव=रूप। रंजयो=रंजित जल। सुबाल=छोटा। कीर=तोता। सुद्धयो=सरल स्वभाव का।

सन्दर्भ—यहाँ चन्द ने अपने सामने प्रत्यक्ष हुई सरस्वती के सौन्दर्य का वर्णन किया है—

व्याख्या—देवी सरस्वती का चन्द्रमा के समान मुख ऐसा लगता है, मानो वह चन्द्रमा राहु के कलंक से बचने के लिये अपने मृग-रथ के जुए को बड़ी शीघ्रता और व्यग्रता से खींच रहा हो। सरस्वती के कानों के कर्ण-भूषण ऐसे शोभा दे रहे हैं, मानो वे अशरीरी कामदेव के रथ के पहिये हों। देवी सरस्वती के नेत्र ऐसे शोभा दे रहे हैं, मानों दो जल-खंजन पक्षी रूप से रंजित जल में तैर रहे हों।

देवी सरस्वती की नासिका ऐसी शोभा दे रही है, मानो सरल स्वभाव का वाल कीर लाल विम्वाफल की ओर ताक रहा हो।

अलंकार—१. 'वभूव······वंचये' में 'ग्रीवा' में मृग-रथ के जुए की सम्भावना होने से उत्प्रेक्षा।

२. 'श्रवन्न······चक्कयो' में ताटंकों में कामदेव के रथ के पहियों की बड़ी ही सुन्दर और मौलिक कल्पना की गई है। यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है।

३. 'उछमि······रंजयो' में नेत्रों में वारि-खंजन की सम्भावना होने से उत्प्रेक्षा।

४. 'सुवाल······विम्वयों' में अधरों में विम्वाफल और नाक में कीर की सम्भावना होने से उत्प्रेक्षा।

[१७] (ग)

दिपंत तुच्छ दिठ्ठयो।
विची अनार फुट्टयो।
सुग्रीव कंठ मुत्तयो।
सुमेर गंग पत्तयो।
भुजा स जासु तुड्डरं।
सुरत्ति लग्गि अंमरं।
नषादि अद्द रष्षिणं।
धरंति सच्छ लष्षणं॥

शब्दार्थ—दिपंत=दीप्त हो रहा था। तुच्छ=छोटे-छोटे। दिठ्ठयो=दिखाई पड़ रहा था। फुट्टयो=फूट गया हो। सुग्रीव=सुन्दर गर्दन। कंठ=

कंठहार, माला। मुत्तयो=मोतियों का। सुमेर=सुमेरु पर्वत। पत्तयो=प्राप्त किया हो। स=उन। तुड्डरं=आभूषण विशेष (भुजा में पहनने का एक आभूषण) भुजवन्ध, केयूर। सुरत्ति=सुन्दर-सुन्दर घुँघची। लग्गि=लगी हुई थी। अंमरं=वस्त्र। नषादि=नाखून। अद्द=कोमल। धरंति=धारण करते थे। सच्छ=स्वच्छ। लष्षणं=लक्षण।

सन्दर्भ—इन छन्दों में चन्द सरस्वती के नख-शिख-सौन्दर्य का वर्णन कर रहे हैं।

व्याख्या—देवी सरस्वती के छोटे-छोटे स्वच्छ और दीप्त दाँत चमकते हुए ऐसे दिखाई पड़ रहे हैं, मानो अनार का फल बीच से फट गया हो। उनकी ग्रीवा में मोतियों की माला है, जो ऐसी लग रही है मानो सुमेरु से गंगा को प्राप्त किया हो। माला ग्रीवा से नीचे वक्ष पर लटक रही है, जो सुमेरु से बहती हुई स्वच्छ-सलिला गंगा की धारा के समान प्रतीत हो रही है।

देवी सरस्वती भुजाओं में केयूर धारण किये हुए हैं। उन्होंने जो वस्त्र धारण कर रखा है, उसमें घुँघचियाँ लगी हुई हैं। उनके नाखून कोमल हैं। वे रक्षित हैं अर्थात् काटे नहीं गए हैं। वे स्वच्छ लक्षणों को धारण करते हैं।

अलंकार—१. 'दिपंत……फुट्टयो' चमकते हुए दाँतों में फटे अनार की सम्भावना होने से उत्प्रेक्षा अलंकार।

२. 'सुग्रीव……पत्तयो' में ग्रीवा से लटकती और वक्षस्थल पर सुशोभित मोतियों की माला में सुमेरु से गंगा के निकालने की सम्भावना होने से उत्प्रेक्षा अलंकार है।

[१७] (घ)

कनक्क सा लिपच्चया।
सुराग सीस दिठ्ठया।
विविच्च रोम रिंथये।
मनु पपील रिंगये।
हरंति छब्बि जामिनी।
कटित्त हीनि कामिनी।
अभाष दोष वंचही।
सुहं त देव संचही॥

शब्दार्थ—कनक्क=स्वर्ण, सोना। सा=उसका। विपच्चया=जड़ाव युक्त। सुराग=सुन्दर। सीस=शीशफूल, आभूषण विशेष। दिठ्ठया=दिखाई पड़ रहा है। विविच्च=युक्त। रोम=रोमावली। रिंथये=अवली। पपील=पिपीलिका, चींटी। रिंगये=रेंग रही हों। हरंति=हरण कर रही हो। छव्विं=मुख-कान्ति। जामिनी=रात्रि। कटित्त=कटि-प्रदेश। हीन=क्षीण, पतली। कामिनी=रमणी। अभाष=न कहने योग्य। दोष=कलंक। वंचही=वचते हैं। सुहं=शुभ, कल्याण। संचही=संचय करते हैं।

सन्दर्भ—चन्द के आग्रह पर सरस्वती देवी उनके समक्ष प्रत्यक्ष हो गई। वे उनकी वन्दना करते हुए उनके नख-शिख सौन्दर्य का वर्णन कर रहे हैं।

व्याख्या—सरस्वती ने अपने शीश और केशों पर शीशफूल धारण कर रखा है। वह स्वर्ण का वना हुआ और विचित्र जड़ाव से युक्त है। देवी सरस्वती के वक्ष के मध्य में रोमावली विलकुल स्पष्ट दिखाई पड़ रही है। वह ऐसी दिखलाई पड़ रही थी, मानो चींटियाँ रेंग रही हों। रोमावली कालिमा में रात्रि की छवि का भी अपहरण कर रही है। कामिनी देवी सरस्वती की कटि बहुत क्षीण है।

देवी सरस्वती के गुप्तांगों को वर्णन न करके अभाषण (अश्लील वात कहने) के दोष से बचते हैं ओर देवता शुभ कल्याण का संचय करते हैं।

विशेष—१. यहाँ सरस्वती का नख-शिख वर्णन एक रमणी के नख-शिख वर्णन के रूप में शृंगार-परक है परन्तु कवि ने अश्लीलता से वचने की स्पष्ट घोषणा की है। वर्णन संयत और शिष्ट है।

२. अलंकार—रोमावली में चींटियाँ रेंगने की संभावना होने से उत्प्रेक्षा।

[१७] (ङ)

अपुठ्ठ रंभ नारुहे।
अदेव बंभु मानुए।
सुरंग चंग पिंडुरी।
कली सु चंप अंगुरी।
सवद्द वद्द नुप्पुरे।
चलंति हंस अंकुरे।
सुभाय पाय रंगु जा।
सु अध्ध रत्त अंबुजा॥

शब्दार्थ—अपुठ्ठ=कोमल। रंभ-नारुहे=कदली-स्तम्भ। अदेव=अनीश्वर विश्वासी। वंभु=ब्रह्म। मानुए=मानो। सुरंग=सुन्दर। चंग=अच्छी। पिंडुरी=पिंडुलियाँ। चंप=चम्पा। सवद्द=शब्द। वद्द=बोल रहे थे। नुप्पुरे=नूपुर। सुभाय=स्वाभाविक रूप से। रंगु=रंजित। अध्ध=नीचे। रत्त=लाल। अंवुजा=कमल।

सन्दर्भ—इन छन्दों में चन्द ने सरस्वती की जंघाओं, पिंडलियों, नूपुरों और अरुण पगतलों के सौन्दर्य का वर्णन किया है।

व्याख्या—देवी सरस्वती की जंघाएँ कोमल हैं। वे ऐसी लगती हैं, मानो केले के स्तम्भ हों। अथवा अनीश्वर विश्वासी के लिए वे मानो स्थूल ब्रह्म हों। अर्थात् उन ज़ंघाओं को देखकर ऐसा लगता था मानो अनीश्वर विश्वासी भी स्थूल ब्रह्म की उपासना करने लगा हो। नास्तिक अनीश्वर विश्वासी लोग उन जंघाओं को ही स्थूल ब्रह्म समझकर उन्हीं की उपासना करते हैं। देवी सरस्वती की पिंडलियाँ भी बड़ी सुन्दर हैं और उनकी अँगुलियाँ चम्पे की कलियों के समान कोमल हैं। सरस्वती ने पैरों में नूपुर पहन रखे थे, जो चलने पर शब्द कर रहे हैं। उनको देखकर ऐसा लगता था मानो वाल हंस चल रहे हों।

देवी सरस्वती के चरण बिना रंगे हुए स्वभावतः लालिमा युक्त हैं। वे ऐसे लगते हैं, मानो लाल कमल हों, जोकि पैरों की लाली के रूप में दिखलाई पड़ रहे हैं।

१. **छन्द**—अर्द्ध नाराच—यह वर्णिक छन्द है। इसके प्रत्येक चरण में ८ वर्ण होते हैं। अन्त में लघु-गुरु क्रमशः रहता है।

२. **अलंकार**—उत्प्रेक्षा, अनुप्रास, 'सवद्द वद्द' में सभंग पद यमक।

३. **भाषा**—व्यंजन-द्वित्व, व्यंजन-संयोग की सुरक्षा, स्वर-संयोग आनुनासिकता की प्रवृत्ति भाषा की प्राचीनता सिद्ध करती है।

४. नख-शिख वर्णन के अन्तर्गत शृंगार का वर्णन अवश्य है परन्तु कहीं भी अश्लीलता नहीं आने पाई है। कवि ने बड़े संयम से सांकेतिक रूप में वर्णन किया है।

[१८]

अंवुज विकस बास अलि आयौ।
सांमि वयनि सुन्दरि समझायौ।

निस पल पंच घरिय दोइ धायौ ।
आषेटक नंषे नृप आयौ ।।

शब्दार्थ—अम्बुज विकास=कमलिनी विकसित होने लगी । वास=सुगन्ध । अलि=भ्रमर । सांमि=स्वामी । वयनि=वचनों में । निस=रात्रि । पंच=पाँच । घटिय=घड़ी भर का समय । दोइ=दो । धायौ=दौड़ा था । आखेटक=शिकार । नंषे=समाप्त कर ।

सन्दर्भ—प्रातः होने पर पृथ्वीराज शिकार को समाप्त कर राजधानी में लौट आते हैं । प्रस्तुत छन्द में इसी प्रसंग का वर्णन है ।

व्याख्या—सवेरा हो गया, कमलिनी विकसित होने लगी, उसकी सुगन्ध को प्राप्त करने के लिए लुब्ध भ्रमर आ गया । उसी स्वामी भ्रमर ने सुन्दरी कमलिनी को समझाया । भाव यह है कि सवेरा होने पर विकसित कमलिनी पर गुंजार करते हुए भ्रम इस प्रकार शोभा दे रहे थे, मानो भ्रमर अपने सुन्दर शव्दों की गुंजार से कमलिनी प्रिया को मना रहा हो । पृथ्वीराज कयमास-वध के लिए आखेट-स्थल से राजमहल तक आने और कयमास का वध करके पुनः आखेट-शिविर तक लौटने में रात्रि में दो घड़ी और पाँच पल दौड़ते ही रहे थे । अव वे आखेट को समाप्त करके राजधानी में लौट आये ।

विशेष—१. प्रातःकालीन प्रकृति का सुन्दर वातावरण प्रस्तुत किया गया है, साथ ही शृङ्गार की सुन्दर व्यंजना हुई है । यहाँ भ्रमर को नायक और कमलिनी को मानवती नायिका के रूप में चित्रित किया गया हैं । 'सांमि······समझायौ' में नायक द्वारा मानवती नायिका को मनाने का सजीव दृश्य सामने आ जाता है ।

२. भाषा और व्याकरण की दृष्टि से 'आयौ', 'धायौ' और 'समझायौ' में भूतकालिक क्रियाएँ प्राचीन व्रज भाषा की ओकारान्त प्रवृत्ति की झलक देती हैं ।

३. **छन्द**—अडिल्ल ।

४. **अलंकार**—'विकस वास' में 'व', 'सुन्दरि समझायौ' में 'स', 'पल पंच' में 'प' और 'नंषे नृप' में 'न' वर्ण की एक बार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास है ।

५. कमलिनी पर भ्रमर की गुंजार से नायक द्वारा मानवती नायिका को मनाने के भाव की व्यंजना हो रही है । अतः शैली में व्यंजना और सांकेतिकता की प्रधानता है ।

[१९]

मझ्झ पहुर पुच्छइ तिहि पंडिय।
कहि कवि विजय साह जिह डंडिय।
सकल सूर बोलिव सभ मंडिय।
आसिष जाइ दीध कवि चंडिय।

शब्दार्थ—मझ्झ=वीच में। पहुर=प्रहर। पुच्छइ=पूछने लगा। साह=शाहवुद्दीन गोरी। जिहि=जिस प्रकार। डंडिय=दण्डित किया। बोलिव=वुलाकर। सभ मण्डिय=सभा जोड़ी। आसिष=आशीर्वाद। जाइ= जाकर। दीघ=दिया। चण्डिय=उग्र कवि चन्दवरदाई।

सन्दर्भ—प्रस्तुत छन्द में पृथ्वीराज के आखेट से लौटकर सभा जोड़ने और चन्द से शाहवुद्दीन पर विजय का वर्णन करने के आग्रह का वर्णन है।

व्याख्या—सवेरा होने पर पृथ्वीराज आखेट से लौटकर आ गये और प्रथम प्रहर के मध्य कवि चन्द से कहा कि हे कवि ! मैंने शाहवुद्दीन को पराजित कर जो दण्डित किया, मेरी उस विजय का वर्णन करो। इसके पश्चात् महाराज पृथ्वीराज ने समस्त शूर-वीर और सामन्तों को वुलाकर सभा जोड़ी, जिसमें स्वाभिमानी चन्द कवि ने आकर महाराज को आशीर्वाद दिया।

विशेष—डा० माताप्रसाद गुप्त ने 'विजय' का अर्थ जयानक कवि-कृत 'पृथ्वीराज विजय' से लिया गया है। यह बात इतिहास और शिलालेखों से सिद्ध हो चुकी है कि जयानक नाम का काश्मीरी कवि पृथ्वीराज के दरवार में था। जिसने "पृथ्वीराज विजय" काव्य की रचना की। यहाँ इस छन्द की प्रथम दो पंक्तियों में 'विजय' का अर्थ 'पृथ्वीराज विजय' लेना ही उपयुक्त है। इस छन्द से यह व्यंजित है कि प्रथम प्रहर के मध्य जयानक से कहा कि हे पण्डित ! शाहवुद्दीन पर मैंने जो विजय प्राप्त की उसका वर्णन करो। इसके पश्चात् उन्होंने सभा वुलाई और उसमें चन्द ने आकर आशीर्वाद दिया। अतः प्रथम दो पंक्तियों के अर्थ निम्न प्रकार करना चाहिए।

"प्रथम प्रहर के मध्य के समय पृथ्वीराज पण्डित जयानक से कहने लगे कि हे कवि तुम मेरी विजय का काव्य—'पृथ्वीराज विजय' कहो।"

—डा० माताप्रसाद गुप्त

काव्य-सौन्दर्य—१. भाषा की दृष्टि से 'मझ्झ' में व्यंजित-द्वित्व की प्रवृत्ति है। 'दीध' राजस्थानी से प्रभावित भूतकालिक क्रिया है।

२. छन्द—'अडिल्ल'।

३. अलंकार—अनुप्रास।

[२०]

प्रथम सूर पुच्छइ चहआनहुं।
हइ कयमासु कहूं कोइ जानहुं।
तरणि छिपंत संझि सिर नायउ।
प्रात देव भुहुल न पायउ॥

शब्दार्थ—सूर=शूर-वीर। पुच्छइ=पूछता है। कहुँ=कहीं। जानहुं=जानते हो। "प्रथम सूर·········जानहुं"=पहले प्रहर में पृथ्वीराज चौहान ने सभा के शूर-वीरों से पूछा क्या कोई जानता है कि कयमास कहाँ है? तरणि छिपंत=सूर्य छिपते समय। संझि=संध्याकाल में। सिर नायउ=प्रणाम किया था। मुहुल=महल।

सन्दर्भ—सभा में पृथ्वीराज कयमास के विषय में पूछते हैं। सभासद उत्तर देते हैं कि उन्होंने कल संध्या के बाद से उसे नहीं देखा।

व्याख्या—आखेट से लौटकर महाराज पृथ्वीराज चौहान ने शूर-वीर और सामन्तों को बुलाकर सभा जोड़ी। उन्होंने सभासदों से पूछा कि तुम में से क्या कोई यह जानता है कि कयमास कहाँ है, सभासदों ने उत्तर दिया कि उन्होंने सूर्य के छिपते समय संध्याकाल में उसको प्रणाम किया था, परन्तु प्रातःकाल हमने उनको महल में नहीं पाया।

विशेष—१. पृथ्वीराज कयमास का रात्रि में वध कर चुके हैं। वे परीक्षा की दृष्टि से ही सभासदों से प्रश्न करते हैं।

२. 'पुच्छइ', 'नायउ', 'पायउ' में 'स्वर-संयोग' भाषा की प्राचीनता का द्योतक है।

३. छन्द—मुडिल्ल—इसमें प्रत्येक चरण में १६ मात्रायें होती हैं। इन १६ मात्राओं में गुरु लघु या चौकलों की स्वच्छन्दता रहती है। इसमें जगणों का भी प्रयोग होता है।

४. अलंकार—अनुप्रास।

[२१]

उदय अगस्ति नयन दिठि, उज्ज्जल जल ससि कास।
मोहि चंद हइ विजय मन, कहहुं कहां कयमास ।।

शब्दार्थ--डिठि=दिखाई पड़ने लगे। ससि=चन्द्रमा। कास=एक घास विशेष, जो वर्षा के अन्त और शरद के प्रारम्भ में विकसित होती है।

"फूले कास सकल महि छाई।
जनु वर्षा ऋतु प्रकट बुढ़ाई ।।"

"उदय अगस्ति······कास"=अगस्त्य का उदय हो गया और नेत्रों से जल चन्द्रमा तथा कास उज्ज्वल दिखाई पड़ने लगे। मोहि=मुझे। हइ=है। "मोहि········कयमास"=हे चन्द मेरे मन में कन्नौज-विजय की लगी हुई है। वताओ कयमास कहाँ है ?

सन्दर्भ—प्रस्तुत छन्द में पृथ्वीराज अपनी कन्नौज-विजय की इच्छा प्रकट करके चन्द से कयमास के विषय में पूछते हैं।

व्याख्या—हे चन्द ! अगस्त्य नक्षत्र का उदय हो गया है। जल, चन्द्रमा और कास अब नेत्रों को उज्ज्वल दिखाई पड़ने लगे हैं। मेरे मन में कन्नौज पर विजय प्राप्त करने की तीव्र आकांक्षा है। तुम वताओ, कयमास कहाँ है, भाव यह है कि वर्षा व्यतीत हो गई है। शरदागम से रास्ते साफ हो गये हैं। पृथ्वीराज कन्नौज विजय की इच्छा करते हैं। कयमास प्रधानामात्य है और युद्ध में प्रधानामात्य का होना आवश्यक है। अतः पृथ्वीराज कयमास के विषय में पूछ रहे हैं।

विशेष—१. वर्षा की समाप्ति का सुन्दर वातावरण प्रस्तुत किया गया है।

२. छन्द—दोहरा (दोहा)।

३. अलंकार—(क) 'ससि कास' में 'स' वर्ण की एक वार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास।

(ख) कहहुं कहां कयमास' में 'क' वर्ण की एक से अधिक वार आवृत्ति होने से वृत्यनुप्रास।

[२२]

नागप्पुर सुरपुर सयल, कथित कहउं सब साज।
दाहिम्मउ दुल्लह भयउ, कहउ न जाइ प्रथीराज ।।

शब्दार्थ—नागप्पुर=नाग लोक। सयल=सब। "नागप्पुर······साज" =यदि आप कहें तो मैं नागलोक, देवलोक आदि सब का साज कहूँ। दाहिम्मउ=दाहिमा कयमास। दुल्लह=दुर्लभ। कहउ=कहा। 'दाहिम्मउ··· प्रथीराज'=दाहिमा कयमास दुर्लभ हो गया है। हे पृथ्वीराज ! मुझ से कहा नहीं जा सकता।

सन्दर्भ—पृथ्वीराज के द्वारा कयमास के सम्बन्ध में प्रश्न करने पर चन्द उत्तर देते हुए कहते हैं।

व्याख्या—हे महाराज चौहान ! आपके कहने से मैं नाग-लोक, देव-लोक आदि के सम्बन्ध में सब कुछ कह सकता हूँ। अर्थात् मैं तीनों लोकों का वर्णन कर सकता हूँ। परन्तु दाहिमा कयमास तो इन लोकों में भी दुर्लभ हो गया है। अतः मुझ से कहा नहीं जा रहा है कि वह कहाँ है ?

विशेष—१. चन्द राजा के रहस्य की गोपीनीयता को भंग करना नहीं चाहते। इसलिए सब कुछ जानते हुए भी वे कयमास-वध के सम्बन्ध में कुछ कहना नहीं चाहते।

२. प्रथम पंक्ति से स्पष्ट है कि तीनों लोकों का रहस्य जानने वाले कवि चन्द सिद्ध पुरुष थे। उनको सरस्वती का इष्ट था। इसलिए संसार की समस्त घटनाओं को जानना उनके लिये सुलभ था।

३. **काव्य-सौन्दर्य**—(क) 'नागप्पुर', 'दाहिम्मउ', 'दुल्लह' शब्द में व्यंजन-द्वित्व की प्रवृत्ति भाषा की प्राचीनता का परिचय देती है। 'कहहुँ', 'भयउ', 'जाइ' आदि में स्वर-संयोग है।

(ख) **छन्द**—दोहरा (दोहा)।

(ग) **अलंकार**—'कथित कहउ' में 'क', 'सब साज' में 'स', 'दाहिम्मउ दुल्लह' में 'द' वर्ण की एक बार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास।

[२३]

कहा भुजंग कहा उदे सुर, निकमु कब्ब कवि षंडि।
कइ कयमास बताहि मो, कइ हर सिद्धी बर छंडि॥

शब्दार्थ—कहा=क्या। भुजंग=सर्प, नाग। उदे=उदय हुआ। सुर= देवता। निकमु=निकम्मा। कव्व=काव्य। षंडि=नष्ट करदे। "कहा······

पंडि"=क्या नाग अथवा क्या देव योनि में जन्मा है। हे कवि! तू अपने निकम्मे काव्य को नष्ट कर दे। कइ=या। वताहि=वता दे। मो=मुझे। हर=महादेव। वर=वरदान। छंडि=छोड़ दे।

सन्दर्भ—चन्द के 'कयमास कहाँ है'? यह बताने में टालमटोल करने पर पृथ्वीराज कहते हैं कि या तो वह कयमास कहाँ है, यह बतादे या हर-सिद्धि का वर छोड़ दे।

व्याख्या—चन्द कयमास के सम्वन्ध में सब कुछ जानते हुए राजा का गुप्त रहस्य प्रकट करना नहीं चाहते। वे इतना ही कहते हैं कि कयमास तीनों लोक में दुर्लभ है। पृथ्वीराज उस पर पुनः दवाव डालते हुए कहते हैं कि कयमास क्या सर्प या देव योनि में उदय हुआ है, जो तुम नाग-लोक और देव-लोक की बातें करते हो। यदि तुम मुझे यह नहीं वता सकते कि कयमास कहाँ है, तो तुम व्यर्थ ही अपने काव्य का गर्व करते हो। वह तो निश्चय ही निकम्मा काव्य है। तुम उस निकम्मे काव्य को नष्ट कर दो। तुम या तो मुझे यह वताओ कि कयमास कहाँ है या तुम यह कहना छोड़ दो कि तुमको महादेव की सिद्धि प्राप्त है।

विशेष—१. यहाँ पृथ्वीराज ने चन्द के काव्य और उनकी महादेव की सिद्धि को ललकारा है।

२. इस दोहे से यह संकेत मिलता है कि चन्द को महादेव की सिद्धि प्राप्त थी।

३. **काव्य-सौन्दर्य**—(क) भाषा में ओज गुण की प्रधानता है।

(ख) परुष वर्णों का प्रयोग हुआ है।

(ग) छन्द—दोहरा (दोहा)।

(घ) रौद्र-रस की व्यंजना है।

(ङ) अलंकार—अनुप्रास।

[२४]

जउ छंडइ सेसह धरणि, हर छंडइ विष कंद।
रवि छंडइ ताप कर तउ, वर छंडइ कवि चंद॥

शब्दार्थ—जउ=जो, यदि। छंडइ=छोड़ दे। जो छंडइ सेसह धरणि=यदि शेषनाग धरणि को छोड़ दें। विष कंद=विष का खाना। "हर······

कंद"=महादेव विष का खाना छोड़ दें। "रवि……कर"=सूर्य अपनी गर्मी और ताप पूर्ण किरगें छोड़ दे। तउ=तो। "तउ……चन्द"=तो कवि चन्द अपनी सिद्धि का वर छोड़ सकता है।

सन्दर्भ—पृथ्वीराज की ललकार पर चन्द सगर्व उत्तर देता है कि वह अपनी हर-सिद्धि को नहीं छोड़ सकता।

व्याख्या—हे सम्राट! चन्द का महादेव की सिद्धि का वरदान छूटना असम्भव है। यदि शेषनाग पृथ्वी को धारण करना छोड़ दें, महादेव विष-कंद खाना छोड़ दें और सूर्य अपनी गर्मी तथा तापपूर्ण किरणों का परित्याग कर दें तो कवि चन्द भी महादेव की सिद्धि का वरदान छोड़ सकता है। जिस प्रकार शेषनाग पृथ्वी का धारण करना नहीं छोड़ सकते, महादेव विष खाना नहीं छोड सकते और सूर्य अपनी गर्मी तथा ताप पूर्ण किरणों को नहीं त्याग सकते, उसी प्रकार मैं भी महादेव की सिद्धि नहीं छोड सकता।

विशेष—१. यहाँ चन्द के कथन में उसकी निर्भीकता और स्पष्टवादिता प्रकट हुई है।

२. चन्द स्पष्ट करता है कि महादेव का वरदान उसका इसी प्रकार सहज गुण है, जिस प्रकार शेषनाग का पृथ्वी धारण करना, महादेव का विष खाना, सूर्य में ताप रहना सहज गुण है।

३. काव्य-सौन्दर्य—(क) छन्द—दोहरा (दोहा)।

(ख) भाषा में ओज गुण की प्रधानता है। 'जउ', 'तउ' और 'छंडइ' में स्वर-संयोग की प्रवृत्ति है।

४. अलङ्कार—कथन का उक्ति द्वारा समर्थन होने से काव्यलिंग है।

[२५]

हठि लग्गउ चहुआंन नृिप, अंगुलि मुषह फणिंदु।
तिहुंपुरि तुअ मति संचरइ, सु कहे वनइ कवि चंदु॥

शब्दार्थ—हठि=कठोर आग्रह। लग्गउ=लग गया, अड़ गया। "हठि……नृिप"=चौहान राजा पृथ्वीराज हठ पकड़ गया। मुषह=मुख में। फणिंदु=शेषनाग। "अंगुलि मुषह फणिदु"=उसका हठ शेषनाग के मुख में उँगली देना था। तिहुंपुर=तीनों लोकों में। तुअ=तुम्हारी। संचरइ=संचरण

करती है। बनइ=बनेगा। सु=यह। "तिहुंपुर......चन्दु"=हे चन्द, तेरी बुद्धि तीनों लोकों में संचरण करती है, इसलिए तुझे यह बताना ही पड़ेगा कि कयमास कहाँ है?

सन्दर्भ—पृथ्वीराज चन्द को विवश करते हुए कहते हैं कि उसे यह बताना ही पड़ेगा कि कयमास कहाँ है?

व्याख्या—महाराज पृथ्वीराज चौहान यह हठ पकड़ गये कि चन्द को "कयमास कहाँ है?" यह बताना ही पड़ेगा। उनका यह हठ शेषनाग के मुख में उँगली देने के समान था। उन्होंने चन्द से कहा कि तुम्हारी बुद्धि देवलोक, पृथ्वीलोक और नागलोक—तीनों ही लोकों में विचरण करती है अर्थात् तुम तीनों लोकों की बात जानते हो। अतः तुमको बताना ही पड़ेगा कि कयमास कहाँ है?

विशेष—१. इस दोहे में पृथ्वीराज का उग्र हठ सामने आता है। राज-हठ प्रसिद्ध ही है। राज-हठ न मानना साँप के मुख में उँगली देने के समान है।

२. चन्द कवि की तीनों लोकों का ज्ञान रखने की महत्ता स्पष्ट हुई है।

३. भाषा में अपभ्रंश का प्रभाव है। 'लग्गउ' में व्यंजन-द्वित्व और 'तुअ', 'संचरइ' में स्वर-संयोग की प्रवृत्ति है।

४. छन्द—दोहरा (दोहा)।

५. अलङ्कार—(क) पृथ्वीराज के हठ की समानता साँप के मुख में उँगली देने से की गई है अतः उपमा अलङ्कार है।

(ख) 'तिहुंपुर तुअ' में 'त' वर्ण की एक बार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास।

[२६]

सेस सिरुप्परि सूर तर, जइ पुच्छइ निृप एस।
दोहुं बोलि मंडन मरनु, कहइ तउ कब्बु कहेस॥

शब्दार्थ—सिरुप्परि=सिर के ऊपर। सूर=सूर्य। तर=नीचे। जइ=यदि। पुच्छइ=पूछता है। एस=इस प्रकार। दोहुं=दोनों। मंडन=आयोजन। बोलि=बोलने पर, बताने पर। मरनु=मृत्यु। कहइ=कह। तउ=तो। कब्बु=काव्य। कहेस=कहूँ।

सन्दर्भ—चन्द कहते हैं कि राजा का गोपन रहस्य बताने और राजाज्ञा

उलंघन करने दोनों में ही मरण निश्चित है। अतः कयमास-वध की गोप्य घटना कहनी ही पड़ेगी।

व्याख्या—हे महाराज ! शेषनाग के सिर ऊपर अर्थात् स्वर्ग लोक और सूर्य के नीचे नाग लोक तथा इन दोनों के बीच में मृत्यु लोक—इन तीनों लोकों के विषय में यदि आप हठपूर्वक पूछते हैं तो बताने पर तो मैं राजा का रहस्य खोलने में दण्ड का भागी बनूँगा और न बताने पर राजाज्ञा उलंघन करने से भी मुझे दण्ड मिलेगा। दोनों ही स्थितियों में मेरे लिये मृत्यु का आयोजन है। अतः हे राजन् ! यदि तुम आज्ञा दो, तो मैं आपके सामने कयमास-वध काव्य का वर्णन करूँ—

विशेष—१. यहाँ चन्द की चतुरता व्यक्त हुई है। यह सत्य है कि चन्द पृथ्वीराज का विशेष कृपापात्र है, परन्तु वह पृथ्वीराज के उग्र स्वभाव और राज-हठ को भी जानता है। वह जानता है कि पृथ्वीराज ने ही कयमास का वध किया है, अतः राजा का रहस्य खोलने से मृत्यु-दंड मिल सकता है। साथ ही राजा की आज्ञा कयमास को बताने की है। यदि वह बताता नहीं तो भी राजाज्ञा-उलंघन के अपराध में उसको मृत्यु दंड मिलेगा। अतः बताने से पहले पृथ्वीराज से आज्ञा ले लेना चाहता है, जिससे दंड से बच सके।

२. छन्द—दोहरा (दोहा)।

३. भाषा की दृष्टि से स्वर-संयोग और व्यंजन-द्वित्व की प्रवृत्ति है।

४. अलंकार—(क) 'सेस···सूर' में 'स' वर्ण की एक से अधिक बार आवृत्ति होने से वृत्यनुप्रास।

(ख) 'मंडन मरनु' में 'म' वर्ण की एक बार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास।

(ग) 'कव्वु कहेसु' में 'क' वर्ण की एक बार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास।

[२७]

एकु वान पुहवी नरेस कयमासह मुक्कउ।
उर उप्परि षरहरिउ वीर कष्षहतर चुक्कउ।
बीउ वान संधानि हनउ सोमेसुर नंदन।
गाडउ करि निग्गहउ षनिव षोदउ संभरि धनि।
थर छंडि न जाइ अभागरउ गारउ गहइ सु गुन षरउ।
इम जंपइ चंद विरद्दिया सु कहा निमट्टिहि इह प्रलउ॥

शब्दार्थ—पुहवी=पृथ्वी। मुक्कउ=छोड़ा, संधान किया। उर=हृदय। उप्परि=ऊपर। षरिहरउ=खरभराता हुआ। कप्पहतर=काँख के नीचे। चुक्कउ=चूक गया। "एकु वान......चुक्कउ"=पृथ्वीराज ने एक वाण कयमास पर छोड़ा। वह वाण उसके हृदय पर खरभराता हुआ उस वीर की काँख के नीचे से होकर निकल गया। वीउ=दूसरा। संधानि=संधान करके हनउ=मार डाला। सोमेसुर नंदन=सोमेश्वर का पुत्र पृथ्वीराज। "वीउ वान...नंदन"=हे सोमेश्वर नंदन दूसरा वाण संधान करके तुमने कयमास का वध कर डाला। गाडउ=गड्ढा। करि=करके। निग्गहउ=जकड़ लिया। षनिव-षोदउ=खान खोदकर। संभरि-धनि=महाराज पृथ्वीराज। "गाडउ...धनि"=हे साँभरि पति तुमने खान खोदकर—गड्ढा करके उसको उसमें जकड़ दिया। थर=स्थल। छंडि न जाइ=छोड़ा नहीं जा रहा है। अभागरउ=भाग्य-हीन। गारइ=पत्थर, पत्थर के समान कठोर भूमि। गहउ=पकड़ा। जु=जो। षरउ=खरे। इम=इस प्रकार। जंपइ=कहता या पूछता है। चन्दविरद्दिया=चन्दवरदाई। सु=सो। कहा=क्या। निमिट्टिहि=वनेगा। इह=इससे। प्रलउ=प्रलय।

सन्दर्भ—प्रस्तुत छन्द में चन्दवरदाई पृथ्वीराज द्वारा कयमास का वध करने की घटना ज्यों की त्यों सुना रहे हैं।

व्याख्या—हे महाराज पृथ्वीराज ! मैं आपकी आज्ञा से 'कयमास कहाँ है ?' का वर्णन करता हूँ। आपने पहले एक वाण कयमास को लक्ष्य करके उसे मारने के लिए छोड़ा। वह वाण कयमास के हृदय पर खरभराता हुआ उसकी काँख के नीचे से होकर निकल गया। इस प्रकार आपका पहला वाण चूक गया। हे सोमेश्वर नंदन ! आपने दूसरा वाण संधान करके उस वीर कयमास को मार डाला। फिर आपने उसे खान खोदकर—गड्ढा करके उसमें उसको गाड़ दिया। उस अभागे कयमास से अव स्थल छोड़ा नहीं जा रहा है। वह वहीं गड्ढे में गड़ा है, क्योंकि पत्थर के समान कठोर भूमि ने उसे अपने खरे गुणों और दृढ़ता से भली-भाँति जकड़ लिया है। इस प्रकार कयमास-वध की सारी घटना का काव्य कहकर चन्दवरदाई पूछते हैं कि हे महाराज। आपने कयमास का वध करके यह जो प्रलय के समान भयङ्कर कार्य किया है, इससे आपको क्या मिला है, भला आपने ऐसा क्यों किया।

विशेष—१. यहाँ चन्द के दैवी गुणों का प्रकाशन हुआ है।

(क) चन्द की बहुज्ञता प्रकट हुई है।

(ख) चन्द को महादेव जी इष्ट थे।

(ग) चन्द स्पष्टवादी थे।

२. **काव्य-सौन्दर्य**—(क) भाषा की दृष्टि से परुष वर्णों की प्रधानता तथा ओज गुण है। 'मुक्कउ', 'उप्परि', 'चुक्कउ', 'कप्पह', 'निमिट्टिहि' आदि में व्यंजन-द्वित्व, 'हनउ' और 'वीउ' में उकारान्त स्वरों की प्रवृत्ति है, साथ ही स्वर-संयोगों की प्रचुरता है।

(ख) छन्द—कवित्त (छप्पय)।

(ग) अलङ्कार—अनुप्रास।

[२८]

भट्ट वयन सुनि सुनि सोइ कानहु।
अप्पु अप्पु गए ग्रेह परानहु।
जोगिनिपुर जागउ चहुवानहु।
भयि निसि च्यारि जाम जुगु जानहु॥

शब्दार्थ—भट्ट=कवि चन्द। वयन=वचन। कानहु=कानों से। अप्पु=आप, स्वयं। ग्रेह=घर। परानहु=पलायन करके। जोगिनपुर=दिल्ली। भयि=वीतने पर। जाम=प्रहर। जुगु=दो। जानहु=मानो।

संदर्भ—चन्द से कयमास-वध की घटना सुनकर सभासद भयभीत हुए अपने अपने घर चले गए। इधर पृथ्वीराज ने चार प्रहर रात्रि चार युगों के समान व्यतीत की। प्रस्तुत छन्द में इसी प्रसङ्ग का वर्णन है।

व्याख्या—सभासद चन्द कवि से पृथ्वीराज द्वारा कयमास-वध की घटना सुनकर भयभीत हो गये और सभा-गृह से अपने-अपने घरों को पलायन कर गये। पृथ्वीराज चिन्तन में डूबे हुए दिल्ली में रात्रि भर जगते रहे। उनको नींद नहीं आई। चार प्रहरों की रात्रि इस प्रकार व्यतीत हुई मानो चार युग वीते हों।

विशेष—१. यहाँ पृथ्वीराज के क्रोध की व्यंजना हुई है। रात्रि जागकर व्यतीत करना उनके मानस-मंथन को प्रकट करना है।

२. भाषा की दृष्टि से 'अप्पु' में व्यंजन-द्वित्व, 'ग्रेह' में 'ऋ' का 'रे' में परिवर्तन, शब्द-रूपों में उकारान्त प्रयोग भाषा की प्राचीनता सिद्ध करते हैं।

३. छन्द—अडिल्ल।

४. अलङ्कार—(क) 'सुनि-सुनि' और अप्पु-अप्पु' में पुनरुक्तिप्रकाश।

(ख) 'गए-ग्रेह' में 'ग' और जोगिनपुर जागउ' में 'ज' वर्ण की एक वार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास।

(ग) अन्तिम पंक्ति में उत्प्रेक्षा है।

[२६]

राज मझ्झि संभयउ पट्ट दरबांन परठि्ठय।
वहुर सव्व सामंत मनउ लग्गिय सिर लठि्ठय।
रहयउ चंद बिरदिआ बिमुष मुष पग न सरक्यउ।
गिम्ह तेज वर भट्ट रोस जल षिनि षिनि सुक्यउ।
रत्तिरी कंत जग्गंतरइ चली घरिघ्घरि वत्तरी।
दाहिमउ दोस लग्गउ मिटइ न कलि सु उत्तरी।

शब्दार्थ—राज मझ्झि=राजसभा के वीच में। संभयउ=होकर, गुजरता हुआ। पट्ट=प्रधान। परिठि्ठय=आकर खड़ा हुआ। "राज··· परठि्ठय"=राज-सभा होकर प्रधान द्वारपाल उपस्थित हुआ। वहुर=लौट गये। सव्व=सव। मनउ=मानों। लग्गिय=लगी हो। लठि्ठय=लाठी। "वहुर···लठि्ठय"=समस्त सामन्त लौट गये, मानों उनके सिर पर लाठी लगी थी। विमुष=दूसरी ओर मुख करके। मुष=मुख। पग न सरक्यउ=पग नहीं हटाया। "रहयउ···सरक्यउ"=केवल चन्दवरदाई वहाँ रह गया था उसने मुख फेर कर पैर तक नहीं सरकाया था। गिम्ह=ग्रीष्म। वर=श्रेष्ठ। रोस=क्रोध। षिनि-षिनि=क्षण-प्रतिक्षण। सुक्यउ=सूख रहा था। "गिम्ह··· सुक्यउ"=भट्ट चन्द ग्रीष्म के तेज से सूखते हुए जल के समान पृथ्वीराज के रोष से क्षण-प्रतिक्षण सूख रहा था। रत्तिरी=रात्रि। कंत=स्वामी। जग्गंतरइ=जागते हुए ही। घरिघ्घरि=घर-घर। वत्तरी=वात, चर्चा। दाहिमउ=दाहिमा कयमास को। लग्गउ=लगा है। षरउ=खरा। मिटइ= मिट रहा है। कलि=कल्मष, पाप। सु=वह। उत्तरी=उतर कर। "रत्तिरी

···रत्तिरी"=चन्द्रमा के जागते रहते ही घर-घर यह वार्ता चली कि कयमास को कोई वड़ा दोष लगा है और वह पाप उतर कर मिट नहीं सकता।

संदर्भ—चन्द द्वारा कयमास-वध की घटना प्रकाशित करने पर सभा विसर्जित हो गई। पृथ्वीराज के क्रोध से भयभीत चन्द सभा-भवन में ही रहा। कयमास ने कोई वड़ा अपराध किया हैं, यह चर्चा घर-घर में फैल गई। प्रस्तुत छन्द में इसी प्रसंग का उल्लेख है।

व्याख्या—सभा के विसर्जित हो जाने पर प्रधान द्वारपाल राज-सभा में होकर द्वार पर आ खड़ा हुआ। सारे सभासद और सामन्त अपने-अपने घरों को लौट गये थे। वे इस प्रकार पीड़ित थे, मानो उनके सिर पर लाठी का प्रहार हुआ हो। सभा-भवन में केवल चन्दवरदाई रह गया था, उसने अपना मुख फेर लिया था और वह जहाँ का तहाँ खड़ा था। उसने पैर तक नहीं उकसाया था। जिस प्रकार ग्रीष्म के ताप से क्षण-क्षण में जल सूखता है, उसी प्रकार पृथ्वीराज के क्रोध से भट्ट कवि चन्द प्रतिक्षण सूख रहा था। आकाश में रात्रि के स्वामी चन्द्रमा के रहते हुए ही अर्थात् रात्रि में ही घर-घर में यह वात फैल गई कि दाहिमा कयमास ने कोई वड़ा अपराध किया है और अपराध का यह कल्मष उसके सिर से उतर कर मिट नहीं सकता।

विशेष—१. यहाँ पृथ्वीराज के क्रोध की व्यंजना हुई है।

२. पृथ्वीराज का क्रोध आलम्वन और चन्द आश्रय है। 'रहयउ ···सुक्यउ' अनुभाव हैं। इस प्रकार स्थायी भाव भय के पुष्ट होने से भयानक रस है।

३. काव्य-सौन्दर्य—(क) छन्द—कवित्त (छप्पय) है।

(ख) भाषा की दृष्टि से 'मज्झि', 'सव्व', 'लट्ठिय', 'वत्तरी' आदि में व्यंजन-द्वित्व की प्रवृत्ति है। क्रिया रूपों में प्रत्यय के रूप में 'यउ' का प्रयोग वहुत हुआ है। जैसे 'संभयउ', 'रहयउ', 'सरक्यउ', 'सुक्यउ' आदि। 'ग्रिम्ह', का प्रयोग भाषा की प्राचीनता का द्योतक है।

(ग) अलंकार—(१) 'मनउ लग्गिय सिर लट्ठिय' में उत्प्रेक्षा।

(२) 'गिम्ह···सुक्यउ' में उपमा।

(३) षिनि-पिनि में पुनरुक्तिप्रकाश।

(४) 'सव्व सामंत' में 'स' वर्ण और 'दाहिमउ दोस' में 'द' वर्ण की एक बार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास।

[३०]

उग्गिअं भान पायान पूरं।
बज्जियं देब दरि संष तूरं॥
कलत कयमास चडि वरणसाला।
देव वरदाइ वर मंगि बाला॥

शब्दार्थ—उग्गिअं=उदित हुआ भान=सूर्य। पायान पूरं=किरणों से पूर्ण। वज्जियं=वजने लगा। देव=देवता, शिव। दरि=द्वार पर। संष तूरं=शंख और तूर्य। कलत=कलत्र, स्त्री। चडि=चढ़ी। मंगि=माँगने लगी।

सन्दर्भ—कयमास की पत्नी को भी सवेरा होने पर कयमास के वध का समाचार मिला। वह चन्द से अपने पति का शव माँगने आई। यहाँ इसी प्रसङ्ग का वर्णन है।

व्याख्या—रात्रि समाप्त हो गई। अपनी किरणों को विकीर्ण करता हुआ सूर्य उदय हुआ अर्थात् सवेरा हो गया। सवेरा होते ही मन्दिरों के द्वार पर शंख और तूर्य वजने लगे। कयमास की स्त्री को पति के वध का समाचार मिला। वह वर्णशाला पर चढ़ी और महादेव की सिद्धि प्राप्त चन्दवरदाई से अपने पति का शव माँगने लगी।

विशेष—१. प्रात:कालीन प्रकृति का यथार्थ चित्र उपस्थित हुआ है। सूर्य की किरणों का प्रसार, मन्दिरों में तूर्य और शंखों का वजना सवेरा होने की सूचना देता है।

२. कवि की वैष्णवीय भावना प्रकट हुई है।

३. छन्द—आर्या—इसके प्रत्येक चरण में १२ वर्ण होते हैं। अन्त में क्रमश: एक-एक लघु और दो गुरु रहते हैं।

४. वज्जियं, उग्गिअं आदि अपभ्रंश के प्रभाव और भाषा की प्राचीनता को सिद्ध करते हैं।

५. अलंकार—'पायान पूरं' में 'प' वर्ण की एक वार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास। 'देव दरि' में 'द' और 'कलत कयमास' में 'क' वर्ण की एक बार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास।

[३१]

जा जीवन कारणइ धर्म पालहि मृत जालहि ।
जा जीवन कारणइ अथ्थ सं चित्त उवारहि ।
जा जीवन कारणइ दुरग रष्षहि सब अप्पहि ।
जा जीवन कारणइ भूम नव ग्रह करि कप्पहि ।
जउ जीवन साई अप्पनउ, नृपति बहुत बच्चनह भउ ।
सुक्कि सरोवर हंस गउ, सुकिलि उडउ अंधार भउ ।

शब्दार्थ—जा जीवनु कारणाइ=जिस जीवन के कारण ही। धर्म पालहि=(मनुष्य) धर्म पालन करता है। मृत=शव, मृत्यु। जालहि=जलाता है। मृत जालहि=मृत्यु को जलाता है। अथ्थ=अर्थ, धन-सम्पत्ति। सं=से। चित्त-उवारहि=मन को उबारता है। दुरग रष्षहि=दुर्ग की रक्षा करता है। सब अप्पहि=सब कुछ अर्पित कर देता है। नव-ग्रह=नवग्रह। करि=करता है। कप्पहि=संकल्प देता है। जउ=जो, यदि। साई=अत्यधिक मूल्यवान। अप्पनउ=अपना। बच्चनहि=वचनों। भउ=भय। "जउ......भउ"=यदि यह मूल्यवान जीवन है, तो नृपति के बहुतेरे वचनों का भी भय होता है। सुक्कि सरोवर=तालाब सूख गया। हंस गउ=हंस उड़ गया। सुकिलि= समेटकर। उड़उ=उड़ गया। भउ=हो गया।

सन्दर्भ—कयमास की पत्नी चन्द से अपने मृत पति का शव माँगती हुई अनुनय विनय कर रही है।

व्याख्या—कयमास की स्त्री चन्द कवि से कहती है कि जिस जीवन के कारण मनुष्य धर्म का पालन करता है और धर्माचरण के द्वारा मृत्यु को भी जलाता है अर्थात् मृत्यु को भी अपने से दूर रखता है। जिस जीवन के कारण ही मनुष्य अर्थोपार्जन कर आर्थिक कष्टों को दूर करता है। जिस जीवन के कारण ही मनुष्य अपना सर्वस्व अर्पण कर शत्रु से लोहा लेता है और अपने दुर्ग की रक्षा करता है। जिस जीवन के कारण मनुष्य नव-ग्रहों की शान्ति के लिये भूमि का भी संकल्प कर दान में दे देता है। यदि यह इस प्रकार का मूल्यवान जीवन है अर्थात् यदि मनुष्य जीवित है, तो उसे राजा के बहुत से वचनों का भय रहता है। यदि यह जीवन ही न हो तो भय भी नहीं रह सकता। मृत्यु पाकर फिर राजा से और क्या दण्ड मिल सकता है, जो उसका

भय किया जाय। सरोवर सूख गया, प्राण रूपी हंस भी उड़कर सरोवर से चला गया, प्राण रूपी हंस के पंख बटोरकर उड़ते ही जो चारों ओर अंधकार छा जाता है। वही मेरे लिये चारों ओर छा गया है।

विशेष—१. यहाँ जीवन-मृत्यु की दार्शनिक व्याख्या की गई है। जब तक जीवन है, तभी तक राजा और संसार का भय रहता है। मृत्यु हो जाने पर किसी प्रकार का भय नहीं रहता।

२. यहाँ जीवन को इसलिए मूल्यवान कहा गया है क्योंकि वह धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का साधन है।

३. अन्तिम पंक्ति में कवि ने जीवन की क्षण-भंगुरता पर प्रकाश डाला है। जिस प्रकार सरोवर का जल सूख जाने पर हंस उड़ जाते हैं और सूर्य के अस्त होने पर अंधकार छा जाता है, उसी प्रकार शरीर से प्राण निकल जाने पर कुछ भी शेष नहीं रहता और जीवन में अंधकार छा जाता है।

४. 'अथ्थ', 'चित्त', 'रख्खहि', 'अप्पहि' आदि में व्यंजन-द्वित्व और 'जउ', 'भउ', 'गउ', 'उडउ' आदि में स्वर-संयोग की प्रवृत्ति है।

५. छन्द—कवित्त (छप्पय)।

६. अलंकार—यत्र-तत्र अनुप्रास और अन्तिम पंक्ति में रूपक अलंकार है।

[३२]

मातु गम्भ वास करिवि जंम वासर वसि लहगउ।
षिन लग्गइ षिन रुदइ मुदइ षिन हसइ अभग्गउ।
वपु विसेस वढ्ढिअउ अंत डढ्ढइ डर डरयउ।
कच तुचा दंत ज रार धीर किम किम उब्बरयउ।
मान भंगु मुक्कइ सयल लषित निनिष्ष नि मिट्टहि।
पर काज आज मंगउ नृपति कहु त प्राण पमुक्कहि।

शब्दार्थ—गम्भ=गर्भ। वास=निवास करता है। करिवि=करके। जंम=जन्म। वासर=दिन। वसि=वश में रहकर। लहगउ=लाभ प्राप्त करता है। "मातु गम्भ......लहगउ"=मनुष्य माता के गर्भ में निवास करने के बाद दिन पूरे होने पर जन्म-लाभ करता है। षिन=क्षण भर। लग्गइ=आसक्त। रुदइ=रोता है। मुदइ=प्रसन्न होता है। अभग्गउ=भाग्यहीन।

"षिन······अभग्गउ"=एक क्षण मनुष्य संसार में आसक्त होता है, एक क्षण रोता है, एक क्षण प्रसन्न होता है और एक क्षण वह अभागा हँसता है। वपु= शरीर। विसेस=विशेष। वढ्ढिअउ=बढ़ता है। डढ्ढइ=दग्ध होता है। डरयउ=डरता है। "वपु······डरयउ"=शरीर विशेष रूप से बढ़ता है, किन्तु अन्त में जलाए जाने के डर से डरता है। रार=झंझट। किम-किम=किस-किस प्रकार। उव्वरयउ=मुक्त होता है। 'कच, तुचा······उव्वरयउ'=कच, त्वचा और दाँत आदि की झंझट छोड़कर धीर किसी न किसी प्रकार उनसे मुक्त होता है। मान भंग=स्वाभिमान भंग होना। मुक्कइ=छूट जाता है। सयल=सब। लश्ति=लक्षित, निर्धारित। निमिष्ष=निमिष मात्र। निमिट्टहि=नहीं मिटता। "मान भंगु······निमट्टहि"=इसलिए पृथ्वीराज से याचना करने में मान-हानि होगी, इस समस्त मान-भंग की भावना को छोड़ दो, क्योंकि जो निर्धारित है, वह एक क्षण के लिए नहीं मिटेगा। मंगउ=याचना करे। त=तो। पमुक्कहि=मुक्त करूँ।

सन्दर्भ—कयमास की पत्नी चन्द से पहले जीवन की निस्सारता का वर्णन करती है और फिर उसे परोपकार की भावना से प्रेरित करती हुई कहती है कि वह पृथ्वीराज से उसके पति का शव दिलवादे।

व्याख्या—मनुष्य माता के हृदय में वास करने के अनन्तर गर्भ की निर्धारित अवधि पूरी हो जाने पर जन्म-लाभ प्राप्त करता है। वह शिशु रूप में एक क्षण संसार में लिप्त दिखाई पड़ता है और दूसरे ही क्षण संसार से खिन्न होकर रुदन करने लगता है। कभी कुछ सोचकर वह मौन हो जाता है, तो कभी आनन्दित हो जाता है और कभी वह अभागा हँसता है। भाव यह है कि मनुष्य इस संसार में जन्म लेकर कभी प्रसन्न होता है, तो कभी हँसता है, तो कभी आनन्दित होता है। मनुष्य का शरीर क्रमशः बढ़ता जाता है। अन्त में इस विचार मात्र से कि वह मृत्यु को प्राप्त होगा और जला डाला जायगा वह डरता और चिन्तित होता है। उसे केशों, त्वचा, दाँत आदि के नाना झंझट व्यथित किये रहते हैं। वह किसी प्रकार इन झंझटों को छोड़कर धैर्य पूर्वक उनसे मुक्ति पाता है। शरीर की इस प्रकार की स्थिति स्वाभाविक है। अतः इसका विचार करना व्यर्थ है। इसलिए इन समस्त बातों की चिन्ता न करते हुए और पृथ्वीराज से मेरे लिये कुछ भी याचना करने में सम्मान की हानि

होगी इसका विचार छोड़कर पृथ्वीराज से मेरी ओर से विनय करो। तुम्हारा स्वाभिमान तो सब पर प्रकट और रक्षित है। वह मेरे लिये याचना करने से नहीं मिटेगा। फिर मेरे लिए याचना करने में तुमको परोपकार का भी लाभ होगा। अतः तुम मान-भंग की भावना छोड़कर मेरे लिए नृपति पृथ्वीराज से याचना करो। तुम मुझे मेरे पति का शव दिलादो, जिससे मैं सती होकर प्राणों को मुक्त करूँ।

विशेष—१. जीवन की नश्वरता की यहाँ दार्शनिक व्याख्या की गई है।

२. परोपकार की भावना का प्रतिपादन है।

३. भाषा की दृष्टि से परुष वर्णों तथा द्वित्व-व्यंजनों की योजना है। 'लग्गइ', 'बढ्ढिअउ', 'मुक्कइ', 'निमिट्टहि' आदि अपभ्रंश के शब्द हैं और रासो की भाषा की प्राचीनता को सिद्ध करते हैं।

४. 'जंम' में अनुनासिकता की प्रवृत्ति है।

५. अन्त्य-स्वर-संयोगों की प्रवृत्ति स्पष्ट है। जैसे 'डरयउ', 'उव्वरयउ आदि।

६. संज्ञा तथा क्रिया से रूपों में उकारान्त की प्रवृत्ति है।

७. छन्द—कवित्त (छप्पय)।

८. अलंकार—(क) 'किम-किम' में पुनरुक्तिप्रकाश।

(ख) "षिन लग्गइ······अभग्गउ" में दीपक अलंकार।

(ग) 'वासर वसि' में 'व' वर्ण की एक बार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास।

(घ) "वपु······वढ्ढिअउ" में 'व' वर्ण तथा "डढ्ढइ······डरयउ" में 'ड' वर्ण की एक से अधिक बार आवृत्ति होने से वृत्यनुप्रास।

(ङ) 'डर डरयउ' में सभंगपद यमक।

[३३]

राषि सरणि सहगवनि मरन मङ्गल अपुव्व किय।
दरण पेषि दरबान रुक्कि सक्किय न मग्गु दिय।
जागि जुलन पृथ्वीराज नयन नयनन जब दिष्षउ।
अंतकु कर रध्धांमु त्रइग्गुण त्रियतनु लिष्षउ।
वोलिअउ वयन सु दयन हिय कवन कम्मु कवि अच्छयउ।
तब देव कितिय कमलिय कमल धरणि तरुणि तन मुक्कयउ।

शब्दार्थ—राषि=रखकर। सरणि=शरण में। सहगवनि=पति के शव के साथ भस्म होने वाली स्त्री। अपुव्व=अपूर्व। किय=किया। "राषि...... किय"=चन्द ने उस सहगामिनी को शरण दी, जिसने अपूर्व मंगल का शृङ्गार किया था। दरण=डर के कारण। पेषि=देखकर। दरवान=द्वारपाल। रुक्कि सक्किय=रोक सका। दिय=दिया। "दरण...दिय"=द्वारपाल भय के कारण उसे रोक न सका, उसने मार्ग दे दिया। जागि=जगकर। जुलन= क्रोध। दिष्षउ=देखा। "जागि......दिष्षउ"=क्रोध में जलते हुए नेत्रों से पृथ्वीराज ने उसके नेत्रों की ओर देखा। अतंकु=मृत्यु। रध्धांमु=राँधा (पकाया) हुआ पकवान। त्रइग्गुण=तीन गुणों वाले। लिष्षउ=समझा। "अंतकु......लिष्षउ"=उसने काल के करों से राँधे हुए पकवान के समान उस स्त्री के त्रिगुण तनु को जाना। दयन=दया-युक्त, द्रवित। कवन कम्मु=क्या कार्य। अच्छयउ=है। "बोलियउ......अच्छयउ"=अत्यन्त दयार्द्र होकर उसने पूछा कि हे कवि क्या काम है? कितिय=कीर्ति। कमलिय=कवलित कर लिया है। मुक्कयउ=छोड़ रही है। "तव......मुक्कयउ"=तुम्हारी कीर्ति रूपी मतवाले हाथ ने उसके पति कमल रूपी कयमास को कवलित कर लिया है इसलिए वह शरीर त्याग रही है।

संदर्भ—चन्द के साथ कयमास की स्त्री पृथ्वीराज से अपने पति का शव लेने जाती है। पृथ्वीराज उसको देखकर दयालु होकर आने का कारण पूछते हैं और चन्द सारे प्रसंग को स्पष्ट करते हैं। इस छन्द में इसी घटना का वर्णन है।

व्याख्या—पति के साथ सती होने को उद्यत कयमास की स्त्री को चन्द ने अपनी शरण में लिया। उस स्त्री ने अपूर्व प्रकार का मरणोत्सव के समय का मंगल शृङ्गार कर रखा था। वे उसको लेकर पृथ्वीराज के पास चले। द्वारपाल भय के कारण चन्द और कयमास की स्त्री को पृथ्वीराज के पास जाने तक रोक न सका। उसने मार्ग दे दिया। जब वे पृथ्वीराज के पास पहुँचे, पृथ्वीराज ने जागकर क्रोध से जलते हुए नेत्रों से उस सहगामिनी स्त्री के नेत्रों को देखा। पृथ्वीराज को कयमास की स्त्री को त्रिगुण-युक्त शरीर ऐसा लगा, मानो वह मृत्यु के द्वारा पकवान की तरह राँधा (पकाया) गया हो। अर्थात पति की मृत्यु के शोक में कयमास की स्त्री का शरीर ऐसा दग्ध और क्षीण हो रहा था, मानो काल ने ही उसे राँध दिया हो। वह मृतवत् ही दिखाई दे रही थी। कयमास की स्त्री को इस प्रकार दयनीय स्थिति में देखकर पृथ्वीराज

ने चन्द से पूछा कि तुम लोग यहाँ किस कार्य से आये हो ? चन्द ने उत्तर दिया कि आपकी कीर्ति रूपी मतवाले हाथी ने कयमास रूपी कमल को कवलित कर लिया है, इसलिए उसकी यह पत्नी उसके शरीर के साथ भस्म होकर सती हो रही है।

विशेष—१. सती होने को उद्यत कयमास की पत्नी का बड़ा ही मार्मिक चित्रण हुआ है।

२. चन्द की शरणागत-वत्सलता का प्रतिपादन हुआ है।

३. भाषा की दृष्टि से 'अपुव्व', 'सक्किय', 'मग्गु', 'मुक्कयउ' आदि में व्यंजन-द्वित्व की प्रवृत्ति, 'दिष्यउ', 'लिष्यउ', 'अच्छयउ' में स्वर-संयोग और 'तनु' आदि में उकारान्त क्रियारूप की प्रवृत्ति है। भाषा में परुषता और ध्वन्यात्मकता है। 'रध्धांमु' में अनुनासिकता है।

४. छन्द—कवित्त (छप्पय)।

५. अलंकार—(क) 'सरणि सहगवनि' में 'स' वर्ण की एक बार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास।

(ख) 'मरन मंगल' में 'म' वर्ण की एक बार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास।

(ग) 'त्रयगुण त्रियतनु' में 'त्र' वर्ण की एक बार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास।

(घ) "कवन······कवि" में 'क' वर्ण की एक से अधिक वार आवृत्ति होने से वृत्यनुप्रास।

(ङ) "कितिय······कमल" में 'क' वर्ण की एक से अधिक वार आवृत्ति होने से वृत्यनुप्रास तथा सभंग पद यमक।

(च) 'जागि जुलन' में 'ज' और 'नयन नयनन' में 'न' वर्ण की एक वार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास।

(छ) 'अंतकु कर······लिष्षउ' में रूपक।

(ज) 'कितिय कमलिय कमल' में रूपक।

[३४]

बाला मगइ वरयो काउ वासं ति भट्ट सरनांई।
तुव गति कछु मन संभरिवइ संभरिवइ त संभरु राय॥

शब्दार्थ—वाला=स्त्री। मंगइ=माँग रही है। वरयो=पति। काउ=

कपोत। वांसति=वस्त्र धारण किये हुए है। भट्ट=चन्द कवि। सरनांई=शरण में आई हुई। "वाला······सरनांई"=कपोत के रंग का वस्त्र धारण करके भट्ट के शरण में आई हुई बाला, तुमसे अपने पति का शव माँग रही है। संभरिवइ=शाकंभरी नरेश पृथ्वीराज। "तुव······राय"=उसके मन में तुम्हारी गति है। वह 'सांभर पति' 'सांभर पति' स्मरण कर रही है।

संदर्भ—चन्द कयमास की स्त्री-सहित पृथ्वीराज के पास पहुँचते हैं और उनके पूछने पर कहते हैं कि यह आपको स्मरण करती हुई अपने पति का शव माँग रही है।

व्याख्या—हे शाकंभरी-नरेश कयमास की स्त्री अपने पति के साथ सती होने को उद्यत है। वह कबूतर के रंग का वस्त्र पहनकर भट्ट की शरण में आई है। यह आपसे अपने पति का शव माँग रही है। यह मन में आप ही की आशा लिये हुए है। अतः यह 'सांभर पति', 'सांभर पति' स्मरण कर रही है।

विशेष—१. चन्द की वचन-चातुरता दृष्टव्य है। वह कयमास का शव उसकी पत्नी को दिलवाना चाहता है। अतः पृथ्वीराज की प्रशंसा करता है और उसे स्त्री की ओर संवेदनशील वना देता है।

२. **छन्द**—गाथा या गाहा है।

३. **अलंकार**—अनुप्रास और पुनरुक्तिप्रकाश।

[३५]

वछिय कित्ति वोलिय वयन, ढिल्ली पुरह नरिंद।
दाहिम्मउ दाहिर हरो, को कढ्ढइ कवि चंद॥

शब्दार्थ—वछिय=इच्छा की। कित्ति=कीर्त्ति। नरिंद=राजा। "वछिय······नरिंद"=पृथ्वीराज ने कीर्ति की इच्छा की, इसलिये वह वोला। दाहिम्मउ=दाहिया कयमास। दाहिर=गड्ढा। हरो=अपहृत। कढ्ढइ=निकालना। "दाहिम्मउ······चन्द"=कयमास गड्ढे द्वारा अपहृत हो चुका है, अब उसे कौन निकाल सकता है?

संदर्भ—चन्द पृथ्वीराज से कयमास का शव उसकी स्त्री को देने के लिए कहता है। इस पर पृथ्वीराज उत्तर देते हैं—

व्याख्या—दिल्लीश्वर पृथ्वीराज कीर्ति की इच्छा करते हुए इस प्रकार वोले कि दाहिमा कयमास गड्ढे के द्वारा अपहृत हो चुका है। अर्थात् उसे गड्ढे में गाड़ दिया गया है। अतः अब उसे कौन निकाल सकता है।

विशेष—१. पृथ्वीराज की कीर्ति की आकांक्षा का संकेत मिलता है।

२. भाषा की दृष्टि से 'कित्ति', 'ढिल्ली', 'दाहिम्मउ' आदि में व्यंजन-द्वित्व की प्रवृत्ति मिलती है।

३. छन्द—दोहरा (दोहा)।

४. अलंकार—(क) 'दाहिम्मउ दाहिर' में 'द' वर्ण की एक बार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास।

(ख) 'को कढ्ढइ कवि' में 'क' वर्ण की एक से अधिक वार आवृत्ति होने से वृत्यनुप्रास।

[३६]

रावन किनि गड्डिअउ क्रोध रघुराय बान दिय।
वालि किनि गड्डिअउ सु त सुग्रीव जीव लिय।
चंद किन गड्डिअउ कीअ गुरुदार स किल्लउ।
रवि न पंड गड्डिअउ पुच्छि सह देव पहिल्लउ।
गड्डउ न इंदु गोतम रषि बरु सराप छंडिय जिनी।
इह रोस दोस पृथिराज सुनि मम गड्डइ संभरिधनी।

शब्दार्थ—'रावन किनि गड्यिउ'=रावण को किसने गाड़ा था। वान दिय=वाण मारा था। गड्डियउ=गाढ़ा। सु त=उसका। "सु त······लिय" =उसका सुग्रीव ने जीवन ही तो लिया था। कीअ=किया। "चन्द······ गड्डियउ"=चन्द्रमा को किसने गाड़ा था ? गुरुदार=गुरु पत्नी। स=से। किल्लउ=केलि की थी। पंड=पाण्डु। पुच्छि=पूछो। सह=सभा। "रवि··· ···गड्डियउ"=सूर्य को नहीं गाड़ा था। पहिल्लउ=पहले के। "पुच्छि······ पहिल्लउ"=हे देव ! पहले सभा से पूछें। इन्दु=इन्द्र। रषि=ऋषि। "गड्डउ······रषि"=इन्द्र को गौतम ऋषि ने नहीं गाड़ा था। वरु=भले ही। सराप=शाप। छंडिय=छोड़ा। जिनी=जिन्होंने। "वरु······जिनी" =भले ही जिन्होंने उसे शाप दिया था। इह=इस प्रकार। रोस=क्रोध। संभरि-धनी=शाकंभरी-नरेश। "इह रोष······संभरि धनी"=हे पृथ्वीराज इतना रोष करना दोष है, कयमास को न गाड़ो।

सन्दर्भ—यहाँ चन्द बड़ी चतुरता और युक्ति से कयमास की स्त्री को उसके पति का शव देने की प्रार्थना करते हैं—

व्याख्या—हे शाकंभरी-नरेश महाराज पृथ्वीराज चौहान ! रावण को

किसने गाड़ा था ? क्रोध में रघुनाथ श्रीराम ने उसे वाण ही तो मारा था। वालि को किसने गाड़ा था ? उसका सुग्रीव ने जीवन ही तो लिया था। चन्द्रमा को किसने गाड़ा था ? उसने गुरु-पत्नी से रति-क्रीड़ा की थी । पाण्डु ने भी सूर्य को नहीं गाड़ा था। हे देव ! पहले के ऐसे प्रसंगों का विवरण आप सभा से पूछिये। इन्द्र को भी गौतम ऋषि ने नहीं गाड़ा था, भले ही उन्होंने उसे शाप दिया हो। हे पृथ्वीराज महाराज ! कयमास के ऐसे आचरण पर इतना क्रोध करना दोष है। अतः आप कयमास को न गाड़िये।

विशेष—१. चन्द के कथन में उक्ति-वैचित्र्य देखते ही बनता है। वह पौराणिक दृष्टान्त देकर कयमास के अपराध की गुरुता कम कर देता है। रावण-राम, वालि-सुग्रीव, चन्द्रमा-गुरुपत्नी, पाण्डु-रवि, इन्द्र-गौतम के प्रसंगों में भी करुणा का अंश था। इन प्रसंगों का उल्लेख कर चन्द कयमास की पत्नी के प्रति कठोर न बनने को पृथ्वीराज से युक्ति के साथ आग्रह कर रहे हैं।

२. भाषा की दृष्टि से 'व्यंजन-द्वित्व' भाषा की प्राचीनता और अपभ्रंश के प्रभाव को स्पष्ट करता है।

३. छन्द—कवित्त (छप्पय)

४. स्वर-संयोग और अन्त्य-स्वर-संयोग भी है।

५. अलंकार—अनुप्रास, दृष्टान्त।

[३७]

तउ अप्पउं कयमास तु हि, मिटिहि उरह अंदेसु।
दिष्षावइ पहु पंगुर, जइ जयचंद नरेसु।

शब्दार्थ—तउ=तव। अप्पउं=दे सकता हूँ। तुहिं=तुझे। उरह=हृदय का। अंदेसु=शंका। दिष्षावइ=दिखा दो। पहु=प्रभु। पंगुर=पंगुल। जइ=यदि।

सन्दर्भ—पृथ्वीराज कयमास का शव इस शर्त पर देने को तैयार होते हैं कि चन्द उनको जयचन्द को दिखा दे।

व्याख्या—हे कवि चन्द ! मैं कयमासं का शव तुझे तव अर्पित कर सकता हूँ और तभी मेरे हृदय का अंदेशा मिटेगा, जव तू मुझे पंगुल-प्रभु जयचन्द को दिखा देगा।

विशेष—१. पृथ्वीराज जयचन्द के अपमान से क्षुब्ध है। वह उससे बदला लेना चाहता है। साथ ही जयचन्द की पुत्री संयोगिता के प्रति वह आसक्त भी है।

२. छन्द—दोहरा (दोहा)।

३. अलंकार—अनुप्रास।

४. भाषा—भाषा की दृष्टि से 'अप्पउ', 'तउ', 'दिष्षावइ' में स्वर-संयोग, और 'अंदेसु', 'नरेसु' में उकारान्त की प्रवृत्ति है।

[३८]

षिन त मनहि धीरज धरहु, अरि दिष्षत तिहि काल।
अति बरबर बोलइ नहीं, सु किम चालइ भूआल॥

शब्दार्थ—षिन=क्षण। त=तो। मनहि=मन में। अरि=शत्रु। दिष्षत=देख रहा है। तिहि काल=इस समय। वरवर=वर्वर। किम=किस प्रकार। भूआल=राजा, भूपाल।

संदर्भ—पृथ्वीराज कयमास का शव इस शर्त पर देने को तैयार होते हैं कि चन्द उनको जयचन्द को दिखाये। चन्द पूछते हैं कि वे कन्नौज किस प्रकार चलेंगे।

व्याख्या—इस क्षण तो आप मन में धैर्य रखिए, क्योंकि इस समय तुम्हारा शत्रु जयचन्द देख रहा है। वह आपके कन्नौज पर आक्रमण करने के संकल्प की वात जान गया है। अतः इस समय वह सावधान हो गया है। वहुत बर्वर होकर न वोलिए और वतलाइये कि आप किस प्रकार कन्नौज चलेंगे।

विशेष—१. यहाँ चन्द के कथन में गर्वोक्ति अवश्य है, परन्तु चन्द निर्भीक और स्पष्ट वक्ता होने के साथ-साथ पृथ्वीराज के अन्तरंग मित्र भी थे। अतः वे पृथ्वीराज से सब कुछ कहने के लिए स्वतंत्र थे।

२. चन्द "अरि दिष्षत काल" कथन में उसकी दूरदर्शिता प्रकट हुई है।

३. छन्द—दोहरा (दोहा)

४. अलंकार—अनुप्रास।

५. भाषा—(क) 'भुआल' संस्कृत का 'भूपाल' है। यहाँ मध्य व्यंजन का लोप हो गया है।

(ख) 'वोलइ', 'चालइ' में स्वर-संयोग है।

[३९]

चलउं भट्ट सेवग होइ सथ्थहं।
जउ वोलउं त हथ्थु तुह मथ्थहं॥

जबह राइ जानइ संमुह हुअ।
तब अंगमउं समर दुहुनि भुअ ॥

शब्दार्थ—चलउं=चलूँगा। भट्ट=चन्द कवि। सेव=सेवक। होइ=होकर। सथ्थहं=साथ। 'चलउं······सथ्थहं'=मैं चन्द कवि का सेवक बनकर चलूँगा। त=तो। हथ्थ=हाथ। तुह=तेरे। मथ्थहं=माथा। "जउ······मथ्थहं"=यदि उस समय मैं कुछ बोलूँ तो मेरा हाथ तुम्हारे मस्तक पर है। जबह=जब। राइ=राजा। जानइ=जानेगा। संमुह=सामने। हुअ=हुआ। "जबह······हुअ"=जभी राजा मुझे सम्मुख हुआ जानेगा। अंगमउं=करूँगा। समर=युद्ध। दुहनि भुअ=दोनों भुजाओं से। "तव······भुअ"=तव मैं दोनों भुजाओं से युद्ध करूँगा।

सन्दर्भ—चन्द पृथ्वीराज से पूछते हैं कि आप किस प्रकार कन्नौज चलेंगे। पृथ्वीराज चन्द के साथ उनका सेवक बनकर जाने और जयचन्द का सामना होने पर उससे युद्ध करने की बात कहते हैं—

व्याख्या—हे भट्ट कवि चन्द ! मैं सेवक बनकर तुम्हारे साथ कन्नौज चलूँगा। मैं तुम्हारे सिर की शपथ खाकर कहता हूँ कि तुम्हारे साथ कन्नौज में कुछ भी नहीं बोलूँगा। जब राजा जयचन्द मुझे सामने हुआ जानेगा, तब मैं उससे अपनी दोनों भुजाओं से युद्ध करूँगा।

विशेष—१. यहाँ पृथ्वीराज के शौर्य और धैर्य का व्यंजना हुई है।

२. छन्द—मुडिल्ल।

३. अलङ्कार—अनुप्रास।

४. भाषा—'सथ्थहं', 'पथ्थहं', 'हथ्थु' में व्यंजन-द्वित्व की प्रवृत्ति है। 'चलउ', 'बोलउ', 'अंगमउं', 'राइ', 'जानइ' आदि में स्वर-संयोग है।

[४०]

दोइ कंठ लग्गिय गहन, नयनह जल गल न्हांनु।
अब जीवन वंछिहि अधिक कहि कवि कोन सयानु ॥

शब्दार्थ—गहन=गाढ़, कसकर। नयनह=नेत्रों से। गल=गिरना। न्हांनु=स्नान। "दोइ······न्हांनु"=दोनों कसकर गले मिले और नेत्रों के गिरते हुए जल से दोनों ने स्नान किया। वंछिहि=इच्छा। "अब जीवन······सयानु"=हे कवि तुम्हीं कहो कि अब कौन समझदार व्यक्ति अधिक जीवन की इच्छा करेगा।

सन्दर्भ—यहाँ चन्द और पृथ्वीराज गले मिलते हैं। पृथ्वीराज अपमानित जीवन की अपेक्षा मृत्यु को उत्तम कहते हैं।

व्याख्या—पृथ्वीराज और चन्द कसकर गले मिलते हैं। उनके नेत्रों से इतने अश्रु गिरते हैं कि उनसे दोनों ही भीग जाते हैं। पृथ्वीराज चन्द से कहते हैं कि हे कवि ! तुम्हीं कहो कि क्या कोई मनुष्य अपमानित होकर जीवन चाहेगा। मैं भी जयचन्द से अपमानित होकर किस प्रकार जीवन की इच्छा करूँ।

विशेष—१. जयचन्द ने राजसभा में पृथ्वीराज को द्वारपाल का काम सौंपकर उन्हें अपमानित किया है। यहाँ इसी अपमान की ओर संकेत है।

२. भावातिरेक की स्थिति में भावों की सुन्दर व्यंजना हुई है।

३. भाषा की दृष्टि से 'न्हांनु' और 'सयानु' में उकारान्त की प्रवृत्ति है। 'न्हांनु' में सानुनासिकता और 'लग्गिय' में व्यंजन-द्वित्व है।

[४१]

अब उपाउ सुझ्झउ एक संचउ।
सुनि कवि मरनु टरइ नवि रंच्यउ।
समर तिथ्थ गंगह जल षंच्यउ।
अवसरि अब स पंग धर नंच्यउ॥

शब्दार्थ—सुझ्झउ=सूझ गया। संचउ=सच्चा। "अव···संचउ"=अब एक सच्चा उपाय सूझ गया। नवि=नहीं। रंच्यउ=रंच मात्र भी। "सुनि······रंच्यउ"=हे कवि ! मरन रंच मात्र भी नहीं टलता। समर तिथ्य=युद्ध रूपी तीर्थ। गंगह जल षंच्यउ=रण-तीर्थ तथा गंगा जल ने सींचा है। अवसरि=अवसर पर। पंग=कन्नौज के राजा। धर=भूमि। नंच्यउ=नृत्य करेंगे।

संदर्भ—प्रस्तुत छन्द में पृथ्वीराज कन्नौज में जयचन्द से युद्ध करने का उत्साह व्यंजित कर रहे हैं :—

व्याख्या—हे चन्द कवि ! अब यह एक सच्चा उपाय सूझ गया है। सुनो, विधाता द्वारा रचा हुआ मरण रंच मात्र भी नहीं टल सकता, यदि हमारी मृत्यु कन्नौज में ही विधाता ने लिखी है, तो वहीं जाकर मरूँगा। रण-तीर्थ और गंगा-जल हमें बुला रहे हैं। इस अवसर पर हम पंगुलराज जयचन्द की भूमि पर नृत्य करेंगे और अपना रण-कौशल प्रदर्शित करेंगे।

विशेष—१. पृथ्वीराज के शौर्य और निर्भीकता का परिचय मिलता है।

२. राजपूतों के लिए युद्ध-भूमि तीर्थ के समान पवित्र रही है। यहाँ यही भावना व्यक्त हुई है।

३. छन्द—अडिल्ल।

४. अलंकार—'समर तिथ्थ' में रूपक अलंकार।

५. भाषा—'उपाउ', 'मरनु' में उकारान्त तथा 'सुभ्भउ' और 'तिथ्थ' में व्यंजन-द्वित्व की प्रवृत्ति है।

[४२]

आनन्दउ कवि चंद जिय नृप, किय संच विचार।
मन गरुअर सिर हरुअ हइ, जीवन हरुअ सिरभार॥

शब्दार्थ—आनंदउ=आनन्दित हुआ। संच=सत्य। गरुअर=गौरवपूर्ण। हरुअ=हलका।

संदर्भ—पृथ्वीराज में शौर्य और बलिदान की उग्र भावना देखकर चन्द को प्रसन्नता होती है। यहाँ चन्द की प्रसन्नता का वर्णन हुआ है।

व्याख्या—महाराज पृथ्वीराज का कन्नौज गमन का दृढ़ विचार देखकर चन्द बहुत आनन्दित हुआ। चन्द ने पृथ्वीराज के विचारों में सच्चाई का अनुभव किया। वह समझ गया कि पृथ्वीराज के मन में गौरव पूर्ण संकल्प है। जिसकी तुलना में उसे अपना सिर भी हलका लग रहा है और जीवन भी उसे महत्त्व-हीन लग रहा है। उसके कंधों पर सिर भारी हो रहा है, जिसे वह उतार कर फेंकने के लिए व्यग्र है।

विशेष—१. पृथ्वीराज के शौर्य और उत्साह की व्यंजना हुई है। उसके क्षत्रियोचित वीर दर्प का परिचय मिलता है।

२. छन्द—दोहरा (दोहा)।

३. अलंकार—अनुप्रास।

[४३]

अप्पउ कवि कयमास सतीय सय ले संचरिउ।
मरन लग्ग बिधि तथ्थु तथ्थु कवि उच्चरिउ।
धरि वरु पंगु प्रगट्ट अरु थट्ट विहंडिहइं।
इत उपहास बिलास न प्रान पमूकिहइं॥

शब्दार्थ—अप्पउ=अर्पित कर दिया, दे दिया। सय=शव। संचरिउ=संचरित हुई, चिता पर चढ़ गई। लग्ग=लग्न, विवाह। मरन लग्ग=मृत्यु और

विवाह । विधि हथ्थु=विधाता के हाथ में । तथ्थु=तथ्य । उच्चरिउ=कहा । धरि=पृथ्वी । वरु=भले ही । पंगु=पंगुल राज, कन्नौज के राजा । प्रगट्ट= प्रकट होंगे । थट्ट=सेना । विहंडिहइं=विखंडित करेंगे । "धरि...... विहंडिहइं"=हम भले ही कन्नौज राज की भूमि पर प्रकट होंगे और शत्रु सेना को विखंडित करेंगे । इत=यहाँ । उपहास=अपमान जनित हँसी । पमूकिहइं=छोड़ेंगे ।

संदर्भ और केन्द्रीय-भाव—प्रस्तुत छन्द में कयामस-वध का उपसंहार है । कयमास का शव उसकी स्त्री को दे दिया गया । वह सती हो गई । चन्द को पृथ्वीराज के कन्नौज-गमन के दृढ़ निश्चय से प्रसन्नता हुई ।

व्याख्या—चन्द ने पृथ्वीराज से लेकर कयमास का शव उसकी स्त्री को दे दिया । वह सती सत लेकर चिता पर चढ़ कर सती हो गई । तब चन्द कवि ने कहा कि मृत्यु और लग्न (विवाह) विधाता के हाथ में होते हैं । हम भले ही कन्नौज-राज जयचन्द की भूमि पर प्रकट होंगे और शत्रु की सेना को विखंडित करेंगे । भले ही इस प्रकार हमारे प्राण चले जायँ । परन्तु हम यहाँ रहकर उपहास सहते हुए और विलास-क्रीड़ा में लगे हुए अपने प्राणों को व्यर्थ ही नष्ट नहीं करेंगे ।

विशेष—१. प्रस्तुत छन्द कथानक की दृष्टि से वड़ा ही सार-गर्भित है । इसमें कथानक का सार उपसंहार सामने आ जाता है और साथ ही पृथ्वीराज के कन्नौज जाने, संयोगिता-हरण और जयचन्द से युद्ध होने की भी सूचना मिल जाती है ।

२. **छन्द**—रासा ।

३. **भाषा**—(क) व्यंजन-द्वित्व की प्रवृत्ति की प्रचुरता :—'अप्पउ', 'लग्ग', 'हथ्थु', 'उच्चरिउ', 'प्रगट्ट', 'थट्ट' ।

(ख) स्वर-संयोगों में ध्वन्यात्मकता है—'संचरिउ', 'उच्चरिउ', 'विहंडिहइं', 'पमूकिहइं' ।

४. **अलंकार**—(क) 'कवि कयमास' में 'क' वर्ण की एक वार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास ।

(ख) 'सतीय सय' में 'स' वर्ण की एक वार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास ।

(ग) 'हथ्थु', 'तथ्थु' में छेकानुप्रास ।

(घ) 'प्रान पमूकिहइं' में 'प' वर्ण की एक वार आवृत्ति होने से छेकानुप्रास ।

आलोचनात्मक अध्ययन

[पृथ्वीराज रासो : कयमास-वध]

१

रासो काव्य-परम्परा और पृथ्वीराज रासो

प्रश्न १—रासो काव्य-परम्परा का उल्लेख करते हुए उसमें पृथ्वीराज रासो का स्थान और महत्व निश्चित कीजिए।

अथवा

प्रश्न २—वीर-गाथा काव्य-साहित्य में 'पृथ्वीराज रासो' का स्थान निश्चित कीजिए।

स्मृति-संकेत

१. हिन्दी को रासो-परम्परा अपभ्रंश—गुजराती से प्राप्त हुई।
२. अब्दुल रहमान का 'संदेश रासक' (११वीं शताब्दी) अपभ्रंश का सबसे प्राचीन रासो काव्य है।
३. बारहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दी के बीच 'वीसलदेव रासो', 'जम्बू-स्वामी रास, 'हम्मीर रासो', 'परमाल रासो', 'विजयपाल रासो', 'राउ जैत-सी-रौ रासो' आदि लिखे गये।
४. 'पृथ्वीराज रासो' के परवर्ती रासो में 'हम्मीर-रासो', 'परमाल-रासो' तथा 'विजयपाल' रासो ही प्रमुख हैं।
५. 'पृथ्वीराज रासो' रासो-काव्य-परम्परा का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है।

उत्तर—रासो-परम्परा

हिन्दी का प्रथम महाकाव्य 'पृथ्वीराज रासो' रासो-काव्य की एक निश्चित परम्परा का विकास है। रासो काव्य की परम्परा अपभ्रंश से प्रारम्भ हुई और आधुनिक युग तक अविराम रूप से चलती रही। हिन्दी को रासो-काव्य-परम्परा गुजराती से प्राप्त हुई।

प्रथम रासो काव्य

'सन्देश रासक'—रासो परम्परा में सन्देश-रासक प्रथम रासो काव्य है । इसके रचयिता अब्दुल रहमान हैं । राहुल सांकृत्यायन ने इसका रचनाकाल विक्रम की सातवीं शताब्दी और मुनि जिन विजय ने १२वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध या तेरहवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध माना है। इसमें प्रोषितपतिका नायिका के विरह का मार्मिक वर्णन है । वह पथिक द्वारा अपने पति क़े पास प्रेम-सन्देश भेजती है । इसमें ॠतु-वर्णन वड़ा ही सुन्दर है । डा० विपिन विहारी त्रिवेदी ने अपने 'रेवा-तट' ग्रंथ में 'सन्देश-रासक' से भी पूर्व एक रासो ग्रंथ का उल्लेख किया है, इसका नाम 'मुंज रास' है । इसमें मालवा के राजा मुंज और कर्नाटक के तैलप की वहिन मृणालवती के प्रेम का वर्णन है । इसके कुछ छन्द हेमचन्द्र के 'सिद्ध-हेमशब्दानुशानन' और मेरुतुंग के 'प्रवन्ध चिन्तामणि' में मिलते हैं ।

वीर रस के रासो काव्यों में शालिभद्र का **'भरतेश्वर बाहुबली रास'** महत्वपूर्ण है । यह काव्य वीर रसात्मक है। इसमें ॠषभ के दो पुत्र भरतेश्वर और वाहुवली के युद्ध का वर्णन है । इसका रचना काल सं० १२४१ माना गया है । शालिभद्र ने **'बुद्धि रास'** भी लिखा । इसी काल में आसगु कवि ने 'जीवदया रास' तथा **'चन्दनबाल-रास'**, जिनदित्त सूरि ने 'उपदेश रसायन रास' कवि देल्हण ने 'गयसुकुमाल रास' और जीवधर ने 'मुक्तावली रास' की रचना की । 'उपदेश रसायन रास' नीति-काव्य-शैली में लिखा गया अतः इसको वीर काव्य परम्परा में नहीं लिया जा सकता ।

डिंगल तथा पिंगल में 'रास' या रासो की जो परम्परा मिलती है उसमें चरित्र की प्रधानता है । इन रचनाओं में, अनैतिहासिक तत्त्व वहुत पाये जाते हैं । इनके आकार-प्रकार, विषयवस्तु, तथा वर्णन-शैली में भिन्नता है । 'रास' और 'रासो' दोनों का प्रयोग साहित्य में भिन्न-भिन्न अर्थों में होता रहा है । इन दोनों का साहित्य भी अलग अलग समृद्ध रहा । अतः इस परम्परा को निम्न-लिखित दो शीर्षकों में विभाजित किया जा सकता है—

१. गीत नृत्य-परक रास-परम्परा ।

२. छन्द-वैचित्र्य-परक रासो-परम्परा ।

गीत-नृत्य-परक रास-परम्परा का रूप ऊपर दिखाया जा चुका है । यह तथा इसके साथ ही 'रासो परम्परा १२वीं शताब्दी से लेकर १५वीं शताब्दी के

बीच पर्याप्त विकसित हुई। इस काल में निम्नलिखित 'रास-ग्रन्थ' उल्लेखनीय हैं—

१. वीसलदेव रास, २. जम्बू स्वामी रास, ३. रेवन्तगिरि रास, ४. कछुली रास, ५. गोतम रास. ६. दशार्णमधु रास. ७. वस्तुपाल-तेजपाल रास, ८. श्रेणिक रास, ९. पेठड़ रास, १०. समरसिंह रास, ११. सप्तक्षेत्र रास, १२. चन्दनबाल रास आदि।

वीसलदेव रासो

इस गीत नृत्य-परक रास-परम्परा में 'वीसलदेव रासो' को बहुत ख्याति प्राप्त है। यह रासो-परम्परा का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसके रचयिता नरपति नाल्ह कहे जाते हैं। इसका रचना-काल १६वीं शताब्दी माना जाता है। यह १०० पृष्ठों का ग्रन्थ गीत-काव्य के रूप में है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'वीसलदेव' रासो को वीर-गीत के रूप में सबसे प्राचीन ग्रन्थ माना है। परन्तु इसको वीर-काव्य-परम्परा का ग्रन्थ न मानकर प्रेम-गीत परम्परा का ही काव्य मानना चाहिए। इसमें प्रेम और विरह ही के गीत मिलते हैं। राजमती के विरह का बड़ा ही मार्मिक और अनुभूति पूर्ण वर्णन हुआ है। वीसलदेव रासो में आद्यान्त एक ही छन्द का प्रयोग हुआ है। सम्पूर्ण ग्रन्थ गेय होने के कारण इसको नृत्य-गीत के साथ भी प्रस्तुत किया जाता है।

खोजों में प्राप्त रासो ग्रन्थ

पं० मोतीलाल मेनारिया, पं० नरोत्तम स्वामी, डा० दशरथ शर्मा और अगरचन्द्र नाहटा ने १७ वीं से लेकर १८ वीं शताब्दी तक के कुछ रासो ग्रन्थों का पता अपनी खोज में लगाया है।

सत्तरहवीं शताब्दी के रासो ग्रन्थ

ऋषभदास का 'कुमारपाल रास', माधौदास का 'राम-रासो', सुमति हंस का 'विनोद रासो'।

अठारहवीं शताब्दी के रासो ग्रन्थ

डूँगर-सी का 'छत्रसाल रासो', गिरधर चारण का 'सगतसिंह रासो' और दलपति विजय का 'खुमन रासो'।

उन्नीसवीं शताब्दी के रासो ग्रन्थ

इस शताब्दी में रासो ग्रन्थों में 'श्रीपालरास महत्त्वपूर्ण है।

'विजयपाल रासो' की रचना नल्हसिंह भाट ने की। इसमें विजयपाल की दिग्विजय का वर्णन है। इसमें वीर रस की प्रधानता है। इसके केवल ४२ छन्द ही प्राप्त हुए हैं। 'विजयपाल रासो' का रचनाकाल निश्चित नहीं है। 'राम-रासो' का रचनाकाल सं० १६७५ माना गया है। इसमें राम का चरित्र-वर्णित है। यह १६०० छन्दों का ग्रन्थ है। बीच-बीच में गीत भी हैं। 'सगतसिंह रासो' में महाराणा प्रतापसिंह के भाई शक्तिसिंह तथा उनके वंशजों का चरित्र है। इसमें वीर रस की प्रधानता है। इसमें ९४३ छन्द हैं। इसका रचनाकाल ज्ञात नहीं। 'खुमानरासो' का रचयिता दलपति विजय है। इसमें विविध छन्दों में खुमान वंश का वर्णन किया गया है। 'खुमान रासो' के सम्बन्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी-साहित्य' के इतिहास में लिखा है :—

"यह नहीं कहा जा सकता कि इस समय जो खुमान रासो मिलता है, उसमें कितना अंश पुराना है। उसमें महाराज प्रतापसिंह तक का वर्णन मिलने से यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि जिस रूप में यह ग्रन्थ अव मिलता है, वह उसे विक्रम सं० की १७ वीं शताब्दी में प्राप्त हुआ होगा। यह नहीं कहा जा सकता कि दलपति विजय असली खुमान रासो का रचयिता था अथवा उसके परिशिष्ट का है।"

हास्य-मिश्रित रासो

सत्तरहवीं से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी तक कुछ हास्य-मिश्रित रासो ग्रन्थ भी लिखे गये। इनमें 'माँकण रासो', 'ऊँदर रासो', 'खीचड़ रासो', और 'गोधा-रासो' उल्लेखनीय हैं। 'माँकण रासो' का रचयिता कान्ह कीर्ति सुन्दर है। इसमें ३९ छन्द हैं और विनोद की प्रधानता है। रचना काल सं० १७५७ माना जाता है।

पिंगल अथवा राजस्थानी तथा ब्रजभाषा अथवा प्राचीन ब्रजभाषा के रासो ग्रन्थ

ऊपर जिन ग्रन्थों का उल्लेख किया जा चुका है वे सभी डिंगल भाषा में लिखे गये। वहुत से रासो ग्रन्थ पिंगल अथवा राजस्थानी तथा ब्रजभाषा में भी

रचे गये। शार्ङ्गधर का 'हम्मीर रासो', किसी अज्ञात कवि का 'परमाल रासो', नल्हसिंह भट्ट का 'विजयपाल रासो', गुलाव कवि का 'करहिया को राइसो', जान कवि का 'कायम रासो', कुम्भकर्ण चारण का 'रतन रासो', दयालदास का 'राणा रासो', जोधराज का 'हम्मीर रासो', जल्ह कवि का 'वुद्धि रासो', किसी अज्ञात कवि का 'राऊ जैती सी रौ रासो' आदि ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं। इन रासो ग्रन्थों में 'हमीर रासो', 'परमाल रासो', 'विजयपाल रासो' को विशेष ख्याति प्राप्त है। 'परमाल रासो' के रचयिता का नाम अभी तक ज्ञात नहीं हो सका है।

रासो परम्परा के काव्यों में पृथ्वीराज रासो का स्थान

'पृथ्वीराज रासो' छन्द-वैविध्य-परक रासो काव्य-परम्परा का सबसे अधिक प्रसिद्ध और पुष्ट ग्रन्थ है। इसको हिन्दी का प्रथम महाकाव्य होने का गौरव प्राप्त है। इसके रचयिता चन्दवरदाई हैं। अपने प्रस्तुत रूप में यह एक विशाल ग्रन्थ है। इसके छोटे-वड़े अनेक संस्करण मिलते हैं।

'पृथ्वीराज रासो' से पहले 'मुंज रास', 'सन्देश रासक', 'भरतेश्वर वाहुवली रास', 'वीसलदेव रासो' आदि की रचना हो चुकी थीं। 'पृथ्वीराज रासो' के वाद के जो रासो ग्रन्थ मिलते हैं, उनमें 'हम्मीर रासो', 'परमाल रासो' और 'विजयपाल रासो' ही प्रमुख हैं। पूर्ववर्ती और परवर्ती कोई भी ग्रन्थ 'पृथ्वीराज रासो' की समता में ठहर नहीं सकता। 'पृथ्वीराज रासो' महाकाव्य है। यह एक विशाल काव्य-ग्रन्थ है। इसमें महाकाव्य के समस्त शास्त्रीय लक्षणों का निर्वाह हुआ है। वीरगाथा काल के काव्य-ग्रन्थों में 'पृथ्वीराज रासो' के समान अन्य किसी काव्य-ग्रन्थ को सम्मान प्राप्त न हो सका। इसके लिए मिश्र-बन्धुओं ने लिखा है :—

"चन्दवरदाई की कविता से प्रकट होता है कि वह प्रौढ़ रचना है और छन्द आदि की रीतियों पर उसमें ऐसा अनुगमन हुआ है, जान पड़ता है कि यह महाशय दृढ़ रीतियों पर चलते थे और स्वयं उन्हीं ने हिन्दी काव्य-रचना की नींव डाली है।"

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'पृथ्वीराज रासो' रासो-काव्य-परम्परा का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है। इस विशालकाय महाकाव्य में वर्णन-विस्तार, छन्दों की

विविधता, वर्णन सम्बन्धी प्रबन्ध-कौशल और कलात्मकता आदि सभी कुछ मिलता है। आद्यान्त वर्णन-चातुरी, वाग्वैदग्ध और कवि-कौशल प्रकट हुआ है। कला-विस्तार और वर्णन-कौशल की दृष्टि से 'पृथ्वीराज रासो' अप्रतिम ग्रन्थ है। प्रवन्ध काव्यों के क्षेत्र में जनता में 'रामचरित मानस' के पश्चात् 'पृथ्वीराज रासो' को ही विशेष ख्याति मिली है। परन्तु हिन्दी का प्रथम महाकाव्य होने के कारण इसकी गौरव-गरिमा और भी अधिक बढ़ जाती है।

प्रश्न ३—वीर-काव्य के तत्त्वों का उल्लेख कीजिए और महाकवि चन्दवरदाई की कविता की विशेषताएँ उदाहरण सहित बतलाइये।

उत्तर—वीरकाव्य की पृष्ठभूमि और तत्त्व

हर्षवर्धन की मृत्यु के पश्चात् कन्नौज, दिल्ली, अजमेर, अल्हलवाड़ा आदि हिन्दुत्व के गढ़ प्रतिष्ठित थे। परन्तु देश में एकसूत्रता का अभाव था और गहरवार, चौहान, चंदेल, परिहार, सोलंकी आदि राजपूत राजाओं की प्रतिद्वन्द्विता एवं परस्पर की ईर्ष्या बढ़ चली थी। इस राजनैतिक अव्यवस्था और राजनैतिक एकसूत्रता के अभाव में देश पर मुसलमानों के आक्रमण बड़े वेग से होने लगे थे। इस समय युद्ध करना ही क्षात्र-धर्म समझा जाता था। राजपूत राजाओं के परस्पर के युद्ध शक्ति को क्षीण कर रहे थे। व्यक्तिगत आनवान-शान के सामने देश और जातीय हित की चिन्ता नहीं रही थी। जरा-जरा-सी बात पर युद्ध होने लगते थे। विवाह-मंडप में ही तलवारें खिंच जाती थीं। यह थोथा शक्ति-प्रदर्शन भारतीय शक्ति को दुर्बल करता जा रहा था। कविगण अपने आश्रयदाताओं का गुण-गान करके उनको युद्ध के लिए उत्साहित करते रहते थे। सारे समाज में युद्धात्मक वातावरण था। दशा यह थी कि "जिहि की बिटिया सुन्दर देखी, तापर धाइ-धरे हथियार।" चारों ओर फैली हुई युद्ध की झंकार में ही वीरगाथा-काल में वीर-काव्यों की रचनाएँ हुईं।

वीर-गाथात्मक काव्यों की निम्नलिखित विशेषताओं और तत्त्वों का उल्लेख किया जा सकता है—

१—समस्त वीर गाथाएँ राज्याश्रय में रहने वाले चारण कवियों द्वारा लिखी गईं।

२—कवि गण स्वयं भी वीर होते थे। वे युद्ध के समय साथ रहते थे और अपनी ओजपूर्ण कविता के द्वारा अपने आश्रयदाता राजा और सेना को उत्साहित करते थे। वे आवश्यकता पड़ने पर तलवार भी ग्रहण करते थे। चन्दवरदाई सरस्वती और तलवार दोनों ही के धनी थे।

३—वीरगाथाएँ डिंगल भाषा में लिखी गईं।

४—वीर-गाथा काव्य में तत्कालीन समाज का प्रतिविम्व मिलता है। इसमें वीर रस की प्रधानता है और वीर रस के साथ में श्रृङ्गार रस की भी धारा प्रवाहित हुई है, क्योंकि उस समय युद्ध का कारण स्त्री ही थी। 'पृथ्वी राज रासो' में मोहम्मद गोरी और पृथ्वीराज के युद्ध का कारण चित्ररेखा नामक एक स्त्री को ही वतलाया गया है। चित्ररेखा एक पठान सरदार की पत्नी थी। गोरी उससे प्रेम करता था। चित्ररेखा के पति ने चित्ररेखा-सहित भागकर पृथ्वीराज की शरण ली थी, इसी कारण मोहम्मद गोरी ने आक्रमण किये। इस प्रकार वीरगाथा काव्यों में श्रृङ्गार रस वीर रस का अंग वनकर आया है।

५—वीर गाथात्मक काव्यों में वीर रस का प्राधान्य रहता था और सहायक रूप में श्रृङ्गार रस भी आता था। ये ग्रन्थ प्रायः ओज गुण प्रधान राजपूताना की डिंगल भाषा में लिखे जाते थे। इनमें 'खुमान रासो' जैसे मुक्तक काव्य और 'पृथ्वीराज रासो' जैसे विशाल महाकाव्य लिखे गये।

६—वीर गाथा काव्यों में 'पृथ्वीराज रासो' सर्वश्रेष्ठ काव्य और उसके रचयिता चन्दवरदाई सर्व प्रसिद्ध कवि हैं।

'पृथ्वीराज रासो' वीर गाथा काव्यों का प्रतिनिधि काव्य है। उसमें वीर-गाथा काव्यों के समस्त तत्त्व और विशेषताएँ मिलती हैं। 'पृथ्वीराज रासो' हमारे साहित्य का कीर्ति-स्तम्भ है। ६९ समयों में सोलह सहस्र से भी अधिक छन्दों में लिखा हुआ यह एक विशाल ग्रन्थ है। यद्यपि यह कहना कठिन है कि उसका कितना अंश चन्दवरदाई कृत है और कितना प्रक्षिप्त, तथापि जहाँ तक काव्य-कौशल का प्रश्न है, वह कवि की कुशल काव्य-कला का परिचायक है।

'पृथ्वीराज रासो' में महाकाव्य के समस्त शास्त्रीय लक्षणों का पालन हुआ है। प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन, विशाल दृश्यों और प्रसङ्गों की योजना, भावों

की उदात्तता, और रस-परिपाक आदि सभी कुछ चरमोत्कर्ष पर है। 'पृथ्वीराज रासो' के कथानक में, घटनाओं का पूर्वापर सम्बन्ध अवश्य शिथिल है, परन्तु सारी घटनाएँ पृथ्वीराज के व्यक्तित्व से सम्बन्धित हैं।

रस-योजना

चन्द ने 'पृथ्वीराज रासो' में रस-योजना का सफल निर्वाह किया है। प्रधान-रस वीर रस है। शृङ्गार-रस उसका अंग वनकर आया है। क्योंकि वीरता के वहुत से अवसर नायिकाओं के उद्धार और पृथ्वीराज से विवाह हो जाने से सम्बन्धित हैं। वीर-रस के सहायक रूप में वीभत्स रस का भी वर्णन हुआ है। वीर-रस के उद्दीपन के रूप में सेनाओं के प्रयाण, अस्त्र-शस्त्रों, घोड़े, हाथी आदि का विशद वर्ण हुआ है—

"षुरासान सुलतान पंधार मीरं।
वलष स्यो वलं तेग अच्चूक तीरं॥
रुहंगी फिरंगी हलंव्वी समानी।
ठटी ठट्ट बल्लोच ढालं निसानी॥
मजारी चषी मुष्ष जंवुक्क लारी।
हजारी-हजारी हुँकै जोध भारी॥"

निम्न उदाहरण में उद्दीपनों के साथ वीर-रस का स्थायी-भाव संचारी, भाव और अनुभाव से परिपुष्ट होकर निष्पन्न हो रहा है। राजा पृथ्वीराज, चौहान के डंके वजते ही अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित सूर-सामन्तों ने युद्ध आरम्भ कर दिया। पृथ्वीराज की तलवार विजली के समान चमकती हुई शत्रुओं पर पड़ रही थी। सूर्य आकाश में स्थिर होकर युद्ध को देखने लगा। पृथ्वी लाल रंग में डूव गई। युद्धोत्साह का यहाँ वड़ा ही सजीव वर्णन हुआ है—

"वज्जिय घोर निसाँन राँन चौहान चहौं दिस।
सकल सूर, सामन्त समरि वल जंत्र मंत्र तिस॥
उट्ठि राज प्रिथिराज वाग मनो लग्ग वीर नट।
कढ़त तेग मन वेग, लगत मनो वीजु भट्ट घट॥
थकि रहे सूर कौतिग गिगन, रगन मगन भइ श्रोन धर।
हृदि हरसि वीर जग्गे हुलसि, हुरेउ रंगि नव रत्त वर॥"

'पद्मावती समय' में युद्ध के वहुत ही गतिमय चित्र मिलते हैं—

"वाजी सुवंत्र, हय गय पलांन।
दौरे सुसज्जि, दिस्सह दिसांन।।
तुम्ह लेहु लेहु मुष जंपि जोध।
हन्नाह सूर सब पहरि क्रोध।।"

शृंगार-रस के अन्तर्गत नख-शिख, वय:संधि आदि के उद्दीपन स्वरूप वर्णन हुए हैं। चन्द ने निम्न उदाहरण में पद्मावती का नख-शिख वर्णन किया है। यह नख-शिख वर्णन केवल नख-शिख वर्णन मात्र के लिये ही नहीं है, अपितु कथा-प्रवाह में भी सहायक है। तोता पद्मावती से पृथ्वीराज के पौरुष और सौन्दर्य का वर्णन करता है, परन्तु स्वयं भी पद्मावती के ओष्ठों को विम्वा-फल समझकर उनकी ओर आकर्षित हो जाता है—

"मन अति भयो हुलास, विगसि जनु कोक किरन रवि।
अरुन अधर तिय सुघर, विम्वफल जानि कीर छवि।।
यह चाहत चष चकित, उह जु तक्किय झरप्पि झर।
चंच चहुट्टिय लोभ, लियौ तव गहित अप्प कर।।"

'विम्वफल जानि कीर छवि' में भ्रान्तिमान अलंकार भी आ गया है और कथा को आगे वढ़ाने वाले तोते से भी भेंट हो गई है। यहाँ पर नख-शिख वर्णन और अलंकार दोनों ही सार्थक हैं। एक उदाहरण और लीजिए। पद्मावती मानों चन्द्र और सूर्य की कला थी। वह पूर्ण सोलह कलाओं से निर्मित हुई थी। उसकी वाल वयस थी। उसका रूप पद्मिनी का सा है। वह काम की स्त्री रति के समान है—

"मनहू कला ससभानं कला सोलह सो वन्निय।
बाल वेस, ससि ता समीप अम्रित रस पिन्निय।।
विगसि, कमल-स्त्रिग भमर, वेनु, षंजन, मृग, लुट्टिय।
हीर, कीर अरु विम्व, मोति नष-सिष अहि घुट्टिय।।
छप्पति गयंद हरि हंस गति, विह वनाय संचै सचिय।
पदमिनिय रुप पदमावतिय, मनहु काम कामिनि रचिय।।

यहाँ प्रतीप, रूपकातिशयोक्ति, उत्प्रेक्षा और यमक अलंकारों की सुन्दर योजना है। पद्मावती जिस समय विरह के पश्चात् पृथ्वीराज से मिलती है,

हर्ष, व्रीड़ा, मोह, और उत्कंठा आदि भावों की कवि सुन्दर योजना करता है :—

"फिर देषि देषि प्रथिराज राज,
हँस मुद्ध-मुद्ध कर पट्ट लाज ।।"

'फिर देषि' में औत्सुक्य है। 'हँस' में है, 'मुद्ध-मुद्ध' में मोह (मुग्धा) और 'कर पट्ट लाज' में व्रीड़ा भाव है। चन्द की उत्प्रेक्षा वड़ी ही सजीव और अनूठी होती है।

भाषा

चन्द की भाषा में कई भाषाओं का मिश्रण है। उन्होंने स्वयं अपनी भाषा के सम्बन्ध में लिखा है:—

"षट भाषा कुरानं च पुरानं च कथितं मया।"

डाक्टर श्यामसुन्दर दास ने चन्द की भाषा के सम्बन्ध में लिखा है :—

"दूसरी भाषा एक सामान्य साहित्यिक भाषा थी, जिसका प्रयोग ऐसे विद्वान कवि करते थे, जो अपनी रचना को अधिक व्यापक वनाना चाहते थे। इसका ढाँचा पुरानी व्रजभाषा का होता था। जिसमें थोड़ा-वहुत खड़ी या पंजावी का भी मेल हो जाता था। इसे पिंगल भाषा कहने लगे थे। वास्तव में हिन्दी का सम्बन्ध इसी भाषा से है। 'पृथ्वीराज रासो' इसी साहित्यिक सामान्य भाषा में लिखा हुआ है, इस प्रकार की भाषा के वावू श्यामसुन्दर दास ने उदाहरण दिये हैं—

"तिहि रिपु जय पुर हरन को भये प्रथिराज नरिंद।"
× × ×
"वह गोरी पद्मावती गहि गोरी सुलतान।"

अधिकांश विद्वान 'रासो' की भाषा को पिंगल मानते हैं। 'पृथ्वीराज रासो' का मूल भाग चंद द्वारा अपभ्रंश के निकट की भाषा में लिखा गया था। उसमें प्रक्षिप्तांश वहुत मिल गया। उसमें कई स्तर की भाषा है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि चन्दवरदाई वीर गाथा काव्य के प्रतिनिधि कवि हैं। उनका 'पृथ्वीराज रासो' हिन्दी का विशाल ग्रन्थ और प्रथम महाकाव्य है। रस-परिपाक, वस्तु-वर्णन, विचारों की उदात्तता और वर्णनों की विशदता एवं सुन्दरता की दृष्टि से चन्द का काव्य-कौशल प्रशंसनीय है।

२

कथानक में ऐतिहासिकता और प्रामाणिकता

प्रश्न ४—पृथ्वीराज रासो की मूल कथा संक्षप में लिखिए।

उत्तर—संक्षिप्त परिचय

चन्दवरदाई का पृथ्वीराज रासो ढाई हजार पृष्ठों का एक विशाल ग्रन्थ है। वह हिन्दी का प्रथम महाकाव्य है। इसमें ६९ समय सर्ग या अध्याय हैं और कवित्त, छप्पय, दूहा, तोमर, त्रोटक, गाहा और आर्या प्रमुख छन्दों का प्रयोग है। ऐसा प्रसिद्ध है कि 'पृथ्वीराज रासो' के अन्तिम भाग को चन्दवरदाई के पुत्र जल्हण ने पूरा किया। शाहबुद्दीन गोरी पृथ्वीराज को कैद करके गजनी ले गया। कुछ दिनों बाद स्वामि-रक्षा के लिए चन्द भी गजनी को चल दिये। चलते समय अपूर्ण रासो की कृति अपने पुत्र जल्हण के हाथ में पूर्ण करने को छोड़ गये। इसका उल्लेख पृथ्वीराज रासो में निम्न प्रकार हुआ है—

"पुस्तक जल्हण हत्थ दै, चलि गज्जन नृप-काज।"
× × × ×
रघुनाथ चरित हनुमंत कृत, भूप भोज उद्धरिय जिमि।
पृथिराज सुजस कवि चन्द कृत, चंद नंद उद्धरिय तिमि।

'पृथ्वीराज रासो' में आबू के यज्ञकुंड से चार क्षत्रिय कुलों की उत्पत्ति तथा चौहानों के अजमेर में राज्य-स्थापना से लेकर पृथ्वीराज के मोहम्मद गोरी द्वारा पकड़े जाने तक की कथा का विस्तार से वर्णन हुआ है। इस कथा-विस्तार के वीच में रासोकार ने पृथ्वीराज द्वारा किये गये अनेक युद्धों और अन्य कथा-प्रसंगों

को रखा है। मुख्य कथा तथा प्रासंगिक कथाएँ पृथ्वीराज के जीवन से सम्बन्धित हैं। 'पृथ्वीरास रासो' की मूल कथा संक्षेप में निम्न प्रकार है।

पृथ्वीराज और जयचन्द

पृथ्वीराज शाकम्भरी के राजा अर्णोराज के पौत्र और सोमेश्वर के पुत्र थे। सोमेश्वर के समकालीन दिल्ली में तोमर राजा अनंगपाल और कान्यकुब्ज या कन्नौज के राजा विजयपाल कामध्वज थे। अनंगपाल की छोटी पुत्री कमला का विवाह सोमेश्वर से हुआ था, जिससे पृथ्वीराज ने जन्म लिया। अनंगपाल की सुन्दरी नाम की एक पुत्री और थी जिसका विवाह कन्नौज के राजा विजयपाल से हुआ था, इसी के पुत्र जयचन्द हुए।

पृथ्वीराज और जयचन्द में शत्रुता का प्रारम्भ

अनंगपाल के कोई सन्तान नहीं थी, अतः उन्होंने पृथ्वीराज को गोद ले लिया और दिल्ली का राज्य उन्हीं को सौंप दिया। इस प्रकार दिल्ली और अजमेर को मिलाकर एक विशाल राज्य की स्थापना हुई। इधर कन्नौज में विजयपाल की मृत्यु के पश्चात् जयचन्द शासक बन चुका था। उसे अपने नाना अनंगपाल का भेद-भाव अच्छा न लगा और वह पृथ्वीराज से ईर्ष्या करने लगा।

पृथ्वीराज और जयचन्द में शत्रुता की वृद्धि

पृथ्वीराज के उत्तरोत्तर राज्य-विकास और समृद्धि से जयचन्द जलने लगा। अब तक भारत की राजनीति का केन्द्र कन्नौज था, परन्तु अब वह महत्व दिल्ली प्राप्त करती जा रही थी। जयचन्द ने अपने महत्व को प्रदर्शित करने के लिए राजसूय-यज्ञ का अनुष्ठान किया। इसी अवसर पर उसने अपनी पुत्री संयोगिता के स्वयंवर का भी आयोजन किया। देश-देशान्तर के राजाओं के साथ पृथ्वीराज को भी निमन्त्रण भेजा गया। परन्तु पृथ्वीराज को अपमानित करने के लिए जयचन्द ने उनको द्वारपाल का काम सौंपा। पृथ्वीराज ने कन्नौज जाना अस्वीकार कर दिया। जयचन्द ने पृथ्वीराज की स्वर्ण-प्रतिमा द्वारपाल के स्थान पर रखवादी।

संयोगिता द्वारा पृथ्वीराज का वरण और पृथ्वीराज का जयचन्द से युद्ध

जयचन्द की पुत्री संयोगिता पहले से ही पृथ्वीराज पर अनुरक्त थी। उसने पृथ्वीराज की स्वर्ण-मूर्ति ही को वरमाला पहना दी। संयोगिता के इस व्यवहार

से जयचन्द को आन्तरिक वेदना हुई। उसने गंगा के किनारे एक महल में एकान्तवास का उसे दण्ड दिया। इस घटना का समाचार पाते ही पृथ्वीराज चन्दवरदाई सहित कन्नौज पहुँच गये। पृथ्वीराज के सामन्तों ने जयचन्द का राजसूय यज्ञ विध्वंस किया। पृथ्वीराज ने गंगा-स्थित महल में जाकर संयोगिता से गंधर्व विवाह किया और उसे अपने डेरे में ले आये। पृथ्वीराज ने कन्नौज से प्रस्थान करते समय चन्द को सूचना देने के लिए जयचन्द के दरवार में भेजा। जयचन्द की सभा में जाकर चन्द ने कहा कि दिल्लीस्वरी महारानी संयोगिता अपने पति के घर जा रही हैं। वे अपने पिता के आशीर्वाद की अभिलाषा करती हैं। यह सुनकर जयचन्द क्रोध में उवल पड़ता है और सेनापति को पृथ्वीराज तथा उसकी सेना को घेर लेने की आज्ञा देता है। भीषण युद्ध होता है। पृथ्वीराज के सैनिक युद्ध करते हुए दिल्ली की ओर वढ़ने लगते हैं। जयचन्द की विशाल सेना पृथ्वीराज और संयोगिता को पकड़ने में असफल रहती है। पृथ्वीराज संयोगिता-सहित सकुशल दिल्ली पहुँच जाते हैं। जयचन्द अन्त में विवश होकर संयोगिता का विवाह पृथ्वीराज से कर देते हैं।

पृथ्वीराज के शाहवुद्दीन से युद्ध और अन्तिम युद्ध में पराजय

संयोगिता के साथ भोग-विलास में पृथ्वीराज इतने डूब गये कि राज-काज शिथिल हो गया। राज्य की रक्षा की ओर भी उनका ध्यान न रहा। जयचन्द से युद्ध में कान्ह आदि वहुत से सेनापतियों के मारे जाने से पृथ्वीराज की सैनिक शक्ति अपेक्षाकृत कम हो गई थी। ऐसी स्थिति में गजनी के वादशाह शाहवुद्दीन गोरी ने दिल्ली पर आक्रमण कर दिया। इससे पहले वह पृथ्वीराज से ग्यारह वार पराजित हो चुका था। उसने अपनी पराजय का प्रतिशोध लेने के लिए यह अनुकूल अवसर समझा। रासो के अनुसार शाहवुद्दीन अपने एक पठान सरदार की प्रेमिका चित्ररेखा पर मुग्ध था। सरदार भागकर पृथ्वीराज की शरण में आ गया था। गोरी ने दोनों को लौटा देने की कई वार माँग की। परन्तु पृथ्वीराज ने गोरी की माँग अस्वीकार कर दी। इसी के परिणामस्वरूप उसने दिल्ली पर ग्यारह वार आक्रमण किये और अन्तिम आक्रमण में वह विजयी हुआ। शाहवुद्दीन पृथ्वीराज को कैद कर गजनी ले गया जहाँ उसकी आँखें निकालकर कैदखाने में डाल दिया गया। कुछ दिनों के पश्चात् चन्द भी अपनी अधूरी कृति अपने पुत्र जल्हण को सौंपकर गजनी पहुँच गये। उन्होंने

अपनी कविता से शाहबुद्दीन को प्रभावित किया और पृथ्वीराज से मिलने की स्वीकृति ले ली।

शब्द-वेधी वाण से गोरी का वध और साथ ही पृथ्वीराज और चन्द का अन्त

चन्द ने पृथ्वीराज से मिलकर उनको शब्द-वेधी वाण से शाह का वध करने को संकेत से प्रेरित किया। पृथ्वीराज द्वारा शब्द-वेधी-वाण मारने का कौशल दिखाने का आयोजन होता है। चन्द कविता में शाहबुद्दीन के वैठने की स्थिति का संकेत करते हैं और पृथ्वीराज वाण से शाहबुद्दीन का वध कर देते हैं। इसके पश्चात् दोनों परस्पर कटार मारकर अपना जीवन समाप्त करते हैं।

रासो में मुख्य कथा इतनी ही है। इसके अतिरिक्त कथानक के बीच में पृथ्वीराज के आखेट-वर्णन, युद्ध-वर्णन, विवाह-वर्णन और शौर्य-वर्णन के प्रसंगों से कथानक भरा हुआ है। यद्यपि कथा-प्रसंगों में पूर्वापर सम्वन्ध का अभाव है परन्तु सभी प्रसंग और घटनाएं मुख्य कथा से सम्वन्धित हैं।

प्रश्न ५—'पृथ्वीराज रासो' के कथानक की ऐतिहासिकता पर विचार कीजिए।

अथवा

प्रश्न ६—'पृथ्वीराज रासो' पूर्ण रूप से ऐतिहासिक रचना नहीं है। उसमें अनेक उल्लेख और विस्तार कल्पना-प्रसूत हैं और इतिहास-पुष्ट नहीं हैं''—इस कथन की तर्क पूर्ण व्याख्या करते हुए पृथ्वीराज रासो की ऐतिहासिकता पर अपना मत दीजिए।''

स्मृति-संकेत

१. किसी कृति की ऐतिहासिकता की कसौटी उसमें वर्णित घटनाएँ और उनसे सम्वन्धित व्यक्ति होते हैं।

२. पृथ्वीराज रासो के कथानक में ऐतिहासिकता और कल्पना-तत्त्व का निर्णय करने के लिए निम्नलिखित घटनाओं और उनसे सम्वन्धित व्यक्तियों को चुना जा सकता है—

(क) पृथ्वीराज और उनसे सम्वन्धित घटनाएँ।

(ख) शाहबुद्दीन और उसका वृत्त।

(ग) जयचन्द और उससे सम्बन्धित घटनाएँ।

(घ) कयमांस का वृत्त ।
(ङ) गोविन्दराज का वृत्त ।
(च) डाहल का कर्ण और उसका प्रसंग ।
(छ) भीम चालुक्य का वृत्त ।
(ज) सलष चौर जैत पँवार का प्रसंग ।
(झ) पृथ्वीराज और जयचन्द पक्ष के सामन्त एवं योद्धा ।

३. रासो सम्पूर्ण रूप से ऐतिहासिक रचना नहीं है। उसके वहुत से प्रसंग कल्पना-प्रसूत हैं ।

उत्तर—पृथ्वीराज रासो हिन्दी का पहला विशाल ग्रन्थ और महाकाव्य है। इसमें इतिहास प्रसिद्ध हिन्दू-सम्राट पृथ्वीराज के युद्धों, विवाहों, उनसे सम्वन्धित घटनाओं और शाहवुद्दीन गोरी से युद्धों का वर्णन वड़ी व्यापकता से हुआ है। एक प्राचीन ग्रन्थ होने के कारण इसके संस्करणों में प्रक्षिप्त अंश वहुत कुछ आ गया है। अतः यह निर्णय करना सरल नहीं है कि इसका कितना भाग ऐतिहासिक, कितना कल्पना-प्रसूत और कितना प्रक्षिप्त है। कथानक में आये हुए व्यक्तियों और घटना-प्रसंगों का विश्लेषण करते हुए हम परिणाम पर पहुँचने का प्रयास करेंगे। इस विश्लेपण के लिए निम्नलिखित घटनाओं और उनसे सम्वन्धित व्यक्तियों का चयन करना आवश्यक है :—

(१) पृथ्वीराज का वृत्त। (२) शाहवुद्दीन गोरी का वृत्त। (३) जयचन्द का वृत्त। (४) कयमास का वृत्त। (५) गोविन्दराज का वृत्त। (६) डाहल के कर्ण का प्रसंग। (७) भीम-चालुक्य का प्रसंग। (८) सलष और जैत पमार का प्रसंग और (९) पृथ्वीराज और जयचन्द-पक्ष के योद्धाओं के नाम।

पृथ्वीराज का वृत्त

रासो के अनुसार पृथ्वीराज का शैशव अजमेर में व्यतीत हुआ था। वह वहिला-वन का निवासी था। पृथ्वीराज के पिता का नाम सोमेश्वर था। वहिला-वन के सम्वन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। कहा जाता है कि पृथ्वीराज ने शाहवुद्दीन गोरी और वलख के शासक को पराजित किया। वलख के शासक को हराने की वात इतिहास पुष्ट नहीं है।

'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार पृथ्वीराज ने मरुधरा को विजय किया,

मंडोवर को नष्ट किया, मरुमंड के राजा को दण्ड दिया, रनथंभौर को आग की लपटों में जलाकर भस्म कर दिया, कालिंजर को जल में डूवो दिया। पृथ्वीराज अपने युग के एक पराक्रमी राजा थे। उन्होंने भीम पट्टी से पंगुर और यादवराज से रनथंभौर की रक्षा की। उन्होंने अनेकों युद्ध किये। कालिंजर के चन्देल शासक परमर्दि पर उन्होंने विजय प्राप्त की। उनकी यह विजय-गाथा मदनपुर के सं० १२३९ के शिलालेख में अंकित है। पृथ्वीराज की जिन विजयों का ऊपर उल्लेख किया गया है, उन जैसे वीर के लिए असम्भव नहीं है। यह भी हो सकता है कि इनमें से कुछ को काव्य में सूचीवद्ध के लिये रख दिया गया हो।

शाहबुद्दीन गोरी

पृथ्वीराज और शाहवुद्दीन के वीच हुए युद्ध इतिहास पुष्ट हैं। एक स्थान पर शाहवुद्दीन कहता है—

"जिह हउं गहि छंडियउ वार सत हउं अप्पउ कर"

इस कथन के दो अर्थ लिये जा सकते हैं। पहला अर्थ यह है कि—"जिसने मुझे सात बार पकड़ा और छोड़ा" और जिसे मैंने कर अर्पित किया। दूसरा अर्थ यह हो सकता है कि "जिसने मुझे पकड़कर छोड़ा और जिसे मैंने सात वार कर अर्पित किया।"

मुसलमान इतिहासकारों ने पृथ्वीराज और शाहवुद्दीन गोरी के वीच दो ही युद्ध होने का उल्लेख किया है। प्रथम युद्ध में शाहवुद्दीन पराजित हुआ था और दूसरे में पृथ्वीराज पराजित हुआ और मारा गया। रासो में युद्ध-स्थल के नाम 'सरवर' और 'विश्वासर' दिये गये हैं। मुसलमान इतिहासकारों ने स्थान का नाम 'तवर हिन्द' या 'सरहिन्द' दिया है। सरवर (सरहिन्द) के युद्ध के अतिरिक्त अन्तिम युद्ध से पूर्व के युद्धों का कोई वर्णन 'रासो' में नहीं मिलता है, और न तत्कालीन इतिहास में ही इनका कोई उल्लेख आया है। अतः अन्य युद्ध काल्पनिक ही प्रतीत होते हैं। अन्तिम युद्ध में पृथ्वीराज पराजित हुए। शाहवुद्दीन उनको वन्दी बनाकर गजनी ले गया। वहाँ उसने पृथ्वीराज की आँखें निकलवा कर उनको कैद में डाल दिया। चन्द भी गजनी चले गये। उन्होंने शाह को पृथ्वीराज के शब्द-वेधी वाण का कौशल देखने को तैयार कर लिया। शाह के मुख से फरमान निकलते ही पृथ्वीराज के वाण ने उसका वध कर दिया। तदनन्तर पृथ्वीराज का भी मरण हुआ। तत्कालीन मुसलमान इतिहासकारों के अनुसार

पृथ्वीराज और शाहवुद्दीन के दो ही युद्ध हुए। प्रथम युद्ध (सन् ११९१ ई०) में शाहवुद्दीन पराजित हुआ। दूसरा युद्ध सन् ११९२ ई० में हुआ, इसमें पृथ्वीराज पराजित हुए और मारे गये। रासो में युद्ध-स्थलों का नाम 'सरवर' और विश्वासर दिया है, जबकि मुसलमान इतिहासकारों ने 'सरवर' या 'सरहिन्द' माना है। मुसलमान इतिहासकार मिनहाजुस्सिराज तथा हसन निजामी के अनुसार पृथ्वीराज अजमेर के शासक थे। दिल्ली का शासक गोविन्दराव या खांडेराव था, जो पृथ्वीराज की ओर से शाहवुद्दीन से दोनों युद्धों में लड़ा था। हसन निजामी के अनुसार शाहवुद्दीन ने दूसरे आक्रमण के पूर्व अजमेर एक दूत भेजा था और इस्लाम तथा उसकी आधीनता स्वीकार करने का प्रस्ताव भेजा था। परन्तु पृथ्वीराज ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया था। इसी के परिणामस्वरूप शाहवुद्दीन ने आक्रमण कर दिया। पृथ्वीराज की पराजय हुई। पृथ्वीराज भागता हुआ सरस्वती नदी के निकट पकड़ा गया और मार डाला गया। इस ऐतिहासिक साक्ष्य को सामने रखने से रासो के इस सम्बन्ध में उल्लेख काल्पनिक ठहरते हैं।

पृथ्वीराज और जयचन्द का संघर्ष

'पृथ्वीराज रासो' के २ और ४ से ८ तक के सर्ग पृथ्वीराज तथा जयचन्द के संघर्ष के हैं। यह संघर्ष जयचन्द के राजसूय यज्ञ और संयोगिता के स्वयंवर के कारण हुआ। एक स्थान पर उल्लेख आया है कि जयचन्द ने म्लेक्षों को सिन्धु पार भगा दिया। हिमालय के राज्यों को नष्ट किया और आठ सुल्तानों को वश में किया। उसने तिरहुत में थाना स्थापित किया। वह दक्षिण में सेतुवन्ध तक गया। डाहल के कर्ण को उसने दो बार बन्दी वनाया। सोलंकी सिद्धराज को उसने खदेड़ा। साथ ही तिल्लिग, गोवाल कुण्ड, गुण्डके जीरा, वैरागर को हराया तथा लंका जाकर विभीषण से भिड़ गया। उसने खुरासान के अमीर और गजनी के शाहनशाह के सेवक निसुरत खाँ को वन्दी वनाया। रासो में जयचन्द को विजयपाल का पुत्र कहा गया है, जबकि इतिहास में विजयचन्द का पुत्र माना गया है। जयचन्द और पृथ्वीराज की समकालीनता इतिहास पुष्ट है। सं० १२२४ के कमौली के दानपत्र से स्पष्ट है कि जयचन्द अपने पिता विजयचन्द के साथ दिग्विजय के लिए गया था। उपरोक्त जिन समस्त राजाओं को जयचन्द द्वारा पराजित करने का उल्लेख रासो में है, वह

इतिहास में नहीं मिलता। लंका में जाकर विभीषण से जा भिड़ना सर्वथा कवि-कल्पना है। इसी प्रकार बहुत से नाम कवि-वर्णन-प्रथा के अनुसार काल्पनिक ही हैं।

पृथ्वीराज-जयचन्द-संघर्ष तथा पृथ्वीराज--संयोगिता-विवाह के सम्बन्ध में इतिहास मौन है। गौरीशंकर हीराचन्द 'ओझा' का कथन है कि जयचन्द के जो दानपत्र मिलते हैं, उनमें से किसी में भी राजसूय-यज्ञ का उल्लेख नहीं है। जयचन्द सूरि ने सं० १४६० में 'हम्मीर महाकाव्य' और 'रम्भा-मंजरी' नाटिका की रचना की। हम्मीर महाकाव्य में पृथ्वीराज-शाहवुद्दीन के संघर्ष का विस्तार हुआ है। 'रम्भा-मंजरी' के नायक जयचन्द हैं। परन्तु इन ग्रन्थों में जयचन्द के 'राजसूय यज्ञ' और संयोगिता स्वयंवर का कोई उल्लेख नहीं है। इस आधार पर संयोगिता-स्वयंवर और जयचन्द के राजसूय-यज्ञ की घटना को अनैतिहासिक माना जा सकता है। परन्तु ओझा जी के द्वारा 'हम्मीर महाकाव्य' और 'रम्भा मंजरी' को आधार वनाई हुई कसौटी से ही हम उक्त घटनाओं को अनैतिहासिक कहने का साहस नहीं कर सकते। ओझा जी ने जिन दोनों ग्रन्थों को आधार बनाया, वे ऐतिहासिक दृष्टि से न लिखे जाकर काव्य दृष्टि से लिखे गये हैं। 'हम्मीर महाकाव्य' स्वयं इतिहास की कसौटी पर खरा नहीं उतरता। इसमें पृथ्वीराज और परमर्दि देव के युद्ध का भी उल्लेख नहीं है। यह युद्ध इस युग की बहुत बड़ी ऐतिहासिक घटना थी। इसका विवरण वि० सं० १२३९ के मदनपुर के शिलालेख में है। इसी प्रकार 'रम्भा-मंजरी' में जयचन्द को मल्लदेव का पुत्र माना गया है। परन्तु विजयचन्द जयचन्द का पिता इतिहास प्रसिद्ध है। अतः उक्त दोनों काव्यों के आधार पर जयचन्द के सम्बन्ध में कोई निश्चित परिणाम नहीं निकाले जा सकते। डा० दशरथ शर्मा ने पृथ्वीराज और जयचन्द की लड़की के विवाह को ऐतिहासिक घटना वतलाया है।

कयमास का वृत्त

'पृथ्वीराज रासो' के सम्पूर्ण तीसरे 'समय' में कयमास का वृत्त है। कहा जाता है कि कयमास पृथ्वीराज का प्रधान अमात्य था। वह पृथ्वीराज की एक करनाटी दासी पर अनुरक्त था। एक दिन पृथ्वीराज की अनुपस्थिति में कयमास दासी के कक्ष में चला गया। पृथ्वीराज ने यह सूचना पाकर कयमास और दासी दोनों ही का वध कर दिया। 'पृथ्वीराज विजय' में मन्त्री कदम्बास का उल्लेख

है। कहा जाता है कि इसी के संरक्षण में पृथ्वीराज बालक से युवा हुआ। इसके आगे का वृत्त 'पृथ्वीराज विजय' से प्राप्त नहीं होता, क्योंकि उसकी खण्डित प्रति ही प्राप्त है। **'पुरातन-प्रबन्ध संग्रह के पृथ्वीराज प्रबन्ध'** में पृथ्वीराज के प्रधान अमात्य के रूप में कयमास का उल्लेख है, परन्तु उसके निष्कासन का कारण भिन्न बतलाया गया है। वह शाहबुद्दीन से मिल गया और पृथ्वीराज की पराजय का कारण बना। कुछ भी हो कयमास का पृथ्वीराज का अमात्य होना ऐतिहासिक सत्य है। पृथ्वीराज द्वारा उसके वध की घटना की पुष्टि इतिहास से नहीं होती।

गोविन्दराज का वृत्त

गोविन्दराज पृथ्वीराज के मुख्य सामन्तों में से एक था। इसकी प्रामाणिकता इतिहास-पुष्ट है। 'रासो' के अनुसार पृथ्वीराज के साथ वह जयचन्द के यहाँ राजसूय यज्ञ के अवसर पर गया था। वह जयचन्द और पृथ्वीराज के संघर्ष में मारा गया। मिनहाजुस्सिराज की 'तवकाते-ए-नासिरी' के अनुसार गोविन्दराय दिल्ली का था और वह शाहबुद्दीन-पृथ्वीराज-संघर्ष में मारा गया।

कर्ण-वृत्त

डाहल के कर्ण के सम्बन्ध में कहा गया है कि वह जयचन्द द्वारा दो बार बन्दी बनाया गया :—

"करण डाहल्ल दू बार बांध्यउ।"

डाहल के शासक लक्ष्मीकरण का समय सं० १०९७-११२७ के बीच में पड़ता है। अतः वह जयचन्द के समकालीन नहीं ठहरता। लक्ष्मीकरण के उत्तराधिकारियों के नाम के साथ भी कर्ण की उपाधि मिलती है। अतः वहाँ डाहल के कर्ण से रासोकार का आशय जयचन्द के समकालीन कलचुरि शासक से है। जयचन्द के समकालीन कलचुरि शासक जयसिंह तथा विजय-सिंह थे।

भीम चालुक्य का वृत्त

गुर्जर-नरेश भीम चालुक्य पृथ्वीराज का समकालीन था। रासो में कहा गया है कि पृथ्वीराज ने युद्ध करके भीम की शक्ति को नष्ट किया। कयमास भीम को बन्दी बनाने गया। भीम से पृथ्वीराज ने जालौर की रक्षा की थी। भीम और पृथ्वीराज की समकालीनता प्रमाणित है। जालौर की रक्षा के लिए दोनों का युद्ध ऐतिहासिक घटना है।

सलष और जैत पमार

'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार सलष आबू-नरेश था। यह जयचन्द-पृथ्वीराज युद्ध में पृथ्वीराज की ओर से युद्ध करता हुआ मारा गया। जैत पमार सलष का पुत्र था, जो पिता के मारे जाने पर आबू-नरेश बना। पृथ्वीराज-शाहबुद्दीन के अन्तिम युद्ध में जैत पृथ्वीराज की ओर से युद्ध करता हुआ मारा गया।

उपर्युक्त घटनाओं और व्यक्तियों के अतिरिक्त पृथ्वीराज रासो में पृथ्वीराज और जयचन्द पक्ष के अनेक योद्धाओं का उल्लेख आया है। जैसे कान्ह, नागोर-निवासी नरसिंह दाहिमा, चन्द-पुण्डीर, सारंग सोलंकी, पाल्हनदेव, कूरंभ अच्छ परमार, जाल्ह, वलीराम यादव, कनक बड़ गूजर, अल्हन, लषन बघेल आदि। इसी प्रकार शाहबुद्दीन-पृथ्वीराज संघर्ष में शाहबुद्दीन के तीन योद्धाओं—खुरासान खाँ, तातर खाँ तथा रुस्तम खाँ के नाम आये हैं। इन नामों के विषय में ऐतिहासिक साक्ष्य नहीं मिलता। यह सारी नामावली कवि-कल्पना-प्रसूत ही लगती है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'पृथ्वीराज रासो' सम्पूर्ण रूप से ऐतिहासिक ग्रन्थ नहीं है। उसके अनेक प्रसङ्ग, घटनाएँ और व्यक्ति कवि-कल्पना प्रसूत हैं। परन्तु इससे 'पृथ्वीराज रासो' का ऐतिहासिक महत्व उपेक्षित नहीं किया जा सकता। यथार्थ में वह इतिहास न होकर काव्य-ग्रन्थ है। रासोकार ने अपनी स्वतन्त्र कल्पना का उपयोग करके कथानक का ऐतिहासिक ढाँचा खड़ा किया है। उसमें हिन्दू-सूत्रों से प्राप्त पर्याप्त सामग्री का प्रयोग किया है।

प्रश्न ७—'पृथ्वीराज रासो' की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में विद्वानों के जो मत हैं, उनका समन्वय कीजिए।

अथवा

प्रश्न ८—विभिन्न मतों का क्रमिक उल्लेख करते हुए पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता पर अपना मन्तव्य प्रकट कीजिए।

अथवा

प्रश्न ९—'पृथ्वीराज रासो' की प्रामाणिकता तथा अप्रामाणिकता के सम्बन्ध में अब तक जो ऊहापोह हुई है, उसकी मीमांसा करते हुए अपना निश्चित मत दीजिए।

अथवा

प्रश्न १०—"रासो में कुछ भी ऐसा नहीं है जो उसे चन्द की रचना अथवा प्राचीनकाल की रचना सिद्ध कर सके।"—इस कथन पर अपने विचार लिखिए।

स्मृति-संकेत

१. 'पृथ्वीराज रासो' की प्रामाणिकता के पक्ष और विपक्ष में बहुत अधिक विवाद चला, जो आज भी उसी स्थिति में है।

२. रासो को अप्रामाणिक सिद्ध करने वाले निम्नलिखित विद्वान् हैं:—कविराजा श्यामलदास, मुरारिदान, डा० बूलर, मुंशी देवी प्रसाद, डा० गौरीशङ्कर-हीराचन्द ओझा, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, अमृतशील, डा० रामकुमार वर्मा और पं० मोतीलाल मेनारिया उल्लेखनीय हैं।

३. इन विद्वानों ने रचना-काल, घटनाओं और भाषा के आधार पर पृथ्वीराज रासो को अप्रामाणिक बतलाया है।

४. पृथ्वीराज रासो को प्रामाणिक मानने वाले निम्नलिखित विद्वान हैं:—कर्नल टॉड, गार्सां-द-तासी, जान वीम्स, एफ० एस० ग्राउज, रुडोल्फ हार्नली, मोहनलाल विष्णुलाल पाण्ड्या, डा० श्यामसुन्दरदास, मिश्रबन्धु, ग्रियर्सन, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, पं० मथुराप्रसाद दीक्षित, डा० दशरथ शर्मा, मुनि जिन विजय, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, अगरचन्द नाहटा, कविराज मोहनसिंह तथा डा० विपिनबिहारी त्रिवेदी उल्लेखनीय हैं।

५. पक्ष और विपक्ष के मतों का विश्लेषण करने पर यद्यपि निश्चयात्मक परिणाम कुछ नहीं निकलता, परन्तु इतना स्पष्ट हो जाता है कि पृथ्वीराज रासो एकदम काल्पनिक और 'भट्ट भणंत' नहीं है। उसका वर्तमान रूप बहुत कुछ प्रक्षिप्त एवं अपने मूल रूप से परिवर्द्धित है।

उत्तर—भारत के अन्तिम हिन्दू-सम्राट पृथ्वीराज चौहान की यश-गाथा के रूप में 'पृथ्वीराज रासो' हमारे साहित्य का प्रथम महाकाव्य और कीर्ति-स्तम्भ है। इसकी प्रामाणिकता के विषय में विद्वानों में जितना अधिक विवाद रहा और है, उतना किसी अन्य ग्रंथ के सम्बन्ध में नहीं। इतिहास के अनेक विद्वान्

इसको जाली और 'भट्ट भणंत' कहते हैं। विद्वानों का दूसरा वर्ग इसे प्रामाणिक ग्रन्थ मानता है। विसेन्ट स्मिथ ने 'पृथ्वीराज रासो' को निरर्थक घोषित करते हुए लिखा—"आज 'रासो' जिस रूप में प्राप्त है, इतिहास की दृष्टि से भ्रान्ति-पूर्ण और महत्वहीन है।" परन्तु कर्नल टॉड ने अपने ग्रन्थ 'एनल्स एण्ड एंटिक्वि-टीज ऑव राजस्थान' में 'पृथ्वीराज रासो' को इतिहास का प्रामाणिक ग्रन्थ मानते हुए उसकी प्रशंसा की—"चन्द की कृति अपने समय का विश्व-इतिहास है। पृथ्वीराज के अद्‌भुत कार्यों से सम्बन्धित इन उनहत्तर अध्यायों और एक लाख छन्दों में राजस्थान के प्रत्येक प्रतिष्ठित वंश के पूर्वजों का कुछ न कुछ विवरण मिल जाता है।" ग्राउज, वीम्स, हार्नली और गार्सां-द-तासी आदि विद्वानों ने रासो को प्रामाणिक ग्रन्थ स्वीकार किया है। गार्सां-द-तासी ने लिखा है—

"......इस काव्य में एक हिन्दू राजा का भारत पर मुसलमान आक्रमण-कारियों के विरुद्ध जवरदस्त संघर्ष का उल्लेख है। इसमें तत्सम्वन्धी और पृथ्वीराज के समकालीन विभिन्न उत्तर भारतीय नितान्त अज्ञात नरेशों के सम्वन्ध में भी विस्तृत वर्णन दिये गये हैं। संक्षेप में वारहवीं शताव्दी के भारतवर्ष का यह पूर्ण चित्र है।......यद्यपि चन्द की कविता हिन्दुई या पुरानी हिन्दी में लिखी गई थी, तो भी उसमें मिल गये कुछ फारसी और अरवी शब्द मिलते हैं।"

इस प्रकार रासो की प्रामाणिकता के पक्ष और विपक्ष में दो दल वन गये हैं।

रासो को अप्रामाणिक मानने वाला पक्ष

रासो को निम्नलिखित विद्वान अप्रामाणिक मानते हैं :—

कविराजा श्यामलदास, मुरारिदान, डा० वूलर, मुंशी देवीप्रसाद, डा० गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा, आचार्य रामचन्द शुक्ल, अमृतशील, डा० रामकुमार वर्मा, पं० मोतीलाल मेनारिया।

श्यामलदास तथा मुरारिदान द्वारा प्रामाणिकता का खण्डन

'एशियाटिक सोसाइटी' के देख-रेख में ग्राउज, वीम्स, हार्नली आदि विद्वान् पृथ्वीराज के सुसम्पादन में लगे हुए थे। इसी समय उदयपुर के कविराजा श्यामलदास और जोधपुर के मुरारिदान ने 'एशियाटिक सोसाइटी' के जर्नल में एक लेख प्रकाशित कराया, जिसमें घटनाओं, सम्वतों, भापा आदि के आधार

पर पृथ्वीराज रासो की सफलता का खण्डन किया। कविराजा श्यामलदास ने अपने निम्नलिखित निष्कर्ष घोषित किये :—

१—पृथ्वीराज रासो चन्द लिखित प्रामाणिक ग्रन्थ नहीं, इसकी रचना चन्द के कई शताब्दी पश्चात् हुई।

२—कोटारिया अथवा वेदला के चौहानों के किसी भाट ने चन्द के नाम से रचना की। पृथ्वीराज रासो की रचना पृथ्वीराज के समय के चन्दवरदाई के द्वारा नहीं हुई।

३—रासो में दिये हुए सम्वत् और तिथियाँ अशुद्ध हैं।

४—इसमें १० प्रतिशत के लगभग फारसी के शब्दों का व्यवहार हुआ है।

५—रासो का निर्माण वि० सं० १६४०–१६७० के बीच हुआ।

६—परन्तु वाक्य-विन्यास और भाषा-शैली से स्पष्ट है कि इसकी रचना राजपूताना में अवश्य हुई।

कविराजा श्यामलदास की इस घोषणा ने 'एशियाटिक सोसाइटी' में 'रासो' का सम्पादन करने वाले तथा अन्य विद्वानों को चौंका दिया और 'रासो' की प्रामाणिकता और अप्रामाणिकता सिद्ध करने वाले के दो पक्ष बन गये।

डा० बूलर

डा० बूलर ने 'पृथ्वीराज विजय' को प्रामाणिक ग्रन्थ माना और उसके आधार पर पृथ्वीराज रासो की अप्रामाणिकता की घोषणा की। कविराजा श्यामलदास पहले ही रासो की प्रामाणिकता पर सन्देह व्यक्त कर चुके थे। इस शङ्का को डा० बूलर की घोषणा ने पुष्ट कर दिया। संस्कृत-ग्रन्थों के खोज के प्रयास में डा० बूलर को काश्मीर में जयानक लिखित 'पृथ्वीराज विजय' नामक खण्डित कृति प्राप्त हुई। यह भोजपत्र पर लिखी हुई थी। डा० बूलर के शिष्य हर्बर्ट मोरिसन ने इसका गम्भीर अध्ययन किया। डाक्टर बूलर ने एशियाटिक सोसाइटी को एक पत्र लिखा। यह पत्र 'एशियाटिक सोसाइटी' की प्रोसीडिंग्ज संख्या ४ तथा ५ में सन् १८९३ में प्रकाशित हुआ था, जो संक्षेप में निम्न प्रकार है—

"मेरे एक शिष्य और जेम्स मोरिसन ने 'पृथ्वीराज विजय' नामक संस्कृत ग्रन्थ का अध्ययन कर लिया है, जो मुझे १८७५ में काश्मीर में प्राप्त हुआ था, तथा उन्होंने सन् १४५०-६५ ई० में लिखित जोनराज की टीका भी पढ़ ली

हैं। 'पृथ्वीराज विजय' का कर्त्ता निस्सन्देह पृथ्वीराज का समकालीन और उसका राजकवि था।……इसका लिखा हुआ चौहानों का वृतान्त चन्द के लिखे हुए विवरण के विरुद्ध है और वि० सं० १०३० तथा वि० सं० १२२६ के शिला लेखों से मिल जाता है। 'पृथ्वीराज विजय' महाकाव्य में पृथ्वीराज की जो वंशावली दी हुई है, वही उक्त शिलालेखों में भी मिलती है।…… इस पुस्तक में पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर के सम्बन्ध में लिखा है—उसका नाम अर्णोराज और उसकी माता गुजरात के सुप्रसिद्ध राजा जयसिंह की पुत्री कांचनादेवी थी। अर्णोराज की पहली रानी सुधवा से, जो मारवाड़ की राज-कन्या थी, दो पुत्र उत्पन्न हुए, उनमें से वड़े का नाम किसी ग्रन्थ या शिलालेख में नहीं मिलता और छोटे का नाम विग्रहराज (वीसलदेव) था।…सोमेश्वर ने चेदि (जवलपुर जिला) की राजधानी त्रिपुर में जाकर चेदिराज की कन्या कर्पूरदेवी से विवाह किया, जिससे उक्त काव्य के चरित्र नायक पृथ्वीराज और हरिराज उत्पन्न हुए। अजमेर की गद्दी पर वैठने के थोड़े ही समय पीछे सोमेश्वर का देहान्त हो गया और अपने पुत्र पृथ्वीराज की नावालिगी में अपने मन्त्री कादम्बवास की सहायता से कर्पूरदेवी राजकाज चलाने लगी।"

× × ×

"उक्त काव्य में कहीं इस वात का नाम निशान तक नहीं है कि पृथ्वीराज दिल्ली के राजा अनङ्गपाल की कन्या से उत्पन्न हुआ था और उसे अनङ्गपाल ने गोद लिया था। यह आश्चर्य की वात है कि पुराने मुसलमान इतिहास लेखकों ने भी यह नहीं लिखा कि पृथ्वीराज दिल्ली में राज्य करता था। वे उसे अजमेर का राजा वतलाते हैं। उनका कहना है कि राजद्रोह के कारण विजेताओं (मुसलमानों) के हाथ से, जिन्होंने उसे राज्य में कुछ अधिकार दे रखे थे, अजमेर में मारा गया।"

× × ×

"मुझे इस काल के इतिहास संशोधन की वड़ी आवश्यकता जान पड़ती है और मैं समझता हूँ कि चन्द के रासो का प्रकाशन वन्द कर दिया जाय तो अच्छा होगा। यह ग्रन्थ जाली है, जैसा कि जोधपुर के मुरारिदान और उदयपुर के श्यामलदास ने वहुत पहले प्रकट किया है।"

डा० वूलर के इस पत्र ने खलवली उत्पन्न कर दी। 'एशियाटिक सोसाइटी' ने पृथ्वीराज रासो का प्रकाशन का काम वन्द करवा दिया। परन्तु मोहनलाल

विष्णुलाल पांड्या तथा डा० श्यामसुन्दरदास ने 'पृथ्वीराज रासो' के सम्पादन का कार्य अपने हाथों में लिया। इसका प्रकाशन 'नागरी प्रचारिणी सभा काशी' से १६२१ में हुआ। यहाँ से प्रकाशित होकर यह ग्रन्थ विद्वानों के समक्ष आया। उन्होंने अपने-अपने तर्क इसकी प्रामाणिकता और अप्रामाणिकता के सम्बन्ध में प्रकट करने प्रारम्भ किये।

मुंशी देवीप्रसाद

मुंशी देवीप्रसाद ने जयानक के 'पृथ्वीराज विजय' को कसौटी मानते हुए रासो की अप्रामाणिकता घोषित की। उन्होंने इसे पृथ्वीराज के बहुत बाद में किसी अन्य कवि के द्वारा चन्द के नाम पर लिखा हुआ जाली ग्रन्थ कहा और इतिहास विरुद्ध कल्पित घटनाओं से युक्त कहा। उनके निष्कर्ष निम्नलिखित हैं—

१. रासो में जिन राजाओं का उल्लेख है, उनमें से कई बहुत पहले हुए।

२. इसी प्रकार रासो में सं० १२०० से १३०० के बीच होने वाले राजाओं और घटने वाली घटनाओं का सं० ११०० से १२०० के बीच होना लिखा है।

३. कुछ राजाओं के कल्पित और असत्य नाम मिलते हैं। आबू के जैत और सलष ऐसे ही राजाओं के नाम हैं।

४. पृथ्वीराज द्वारा कुछ राजाओं के वध की बात भी कपोल-कल्पित है। रासो में लिखा है कि पृथ्वीराज के हाथ से गुजरात के राजा भीमदेव तथा शाहबुद्दीन की मृत्यु हुई, जो कपोल-कल्पित है।

५. 'पृथ्वीराज रासो' में पृथ्वीराज के लगभग १०० वर्ष पीछे होने वाले राजाओं को भी उनका सम्बन्धी तथा समकालीन बताया गया है। इसमें पृथ्वीराज की बहन पृथाकुमारी का विवाह मेवाड़ के रावल समरसिंह के साथ होना लिखा है, जो ठीक नहीं है।

डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने 'पृथ्वीराज रासो' को पूर्णरूप से अनैतिहासिक और जाली ग्रन्थ घोषित किया—

ओझा जी ने 'पृथ्वीराज रासो' को पूर्ण रूप से अनैतिहासिक ग्रन्थ सिद्ध किया। उनके निष्कर्ष निम्नलिखित हैं—

१. अग्निवंशीय क्षत्रियों का रासो में उल्लेख

१६ वीं शताब्दी से पहले के शिला-लेखों और पुस्तकों में अग्निवंश या वशिष्ठ के यज्ञ के सम्बन्ध में कोई बात नहीं मिलती। 'पृथ्वीराज रासो' में परमार, प्रतिहार, चालुक्य तथा चौहान वंशों की उत्पत्ति का वर्णन आबू के यज्ञकुंड से माना गया है। ग्वालियर से प्राप्त वि० सं० ९०० के आस-पास प्रतिहार राजा भोजदेव की एक प्रशस्ति के आधार पर प्रतिहार सूर्यवंशी अथवा रघुवंशी माने जाते हैं, अग्निवंशी नहीं। इसी प्रकार चालुक्य राजा विक्रमादित्य के वि० सं० १०७५ के दानपत्र, सोलंकी राजा कुलोत्तुंग चोड़देव द्वितीय के सामन्त बुद्धराज के वि० सं० १२२८ के दानपत्र तथा जैनाचार्य हेमचन्द्र के 'द्वयाश्रय' महाकाव्य के अनुसार चालुक्य चन्द्रवंशी था। जयानक के 'पृथ्वीराज विजय' तथा 'हम्मीर महाकाव्य' में चौहानों को सूर्यवंशी माना गया है। १७वीं शताब्दी से पूर्व 'अग्नि-वंश' विषयक कोई सामग्री नहीं मिलती। अतः 'रासो' पृथ्वीराज के समय में न लिखा जाकर १७वों शताब्दी के ही आस-पास लिखा गया प्रतीत होता है।

२. पृथ्वीराज रासो में दी गई चौहानों की वंशावली अशुद्ध है

ओझाजी ने शेखावटी में हर्षनाथ के मन्दिर की १०३० वि० की विग्रह राज के समय की प्रशस्ति, सोमेश्वर के समय के १२२६ वि० के विजोलियाँ के शिलालेख, 'पृथ्वीराज विजय', 'हम्मीर काव्य', 'प्रवन्ध कोष', 'सुर्जन चरित' के आधार पर रासो में दी गई वंशावली को कृत्रिम वतलाया। 'पृथ्वीराज रासो' में चौहानों की वंशावली के चवालीस नामों में से केवल सात नाम ही उक्त प्रामाणिक ग्रन्थों और शिलालेखों में मिलते हैं। अतः रासो प्रामाणिक रचना नहीं है।

३. पृथ्वीराज की माता

'रासो' के अनुसार पृथ्वीराज की माता का नाम कमला था, जो दिल्ली के राजा अनंगपाल की पुत्री थी। परन्तु 'पृथ्वीराज विजय', 'हम्मीर महाकाव्य' तथा 'सुर्जन चरित' आदि में पृथ्वीराज की माता का नाम कर्पूरमंजरी दिया गया है। वे चेदि के कलचुरि राजा अचलराज की पुत्री थीं।

४. पृथ्वीराज की बहन

'पृथ्वीराज रासो' में पृथ्वीराज की बहन पृथाकुमारी का विवाह मेवाड़ के

रावल समरसिंह के साथ होना बतलाया गया है। रावल समरसिंह पृथ्वीराज की मृत्यु (सं० १२४६ वि०) के बहुत बाद लगभग १०६ वर्ष पीछे (सं० १३५८ वि०) तक विद्यमान रहे। अतः पृथाकुमारी और उसका विवाह होना संभव नहीं है। इसके अतिरिक्त सं० १३३० और १३५२ के बीच के आठ शिलालेख मिले हैं, उनमें भी इस विवाह का उल्लेख नहीं है।

५. सोमेश्वर की मृत्यु

'रासो' के अनुसार पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर की मृत्यु गुजरात के राजा भीमदेव के हाथों हुई। अपने पिता की मृत्यु का प्रतिशोध लेने के लिए पृथ्वीराज ने भीमदेव का वध किया, परन्तु ये दोनों घटनाएँ कल्पित हैं। सोमेश्वर की मृत्यु सं० १२३६ वि० में हुई थी। भीमदेव सं० १२३५ में बाल्यावस्था में गुजरात के राजा हुए और सं० १२९८ तक जीवित रहे। सं० १२९६ का भीमदेव का एक दानपत्र प्राप्त है। अतः भीमदेव के द्वारा सोमेश्वर की मृत्यु असम्भव है।

६. पृथ्वीराज के विवाह

रासी में पृथ्वीराज के विवाह सम्बन्धी वर्णन अनैतिहासिक हैं। ११ वर्ष से ३६ वर्ष तक की आयु तक पृथ्वीराज के १४ विवाह होना कपोल-कल्पित है। रासो में पृथ्वीराज का ग्यारह वर्ष की आयु में पहला विवाह मंडोवर के परिहार राजा नाहरराय की पुत्री के साथ होना लिखा है। मंडोवर के परिहारों के सं० ८९४ वि० के शिलालेख के अनुसार नाहरराय पृथ्वीराज से कई सौ वर्ष पहले हो चुका था। इसी प्रकार बारह वर्ष की आयु में पृथ्वीराज का विवाह आबू के परमार राजा सलष की पुत्री और जैत की बहन इच्छिनी से होना लिखा है। परन्तु आबू में सलष या जैत नाम के राजा हुए ही नहीं। पृथ्वीराज के साथ दाहिमा चावंड की बहन, देवगिरि के यादव राजा भान की पुत्री शशिव्रता, रणथम्भौर के यादव राजा भानराय की पुत्री हंसावती आदि से विवाह होना अनैतिहासिक और कल्पित है।

७. मुख्य घटनाओं में अनैतिहासिकता

'पृथ्वीराज रासो' की मुख्य घटनाएँ अनैतिहासिक हैं। रासो के अनुसार ११३८ में अनंगपाल ने दिल्ली का राज्य पृथ्वीराज को दिया था। परन्तु इससे पहले ही वीसलदेव ने दिल्ली पर अधिकार कर लिया। रासो में मेवात के

मुगल राजा से सोमेश्वर द्वारा कर माँगने और उसके द्वारा न देने पर पृथ्वीराज द्वारा उसे पराजित करने का उल्लेख है। परन्तु इस समय तक मेवात पर किसी मुगल का अधिकार ही नहीं हुआ था। ओझा जी ने संयोगिता के अपहरण की घटना भी अनैतिहासिक मानी है। अन्धे पृथ्वीराज द्वारा शाहबुद्दीन गोरी के वध की घटना भी कल्पित है।

८. रासो की भाषा

ओझा जी के अनुसार 'पृथ्वीराज रासो' की भाषा १३ वीं शताब्दी की न होकर वि० सं० की १६ वीं शताब्दी के आस-पास की है। उसमें १० प्रतिशत फारसी के शब्द पाये जाते हैं।

९. 'रासो' के सम्वत् काल्पनिक हैं

'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार वीसलदेव का राज्यारोहण वि० सं० ८२१ है। उसके शिलालेख वि० सं० १२१०, १२११ तथा १२२० के मिले हैं। अतः उसका राज्याभिषेक वि० सं० ८२१ में किसी प्रकार भी नहीं माना जा सकता। रासो के अनुसार पृथ्वीराज का जन्म सं० १११५ वि० में हुआ था। पाण्ड्या जी के 'आनन्द सं०' की गणना से यह १२०६ होगा। 'पृथ्वीराज विजय' के अनुसार सोमेश्वर की मृत्यु वि० सं० १२३६ में हुई थी। इस समय पृथ्वीराज बालक थे। अतः यह संवत् ठीक नहीं ठहरता। रासो के अनुसार वि० सं० ११३६ में पृथ्वीराज के सामन्त आबू के सरदार राजा सलष ने शाहबुद्दीन को बन्दी बनाया। आनन्द सं० के अनुसार इस तिथि को वि० सं० १२२७ माना जा सकता है। परन्तु इस समय तक न तो पृथ्वीराज राजा हुए थे और न शाहबुद्दीन ही भारत में आया था। इस प्रकार 'रासो' के सम्वत् कल्पित हैं।

अपने उपर्युक्त तर्कों के आधार पर ओझा जी ने पृथ्वीराज रासो को कल्पित और अनैतिहासिक ग्रन्थ घोषित किया।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी-साहित्य के इतिहास' में रासो की प्रामाणिकता के विरोध में निम्न तर्क प्रस्तुत किये हैं—

(१) "बात संवत् तक नहीं है, इतिहास विरुद्ध कल्पित घटनाएँ जो भरी पड़ी हैं, उनके लिए क्या कहा जा सकता है। माना कि 'रासो' इतिहास नहीं, काव्य-ग्रन्थ है। पर काव्य-ग्रन्थों में बिना किसी प्रयोजन के ऐतिहासिक

तथ्यों में उलट-फेर नहीं किया जा सकता। जयानक का 'पृथ्वीराज विजय' भी तो काव्य-ग्रन्थ ही है। फिर उसमें क्यों घटनाएँ और नाम ठीक ठाक हैं। इस सम्बन्ध में इसके अतिरिक्त और कुछ कहने की जगह नहीं कि पूरा ग्रन्थ जाली है।"

(२) "रहा यह प्रश्न कि पृथ्वीराज की सभा में चन्द नाम का कोई कवि था या नहीं।.........अधिक संभव यह जान पड़ता है कि पृथ्वीराज के पुत्र गोविन्दराज या उनके भाई हरिराज अथवा इन दोनों में से किसी के वंशज के यहाँ चन्द नाम का कोई भट्ट कवि रहा होगा जिसने उनके पूर्वज पृथ्वीराज की वीरता आदि के वर्णन में कुछ रचना की हो। पीछे जो वहुत-सा कल्पित 'भट्ट भणन्त' तैयार हो गया, उसी के नाम पर 'रासो' नाम की यह इमारत खड़ी की गई।"

(३) "भाषा की कसौटी पर जब यह ग्रन्थ कसते हैं, तो और भी निराश होना पड़ता है, क्योंकि वह विलकुल वेठिकाने है। उसमें व्याकरण आदि की कोई व्यवस्था नहीं है।.........कहीं-कहीं तो भाषा आधुनिक सांचे में ढली दिखाई पड़ती है। क्रियाएं नए रूपों में मिलती हैं।.........इस दशा में भाटों के इस वाग्जाल के वीच कहीं पर कितना अंश असली है, इसका निर्णय असंभव होने के कारण यह ग्रन्थ न तो भाषा के इतिहास और न साहित्य के इतिहास के जिज्ञासुओं के काम का है।"

डा० रामकुमार वर्मा

डा० रामकुमार वर्मा ने अपने 'हिन्दी साहित्य के आलोचनात्मक इतिहास' में रासो के अप्रामाणिकता के कारणों का निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

१—रासो में प्रयुक्त संवत् अशुद्ध हैं। आनन्द सम्वत् केवल कल्पना क्लिष्ट मात्र है।

(२) रासो की भाषा में अरवी-फारसी के शव्दों का प्रयोग हुआ है। कुछ शव्द तो ऐसे हैं, जो सर्वथा अर्वाचीन हैं। साथ ही 'रासो' की भाषा में विषमता भी है। एक ही छन्द में शव्दों की विभिन्न रूपावली मिलती है। अतः भाषा की विषमता पूर्ण रूप से रासो की प्रामाणिकता नष्ट कर देती है।

(३) रासो के प्रारम्भ की वन्दना में चन्द ईश्वर को निराकार और निर्गुण कहते हैं, किन्तु वाद में उसे व्रह्मा के रूप में परिवर्तित कर देते हैं। चन्द जैसा महाकवि ऐसी भूल नहीं कर सकता। रासो में अनेक वन्दनाएँ हैं। अन्य

चारण कवियों पर इनका प्रभाव नहीं है। यदि चन्द ने ये वन्दनाएँ लिखी होतीं, तो उनका अन्य चारण कवियों पर अवश्य प्रभाव पड़ता। अतः प्रतीत होता है कि सत्रहवीं शताब्दी में ये स्तुतियाँ किसी ने रासो में जोड़ दीं।

(४) रासो में ऐतिहासिक व्यक्तियों के समय और घटनाओं में व्यतिक्रम मिलता है।

श्री अमृतशील के रासो की प्रामाणिकता के विरुद्ध तर्क

सन् १९२६ की मई, जून, जुलाई की 'सरस्वती' पत्रिका में श्री अमृतशील ने लेख लिखकर 'पृथ्वीराज रासो' को अनैतिहासिक ग्रन्थ घोषित किया। उनके तर्क निम्नलिखित हैं:—

(१) फिरोजशाह वाली लाट पर सं० १२२० का विग्रहराज चतुर्थ और उसकी देश-विजय का लेख मिला है। अतः यह स्पष्ट है कि उसने १२२० से पहले दिल्ली पर विजय प्राप्त की होगी। विग्रहराज के वाद सोमेश्वर के राज्य काल में दिल्ली का कोई सामंत या अजमेर का कोई कर दाता दिल्ली पर राज्य करता था। अपने पिता के आश्रित राजा के यहाँ युवराज पृथ्वीराज का गोद जाना असंभव प्रतीत होता है।

(२) पृथ्वीराज के ताँवे के कुछ ऐसे सिक्के मिले हैं, जिनमें एक ओर पृथ्वीराज का नाम और दूसरी ओर 'सुल्तान मुहम्मद साम' लिखा हुआ है। इससे यह स्पष्ट है कि पृथ्वीराज कुछ समय तक गोरी के सामन्त रहे थे।

(३) इतिहासकार फरिस्ता ने पिथौरा के भाई चामुण्डराय को दिल्ली का राजा माना है।

(४) 'तवकाते नासिरी' में दिल्ली के राजा का नाम गोविन्दराज या गोविन्दराम मिलता है, पृथ्वीराज नहीं। मुसलमान इतिहासकारों ने पृथ्वीराज को अजमेर के ही राजा के रूप में स्वीकार किया है।

(५) ताज-उल-मा-आसीर के अनुसार दिल्ली और अजमेर के राज्य अलग-अलग थे।

पं० मोतीलाल मेनारिया

रासो को अनैतिहासिक ग्रन्थ मानने वालों में से पं० मोतीलाल मेनारिया का नाम महत्त्वपूर्ण है। आपने अग्रलिखित तर्कों के आधार पर पृथ्वीराज रासो को अप्रामाणिक कृति घोषित किया है—

(१) चन्दवरदाई पृथ्वीराज के समकालीन नहीं थे।

(२) भाषा की दृष्टि से 'पृथ्वीराज रासो' १८वीं शताब्दी की रचना है।

(३) पृथ्वीराज रासो की प्राप्त हस्तलिखित सबकी सब प्रतियाँ सं० १७०० के बाद की हैं।

(४) सबसे प्राचीन रासो की प्रति उदयपुर के राजकीय पुस्तकालय की सं० १७६० की है।

(५) 'पृथ्वीराज विजय', 'हम्मीर महाकाव्य', 'सुर्जन चरित्र' आदि ग्रंथों में उल्लेख न होने के कारण 'पृथ्वीराज रासो' को १८वीं शताब्दी से पहले की रचना नहीं कहा जा सकता।

इस प्रकार प्रसिद्ध इतिहासकारों और विद्वानों ने अपने तर्कों के द्वारा 'पृथ्वीराज रासो' को अनैतिहासिक और अप्रामाणिक ग्रंथ घोषित किया।

पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता के पक्ष में विद्वानों के मत

'पृथ्वीराज रासो' का प्रामाणिक ग्रन्थ सिद्ध करने के लिए सबसे अधिक श्रम पं० मोहनलाल विष्णुलाल पाण्ड्या ने किया। इसके पश्चात् डा० ग्रियर्सन, मिश्रबन्धु, डा० श्यामसुन्दरदास, अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, मथुरा प्रसाद दीक्षित, डा० दशरथ शर्मा, मुनि जिन विजय, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, कविराज मोहनसिंह तथा डा० विपिनविहारी त्रिवेदी ने रासो की प्रामाणिकता के पक्ष में अपने तर्क प्रस्तुत किये। प्रत्येक के तर्क निम्न प्रकार हैं।

डा० मोहनलाल विष्णुलाल पाण्ड्या

पाण्ड्या जी ने 'पृथ्वीराज रासो' में आये हुए नामों, संवतों, घटनाओं आदि को शुद्ध और प्रामाणिक सिद्ध करने का प्रयास किया है। भाषा की दृष्टि से उन्होंने 'रासो' को प्रामाणिक कहा और 'रासो' में प्रयुक्त संवतों के लिए 'आनन्द-सम्वत्' की कल्पना की है। पाण्ड्या जी ने 'रासो' की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में अपना मत व्यक्त करते हुए कहा—

"यह महाकाव्य आज तक कवि चन्द का बारहवीं शताब्दी का रचा हुआ एक बड़ा प्रामाणिक ऐतिहासिक ग्रंथ करके हमारे देश में प्राचीनकाल से चला आता है और इसकी यथार्थता में आज तक, क्या तो स्वदेशी और क्या किसी

विदेशी विद्वान को कोई वैसी शंका नहीं हुई, जैसी हमारे परम प्रिय मित्र महामहोपाध्याय और कविराजा श्री श्यामलदास जी को बैठें बिठाये हो गई है।......इस महाकाव्य को कृत्रिम अनुमान करने में जितने हेतु दिए गये हैं, उनमें से प्रत्येक के सम्बन्ध में हम निम्नलिखित कुछ निवेदन करते हैं—

सम्वतों के सम्बन्ध में

"इस महाकाव्य में जो सम्वत् लिखे गये हैं वह मुसलमानी तवारीखों के लिखे गये सांप्रत शोध हुए सम्वतों से नहीं मिलते और उनमें ९० व ९१ वर्षों का अन्तर पड़ता है। (टिप्पणी ३५५ तथा ३५६—'आनन्द' शब्द का अर्थ वहाँ चन्द ने केवल नव—संख्या-रहित कर रखा है अर्थात अ=रहित और नन्द= नव, है। अब विक्रम शाक आनन्द को क्रम से आनन्द विक्रम शाक अथवा विक्रम नव-रहित शक अर्थात १००—९=९०-९१ अर्थात विक्रम का वह शक, जो उसके राज्य के वर्ष ९०-९१ से प्रारम्भ होता है।"

भाषा के सम्बन्ध में

"इस ग्रंथ में मुसलमानी भाषादि के शब्द प्रयुक्त हुए दृष्टि में आते हैं। इस महाकाव्य की भाषा में दो-एक वर्षों से एक यह भी बड़ी भारी शंका लोगों ने खड़ी की है कि उसके आठ या दस भाग में एक भाग फारसी शब्द हैं और फारसी शब्द अकबर बादशाह के समय से हिन्दी-भाषा में मिले हैं, अतएव यह महाकाव्य से, १६४० से १६७० के बीच कृत्रिम बना है। हम इस बात से बिल्कुल ही असहमत हैं और ऐसा अनुमान करने वालों को हम समझते हैं कि उसने न तो यह 'पृथ्वीराज रासो' कभी आदि से अन्त पर्यन्त अच्छी तरह पढ़ा है और न उसको ऐतिहासिक विद्या का पूरा-पूरा बोध है। क्योंकि यह अनुमान बिल्कुल ही अदृढ़ और अपरिपक्व है। वरन् अब तक की ऐतिहासिक शोधों के अनुरूप हमारी सम्मति में फारसी शब्दों का मेल हमारे भारत खण्ड की बोलचाल की भाषाओं में सातवें शतक तक पाया जाता है। फिर इस बारहवें शतक की हिन्दी भाषा की तो क्या ही कथा कहनी है।"

घटनाओं के सम्बन्ध में

"आज तक पृथ्वीराज के समकालीनों में केवल रावल समरसी जी को ही आक्षेप करने वालों ने उदाहरण में ग्रहण किया है। जहाँ तक हमने रावल समरसी के विषय में शोध किया है, वहाँ तक हमको इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि वे पृथ्वीराज के बहनेऊ और समकालीन थे।"

डा० ग्रियर्सन और डा० श्यामसुन्दर दास

ग्रियर्सन ने चन्द को पृथ्वीराज का समकालीन माना है। वे 'रासो' के कुछ अंश को प्राचीन और कुछ को वाद का जोड़ा हुआ मानते हैं। उनके अनुसार आरम्भ में रासो इतना विशालकाय न था। प्रक्षिप्त कलेवर के कारण ही 'रासो' का कलेवर वढ़ा और उसमें ऐतिहासिक अशुद्धियाँ आ गयों। ग्रियर्सन रासो के साहित्यिक-सौन्दर्य से वहुत प्रभावित थे। वे उसे भापा की दृष्टि से मूल्यवान ग्रंथ मानते थे।

डा० ग्रियर्सन की तरह डा० श्यामसुन्दरदास भी पृथ्वीराज रासो के साहित्यिक सौन्दर्य से विशेष प्रभावित थे। उन्होंने भी रासो में प्रक्षिप्त अंशों की वहुलता मानी है। उन्होंने अपने 'हिन्दी-साहित्य' नामक ग्रंथ में पृथ्वीराज रासो के सम्वन्ध में निम्न प्रकार अपना मत अभिव्यक्त किया है—

"इसके रचयिता चन्दवरदाई पृथ्वीराज के समकालीन वताये जाते हैं। परन्तु अपने वर्तमान रूप में यह किसी एक काल की अथवा किसी एक कवि की कृति नहीं जान पड़ता। इसमें वहुत प्राचीन काल से लेकर प्राय: आधुनिक काल तक के छन्द मिलते हैं। जिनसे सिद्ध होता है कि इसमें क्षेपक वहुत हैं। चन्दवरदाई नामक किसी कवि का होना निश्चय है और यह भी सत्य है कि उसने अपने आश्रयदाता की गाथा विविध छन्दों में लिखी थी; परन्तु समयानुसार उस गाथा की भाषा तथा उसके वर्णित विषयों में वहुत कुछ हेर-फेर होते रहे और इस कारण अव उसके प्रारम्भिक रूप का पता लगाना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो गया।"

मिश्रवन्धु

मिश्रवन्धुओं ने अपने 'हिन्दी नवरत्न' में रासो की प्रामाणिकता पर अपना अडिग विश्वास व्यक्त किया गया है।

सन और संवत्

मिश्रवन्धुओं का कथन है कि 'रासो' में सन् और संवतों की गड़वड़ी नहीं है। रासोकार ने जिस संवत् का प्रयोग किया है वह इतिहास प्रसिद्ध विक्रमी संवत् से सदा ६० वर्ष कम होता है। यह ६० वर्ष की कमी प्रत्येक घटना के संवत् में मिलती है। यदि 'रासो' में उपयुक्त संवत् में ६० जोड़ दें तो इतिहास सिद्ध—संवत् निकल आता है।

घटनाएँ

घटनाओं के आधार पर भी 'रासो' प्रामाणिक ग्रन्थ ही ठहरता है। 'रासो' में पृथ्वीराज द्वारा शाहवुद्दीन को कई वार पकड़ा जाना लिखा है परन्तु इतिहास में ऐसा होना एक बार ही माना गया है। यह हो सकता है कि कविता सम्वन्धी अतिशयोक्ति के रूप में चन्द ने संख्या अधिक लिख दी हो। साथ ही यह वात भी है कि तत्कालीन इतिहास मुसलमान इतिहासकारों के द्वारा लिखा गया है। उन्होंने मुसलमानों की हार को कम करके लिखा हो।

भाषा की दृष्टि से प्रामाणिकता

भारत में शाहवुद्दीन के आक्रमण से वहुत पहले ही भारत में मुसलमानों का प्रवेश हो गया था। सिन्ध तथा मुल्तान पर तो सातवीं शताव्दी में ही मुसलमानों के आक्रमण हो चुके थे। महमूद गजनवी के १७ वार आक्रमण इतिहास प्रसिद्ध हैं। पंजाब वहुत दिनों तक मुसलमानों के अधिकार में रहा। चन्द का जन्म भी लाहौर ही में हुआ था। पृथ्वीराज के दरवार में शाहवुद्दीन का भाई हुशैन, और उसका पुत्र दोनों ही रहते थे। इन सव कारणों से चन्द द्वारा रचित 'रासो' की भाषा में अरवी-फारसी के शव्दों का आ जाना स्वाभाविक ही है। कुछ प्रतिशत मात्र अरवी-फारसी के शव्दों को देखकर रासो को अनैतिहासिक कह देना अनुचित है।

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

हरिऔध जी ने ग्रियर्सन की तरह ही 'पृथ्वीराज रासो' को प्रामाणिक ग्रन्थ माना है। उन्होंने 'हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास' नामक पुस्तक में अपने निष्कर्ष निम्न प्रकार दिये हैं।

१. चन्द प्रारम्भिक काल का प्रधान कवि और हिन्दी-संसार का चॉसर है।

२. 'पृथ्वीराज रासो' वारहवीं शताव्दी की रचना है। यह वात अवश्य है कि इसके मूल रूप में वहुत अधिक प्रक्षिप्त अंश मिल गये हैं।

३. इस ग्रन्थ में वीरगाथा काल की समस्त विशेषताएँ मिलती हैं और कुछ घटनाएँ ऐसी वर्णित हैं, जिनका पृथ्वीराज और चन्द के जीवन से प्रत्यक्ष सम्वन्ध है।

४. किसी भाषा के आदि ग्रन्थों में जो अप्रांजलता और वाक्य-विन्यास का

असंयत रूप होना चाहिए, यह 'रासो' में भी मिलता है। अतः रासो अवश्य ही १२वीं शताब्दी में लिखा गया हिन्दी का प्रथम महाकाव्य है।

५. 'रासो' में रचनाओं की भिन्नता को देखकर स्पष्ट होता है कि बाद में इसमें बहुत अधिक प्रक्षिप्त अंश मिल गया। जिस प्रकार 'महाभारत' में नए श्लोक सम्मिलित होते रहे, किन्तु प्राचीन श्लोकों का अभाव नहीं हो पाया इसी प्रकार 'रासो' में भी नवीन छन्द सम्मिलित होते रहे, किन्तु उसकी प्राचीनता न जा सकी।

६. 'रासो' के कुछ छन्द भी इस बात के साक्षी हैं कि उसकी मुख्य रचनाएँ बारहवीं शताब्दी की हैं। आज तक हिन्दी में गाथा 'छन्द' का हिन्दी साहित्य में व्यवहार नहीं होता, किन्तु चन्दवरदाई ने इस छन्द का प्रयोग किया है।

पं० मथुराप्रसाद दीक्षित

पं० मथुराप्रसाद दीक्षित ने भी 'रासो' की प्रामाणिकता के पक्ष में अपने तर्क दिये हैं जो निम्नलिखित हैं :—

१. 'पृथ्वीराज रासो' प्राकृत मिश्रित भाषा में होने के कारण निश्चित रूप से बारहवीं शताब्दी की रचना है।

२. 'पृथ्वीराज रासो' में बाद में बहुत सी प्रक्षिप्त घटनाओं का समावेश हो गया। ऐसी ऐतिहासिक घटनाएँ पृथ्वीराज के साथ जोड़ दी गईं, जिनका पृथ्वीराज से शताब्दियों का भेद है।

३. इस समय प्राप्त 'पृथ्वीराज रासो' में छन्दों की संख्या सोलह हजार तीन सौ सोलह है। जब कि चन्द ने स्वयं इस ग्रन्थ में सात हजार छन्द संख्या होने का उल्लेख किया है—

सत सहस रासो सरस सकल आदि सुभ दिष्य।
घटि बढ़ि मत्रह कोइ पढ़ै, करि मोहि दूपन न विसिष्य ॥

अतः सात हजार के अतिरिक्त जो छन्द 'रासो' में हैं, वे प्रक्षिप्त हैं। अतः उनके आधार पर 'रासो' को जाली और अनैतिहासिक कहना भूल है।

डा० दशरथ शर्मा

श्री पाण्ड्या की तरह ही डाक्टर दशरथ शर्मा भी 'पृथ्वीराज रासो' की प्रामाणिकता के प्रबल समर्थक हैं। 'रासो' की अप्रामाणिकता के सम्बन्ध में कही

जाने वाली अधिकांश बातों का डाक्टर शर्मा ने तर्कपूर्ण उत्तर दिया है। उनके तर्क निम्नलिखित हैं।

१—'रासो' को अप्रामाणिक कहने वालों ने 'नागरी प्रचारिणी सभा काशी' वाले संस्करण के आधार पर अपने निष्कर्ष निकाले हैं। बीकानेर की फोर्ट लाइब्रेरी में सुरक्षित 'पृथ्वीराज रासो' की प्राचीन लघुतम प्रतियों के आधार पर यदि देखा जाय, तो रासो की प्रामाणिकता में कोई शंका नहीं रह जाती।

२—चन्द पृथ्वीराज के समकालीन थे और उन्होंने पृथ्वीराज का यह वर्णन 'पृथ्वीराज रासो' में किया।

३—'रासो' में अग्नि-वंश विषयक कथा केवल 'नागरी प्रचारिणी सभा काशी' के संस्करण में मिलती है। बीकानेर की लघुतम प्रति में नहीं है। इसमें माणिक्यराय चौहान की उत्पत्ति ब्रह्मा के यज्ञ से बतलाई गई है, जिसका समर्थन 'हम्मीर' काव्य और 'सुर्जन-चरित्र' से होता है।

४—बीकानेर की प्रति में चौहानों की वंशावली बहुत संक्षिप्त है। उसके अधिकांश नाम 'पृथ्वीराज रासो' से मिल जाते हैं।

५—दिल्ली के अन्तिम तोमर राजा ने सोमेश्वर के सौतेले भाई बीसलदेव को दिल्ली का राज्य दिया था किन्तु रासो के लिपि कर्त्ताओं ने बीसलदेव के स्थान पर सोमेश्वर कर दिया।

६—इच्छिनी और पृथ्वीराज के विवाह की कथा बाद में जोड़ी हुई हो सकती है।

७—बीकानेर के लघुतम संस्करण में सन्-सम्वतों की अशुद्धियाँ नहीं मिलतीं।

८—रासो में संयोगिता स्वयंवर की जो कथा है, वह 'सुर्जन चरित्र' में भी मिलती है। नाम संयोगिता के स्थान पर कांतिमती है। इस प्रकार की कथा 'आइने-अकबरी' में भी मिलती है।

९—'पृथ्वीराज विजय' की नायिका से 'पृथ्वीराज रासो' की संयोगिता से कई बातों में समानता है।

१०—शाहबुद्दीन गोरी के साथ अन्तिम युद्ध में बन्दी होकर पृथ्वीराज के गजनी जाने की कथा 'रासो' की तरह ही 'सुर्जन चरित्र' में है।

डा० शर्मा के तर्कों का सारांश यह है कि विद्वानों ने रासो की वृहत और प्रक्षिप्त कृति के आधार पर ही उसे अप्रामाणिक घोषित किया। उसकी मूल लघुतम प्रति ऐतिहासिक और प्रामाणिक है।

मुनि जिन विजय

मुनि विजय ने रासो को प्रामाणिक ग्रन्थ मानते हुए निम्नलिखित तर्क दिये हैं।

१—चन्द पृथ्वीराज का समसामयिक और उनका राज कवि था।

२—चन्द ने प्राकृत भाषा में पृथ्वीराज की कीर्ति का वर्णन 'पृथ्वीराज रासो' में किया।

३—इस समय प्राप्त 'पृथ्वीराज रासो' का वहुत कुछ भाग प्रक्षिप्त है।

४—वाद में उसमें वहुत से छन्द जुड़ते रहे और उसका वृहद कलेवर हो गया।

५—अत्यधिक प्रचार और लोकप्रियता के कारण 'रासो' की भाषा में परिवर्तन होता रहा।

६—वर्तमान 'रासो' में मूल कम और प्रक्षिप्त अंश अधिक है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी

हजारीप्रसाद द्विवेदी 'रासो' की प्रामाणिकता में विश्वास करते हुए निम्नलिखित प्रसङ्गों को ऐतिहासिक और प्रामाणिक मानते हैं :—

१—आरम्भिक अंश।

२—इच्छिनी-विवाह।

३—शशिव्रता का गन्धर्व-विवाह।

४—तोमर परहार का शाहबुद्दीन को पकड़ना।

५—संयोगिता का जन्म, विवाह, इच्छिनी और संयोगिता की प्रतिद्वन्द्विता और समझौता।

अन्त में द्विवेदी जी ने अपना निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए लिखा है—

"अब यह मान लेने में किसी को आपत्ति नहीं है कि 'रासो' एकदम जाली पुस्तक नहीं है। इसमें वहुत अधिक प्रक्षिप्त होने से उसका रूप विकृत जरूर हो गया है, पर इस विशाल ग्रन्थ में सार अवश्य है। इसका मूल रूप निश्चित ही साहित्य और भाषा के अध्ययन की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होगा।"

कविराज मोहनसिंह

कविराज मोहनसिंह 'रासो' के मर्मज्ञ विद्वान् हैं। उन्होंने 'पृथ्वीराज रासो' के मूल-प्रामाणिक पाठ के उद्धार का बीड़ा उठाया। उसी के परिणामस्वरूप उनका 'पृथ्वीराज रासो' का प्रथम भाग 'साहित्य संस्थान राजस्थान विश्व-विद्यालय' उदयपुर से छपा। इसकी भूमिका में 'रासो' की प्रामाणिकता पर उन्होंने अपने तर्क निम्न प्रकार दिए हैं—

१—चन्द ने मूल 'रासो' की रचना जिन छन्दों में की, उनके सम्वन्ध में उसने स्वयं लिखा है—

"छन्द प्रवन्ध कवित्त जति, साटक गाह दुहत्थ।
लघु गुन मण्डित खण्डि यहि, पिंगल अमर भरत्थ॥"

अतः चन्द ने कवित्त (छप्पय), साटक (सार्दूलविक्रीड़ित), गाह (गाथा), दुहत्थ (दोहा, सोरठा) छन्दों में 'रासो' की रचना की। इसके अतिरिक्त संस्कृत के श्लोकों का भी प्रयोग किया। शेष छन्द प्रक्षिप्त हैं।

२—अमरचन्द नाहटा द्वारा देवलिया और बीकानेर की प्रतियों के अनुसार पाँच सहस्र छन्दों की संख्या 'रासो' में है। यदुनाथ कृते वृत्त रत्नाकर से भी इस संख्या का समर्थन हुआ है—

"एक लक्ष रासो कियौ, पंच सहस परिणाम।
पृथ्वीराज नृप को सुयश, जाहिर सकल जहान॥"

कुछ प्रतियों में पाँच हजार के स्थान पर सात हजार पाठ हैं। इसके पश्चात् रासो में जो छन्द हैं, वे निश्चय ही प्रक्षिप्त हैं।

३—'रासो' की रचना वोलचाल की भाषा में हुई। उसमें प्राचीन भाषाओं का भी पुट है। यावनी भाषा भी उस समय प्रयोग में आ गई थी, अतः रासो में अरवी-फारसी के कुछ शव्द भी आ गये हैं।

४—पाण्ड्या जी द्वारा 'आनन्द सम्वत्' की कल्पना युक्ति-संगत है। 'रासो' में उस 'विक्रम शक संवत्' का प्रयोग हुआ है, जो चौहान वंश के मूल पुरुष 'अनल' का शुद्ध रूप लगता है। यह भी हो सकता है कि चौहान वंश में 'आनन्द' नाम का कोई राजा हुआ है। इसी सम्वत् को अनंगपाल के स्तम्भ वाले लेख में 'दिल्ली सम्वत्' तथा 'पद्मावती समय' में 'साख सम्वत्' सगोत्रीय संवत् भी कहा गया है।

५—इसी प्रकार जिन घटनाओं को अनैतिहासिक कहकर 'रासो' को अप्रामाणिक कहा गया है, उनको कविराज मोहनसिंह ने ऐतिहासिक माना है और 'पृथ्वीराज रासो' को 'ऐतिहासिक' और प्रामाणिक ग्रन्थ घोषित किया है।

डा० विपिनबिहारी त्रिवेदी

डा० त्रिवेदी ने अपने 'रेवातट' नाम ग्रन्थ की विस्तृत भूमिका में 'पृथ्वीराज रासो' की प्रामाणिकता का पक्ष लिया है। उन्होंने अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है—

"कवि चन्दवरदाई की मूल कृति विकृत रूप में निस्संदेह उपस्थित है, जिसका पृथक किया जाना दुःसाध्य भले ही हो, असाध्य नहीं। इस युग में बिना 'पृथ्वीराज रासो' का अवलोकन किये 'रासोसार' मात्र पढ़कर कविराजा श्यामलदास और विशेषकर म० म० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के 'रासो' विरोधी तर्क जानकर तदनुसार राग अलापना अपेक्षाकृत आसान है। आज 'रासो' की समस्या उसे अप्रामाणिक और अनैतिहासिक सिद्ध करने की इतनी नहीं है, जितनी उसके अन्दर से उसके प्रक्षेप-जाल का आवरण दूर करने की है।"

निष्कर्ष

"रासो के प्रामाणिकता और अप्रामाणिकता के सम्वन्ध में प्रायः सभी मत दिये जाने के पश्चात् यह कहना कठिन नहीं है कि उनके आधार पर सर्वमान्य निश्चय पर पहुँचा जा सकता है। यह वात सत्य है कि अभी तक उन सभी तर्कों का उत्तर नहीं दिया जा सका है, जो प्रामाणिकता के विरोधी विद्वानों ने दिये हैं। परन्तु यह परिणाम सहज ही निकल आता है कि 'पृथ्वीराज रासो' सर्वथा 'भट्ट भणंत', जाली और अनैतिहासिक ग्रंथ नहीं है। चन्द अन्तिम हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज चौहान के समकालीन और उनके दरवारी कवि थे। उन्होंने पृथ्वीराज का यश वर्णन किया। आज 'रासो' का मूल रूप प्राप्त नहीं है। उसमें प्रक्षिप्त अंश वरावर मिलता रहा और आज वह वृहदाकार रूप में सामने है। अव इस बात की खोज और प्रयास की आवश्यकता है कि उसमें से प्रक्षिप्त अंश को अलग किया जा सके। संक्षेप में हम 'पृथ्वीराज रासो' के सम्वन्ध में इतना ही कह सकते हैं कि उसका वर्तमान रूप वहुत अधिक प्रक्षिप्त है। चन्द ने पृथ्वीराज के समय में ही उसके मूल रूप की रचना की, परन्तु बाद में प्रक्षिप्त छन्द उसमें प्रवेश पाते गये।

३

रचना-काल और रूपान्तर

प्रश्न ११—'पृथ्वीराज रासो' का रचना-काल निर्धारित कीजिए।

उत्तर—रासो की रचना काल के सम्बन्ध में दो मत हैं—

'पृथ्वीराज रासो' के रचना काल के सम्बन्ध में विद्वानों की मान्यता में मतभेद है। पहला मत 'रासो' को प्राचीन रचना मानता है। इस मत के मानने वाले विद्वानों ने 'पृथ्वीराज रासो' का निर्माण काल ईसा की बारहवी शताब्दी माना है। ये पृथ्वीराज और चन्द को समकालीन मानते हैं और कहते हैं कि चन्द ने पृथ्वीराज के समय में ही 'रासो' की रचना की। इस मत के मानने वालों में कर्नल जेम्स टॉड, गार्सा-द-तासी, एफ० एस० ग्राउज, जॉन वीम्स, रुडोल्फ, हार्नली, ग्रियर्सन, मोहनलाल विष्णुलाल पाण्ड्या, मिश्रवन्धु, डा० श्यामसुन्दरदास, मथुराप्रसाद दीक्षित तथा अगरचन्द नाहटा हैं।

दूसरा मत 'रासो' को नवीन तथा १६वीं शताब्दी या उसके वाद की रचना मानता है। इस पक्ष के प्रमुख विद्वान कविराजा श्यामलदास, डा० बूलर, जेम्स मोरीसन, मुन्शी देवीप्रसाद, डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, पं० मोतीलाल मेनारिया आदि हैं। डा० ओझा ने 'पृथ्वीराज रासो' की रचना विक्रम संवत् १६०० के आस-पास की मानी है। अन्य विद्वानों में से अधिकांश 'पृथ्वीराज रासो' का रचनाकाल विक्रम की अठाहरवीं सदी मानते हैं।

प्राचीनता के पक्ष में

मुनि कान्ति सागर को वरार में पृथ्वीराज रासो की जो प्राचीन प्रति मिली है, उसके आधार पर वे रासो का रचना काल वारहवीं शताब्दी मानते

हैं। उन्होंने 'विशाल भारत' भाग ३८, अंक ५ सन् १९४६ में अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहा था :—

"मध्य प्रान्त और बरार से जो ऐतिहासिक साधन मुझे प्राप्त हुए हैं, उनमें एक १२५ पत्रों वाली हस्तलिखित प्रति भी है, जिसमें चन्द कृत 'पृथ्वीराज रासो' और कवि चन्द्रशेखर रचित 'सुर्जन चरित' (अपूर्ण) उल्लिखित हैं। आज तक 'रासो' की उपलब्ध सब प्रतियों में यह प्रति अत्यन्त प्राचीन और प्रामाणिक है।"

इस प्रति की पुष्पिका निम्न प्रकार है—

"विक्रम १४०३ कार्तिक शुक्ल पंचम्यां। तुगलक फिरोजशाहि विजय राज्ये ढिल्यां मध्ये लिपिकृतं वाचक महिमराजेन श्रीमाल कुलोत्पन्न श्री ठक्कुर फेरु, पुत्र हेमपाल वाचनार्थं, शुभंभूयात।"

यह प्रति छप्पय छन्दों में लिखी गई है। इसकी भाषा अपभ्रंश है। छन्दों की संख्या १३०६ है। इसमें 'रासो' की विभिन्न घटनाओं के ४५ रंगीन चित्र काँगड़ा शैली में हैं। इस कृति को मुनि कान्तिसागर विशेष प्रामाणिक तथा विश्वसनीय मानते हैं। परन्तु इसकी पुष्पिका में भी दिन का उल्लेख नहीं किया गया है। इसके साथ ही फिरोजशाह का राज्यकाल सं० १४०३ भी इतिहास-विरुद्ध है। अतः प्रति की प्राचीनता भी सन्देह से परे नहीं है।

मुनिराज जिन विजय

मुनिराज जिन विजय ने 'पुरातन-प्रबन्ध-संग्रह' में आये हुए चार छप्पयों का आधार लेकर पृथ्वीराज रासो की प्राचीनता सिद्ध की है। हजारीप्रसाद द्विवेदी ने मुनिराज जिन विजय की खोज के आधार पर अपने द्वारा सम्पादित 'संक्षिप्त-पृथ्वीराज रासो' की भूमिका में पृथ्वीराज रासो की प्राचीनता स्वीकार करते हुए लिखा :—

"जिस प्रति से यह छप्पय उद्‌धृत किये गए हैं, वह सम्भवतः १५वीं शताब्दी की लिखी हुई है। इससे यह सिद्ध होता है कि पन्द्रहवीं शताब्दी में लोगों को चन्द के छप्पय का ज्ञान था और ये छप्पय परिनिष्ठित अपभ्रंश से थोड़ी आगे बढ़ी भाषा में लिखे गये थे। इन पद्यों के प्रकाशन के बाद से अब किसी को सन्देह नहीं रह गया कि चन्द नामक कोई कवि पृथ्वीराज के दरबार में अवश्य थे और उन्होंने ग्रंथ भी लिखा है। सौभाग्यवश वर्तमान रासो में भी ये छन्द कुछ विकृत रूप में प्राप्त हो गये हैं। इस पर से यह अनुमान किया जा सकता है कि वर्तमान रासो में चन्द के मूल छन्द अवश्य मिले हुए हैं।"

उक्त कथन चन्द को पृथ्वीराज का समकालीन कवि और 'पृथ्वीराज रासो' को उसके द्वारा लिखा हुआ के बारहवीं सदी का प्रामाणिक ग्रन्थ सिद्ध करता है।

'पुरातन प्रबन्ध-संग्रह' में से जिन छप्पयों को मुनिराज जिन विजय ने लिया है, उनमें से एक को उदाहरण स्वरूप दिया जाता है। रासो में भी इसका विकृत रूप मिलता है :—

"इक्कु बांण पहुँवीसु जु पइं कइं वासह मुक्कओं,
उर भिंतरि खडहडिउ धीर कक्खंतरि चुक्कउ।
वीअं करि संघीउ भंमइ सूमेसर नंदण।
एहु सु गडि दाहिमयों खुद्दइं सइं भरिवणु।
फुड छांडि न जाई इहु लुब्भिउ वारइ पलकउ खल गुलह।
न जाणउं चंद वलद्दिउ कि न वि छुट्टइ इह फलह।"

—पुरातन-प्रबन्ध-संग्रह

"एक बान पहुमी नरेस कैंमासह मुक्यौ।
उर उप्पर थरहरयौ वीर कष्पंतर चुक्यौ।
वियो बान संधान हन्यौ सोमेसर नन्दन।
गाढ़ौ करि निग्रहयौ षनिव गड्यौ संभरि घन।
थल छोरि न जाइ अभागरौ गड्यौ गुन गहि अग्गरो।
इम जंपै चन्दवरद्दिया कहा निघट्टै इन प्रलौ।"

—पृथ्वीराज रासो—समय ५७ छन्द २३६

मुनिराज जिन विजय द्वारा दिये गये छप्पयों से केवल इतना ही अनुमान लगाया जा सकता है कि चन्दवरदाई ने मूल रूप में 'रासो' की रचना अवश्य की थी। जिसके छन्द वर्तमान में प्राप्त विशाल 'पृथ्वीराज रासो' की प्रतियों में विकृत रूप से बिखरे हुए हैं।

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

हरिऔध जी का कथन है कि 'पृथ्वीराज रासो' की मूल रचना १२वीं सदी की है। उन्होंने अपना निष्कर्ष निम्न प्रकार दिया है :—

"कुछ विद्वानों की यह सम्मति है कि चन्द कवि कृत 'पृथ्वीराज रासो' की रचना १५वीं या १६वीं शताब्दी की है, परन्तु मेरा विचार है कि इन प्रक्षिप्त रचनाओं के अतिरिक्त ग्रन्थ में ऐसी रचनाएं हैं, जिनको हम १२वीं शताब्दी की रचना निस्संकोच भाव से कह सकते हैं।"

पं० मथुराप्रसाद दीक्षित पृथ्वीराज रासो को बाहरवीं शताब्दी की रचना मानते हैं

मथुराप्रसाद जी ने रासो को बारहवीं शताब्दी का ग्रन्थ मानते हुए अपने विचार निम्न प्रकार व्यक्त किये हैं :—

"यह विषय निर्विवाद है कि पृथ्वीराज रासो १२वीं शताब्दी में बना। इस समय की भाषा प्राकृत मिश्रित थी। अतएव 'पृथ्वीराज रासो' का भी प्राकृत मिश्रित भाषा में निर्माण हुआ। इस समय के 'पृथ्वीराज रासो' नामक परमोत्तम काव्य में बहुत ही प्रक्षिप्त पाठ मिला दिया गया है। प्रक्षेपक में ऐसी ऐतिहासिक घटनाएँ पृथ्वीराज जी के साथ जोड़ दी हैं, जिन घटनाओं का पृथ्वीराज जी से शताब्दियों का भेद है।"

सोलहवीं शताब्दी अथवा उसके बाद की कृति

ऊपर उस पक्ष का निरूपण किया जा चुका है, जो 'पृथ्वीराज रासो' को १२वीं शताब्दी की प्राचीन रचना मानता है। इस पक्ष के मतों से इतना ही अनुमान होता हैं कि 'पृथ्वीराज रासो' प्राचीन ग्रन्थ है। उसके वर्तमान रूप में प्रक्षिप्त अंश बहुत अधिक मिल गया है। उक्त मतों से रासो के निर्माण काल की कोई निश्चित तिथि ज्ञात नहीं होती। दूसरा पक्ष 'पृथ्वीराज रासो' का १६ वीं शताब्दी अथवा उसके पश्चात् निर्माण काल मानते हैं।

'पृथ्वीराज रासो' के सम्बन्ध में निम्नलिखित उल्लेख मिले हैं, जिनके आधार पर उसको विद्वानों ने आधुनिक सिद्ध किया है।

१. जसवन्त उद्योत में उल्लेख—'जसवन्त उद्योत' का रचना काल सं० १७०५ है।

२. 'राज प्रशस्ति' महाकाव्य में उल्लेख—'रासो' का दूसरा उल्लेख **राजप्रशस्ति महाकाव्य,** में मिलता है। यह महाकाव्य महाराणा राजसिंह ने राजसमुद्र तालाव के नौ चौरी नामक बाँध पर पच्चीस बड़ी-बड़ी शिलाओं पर खुदवाया था। खुदवाने का यह कार्य सं० १७१८ से १७३२ तक हुआ। इसमें 'रासो' का उल्लेख निम्न प्रकार आया है :—

"भाषा रासा पुस्तकेस्य युद्धस्योक्तोस्ति विस्तरः ॥"

३. वृत्ति-विलास—'रासो' का तीसरा उल्लेख जदुनाथ कवि रचित 'वृत्ति

विलास' नाम की कृति में हुआ। इस ग्रन्थ का रचनाकाल सं० १८०० के आस-पास माना गया है।

ओझा जी के मतानुसार पृथ्वीराज रासो सं० १६०० के आस-पास की रचना है

पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने पृथ्वीराज रासो सं० १६०० वि० के आस-पास की रचना माना है। उनके निष्कर्ष निम्न प्रकार हैं—

१—'हम्मीर महाकाव्य' जिसमें पृथ्वीराज का वृत्त है, वि० सं० १४६० की रचना है किन्तु इसमें रासो का कोई उल्लेख नहीं है। यदि रासो इससे पूर्व लिखा गया होता तो उल्लेख अवश्य होता।

२—'पृथ्वीराज रासो' में उल्लेख आया है कि रावल समरसिंह का बड़ा पुत्र कुँभा बीदर के मुसलमानों के पास जाकर रहा। परन्तु यह बात ऐतिहासिक सत्य है कि पृथ्वीराज के युग में मुसलमान दक्षिण में पहुँचे ही नहीं थे। फिर सन् १४३० में अहमदशाह अब्दाली ने बीदर राज्य की नींव डालीं। अतः 'रासो' की रचना सन् १४३० के पश्चात् ही हुई।

३—'पृथ्वीराज रासो' के अनुसार मेवाड़ के मुगल राजा से सोमेश्वर का युद्ध होना मिलता है। किन्तु मुगल राज्य भारत में सं० १५८२ में आया। अतः इसके पश्चात् ही रासो की रचना हुई होगी।

ओझा जी के उपर्युक्त तर्क सर्वग्राही नहीं हैं। यह बात जरूरी नहीं है कि किसी कृति में उससे पहले लिखी गयी प्रमुख कृति का उल्लेख हो ही।

बाबू रामनरायण दूगड़ की मान्यता

दूगड़ जी ने निष्कर्ष में लिखा है कि उदयपुर के विक्टोरिया हॉल वाली 'पृथ्वीराज रासो' की प्रति के अन्त में एक छन्द है जिसमें रासो के संकलन-काल पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। यह छन्द निम्नलिखित हैं—

"गुनि मुनियन रस पोइ चन्द कवियन कर दिद्धिय।
छन्द गुनी ते तुट्ट मन्द कवि भिन्न-भिन्न किद्धिय॥
देस देस विष्परिय मेल गुन पार न पावय।
उद्दिम करि मेलवत आस विन आलय आवय॥

चित्रकोट रान अमरेस नृप हित श्रीमुख आयस दयौ।
गुन विन बीन करुणा उदधि लिसि रासो उद्दिम कियो ॥"

उक्त छन्द स्पष्ट करता है कि 'रासो' के विखरे हुए छन्दों का संग्रह महाराणा-अमरसिंह ने अपनी आज्ञा से करवाया था। उदयपुर राजवंश में प्रथम अमरसिंह का शासन काल १६५३ वि० से सं० १६७६ वि० तक और द्वितीय का १७५५ वि० से १७६७ वि० तक रहा। डा० श्यामसुन्दरदास ने अमरसिंह प्रथम के समय 'रासो' का संकलन होना माना है। परन्तु डा० उदियनारायन तिवारी द्वितीय अमरसिंह को पृथ्वीराज रासो का उद्धारकर्त्ता मानते हैं। उनके मत का समर्थन उदयपुर की सरस्वती भण्डार की निम्न पुष्पिका से हो जाता है। यह पुष्पिका वि० सं० १७६० की है—

"सं० १७६० वर्षे शाके १६२५ प्रवत्तमाने उत्तरायणगते श्री सूर्यें शिशर ऋतौ संमांगल्यपद माघ मासे कृष्ण पक्षे ६ तिथौ सोम वासरे जी उदयपुर मध्ये हिन्दूपति पातिसाहि महाराजाधिराज महाराणा अमरसिंह जी विजय राज्ये···।"

उक्त छन्द "गुनि मुनियन······।" से ऊपर ही एक और छन्द मिलता है। जिससे पृथ्वीराज रासो के संग्रह काल का संकेत मिलता है—

"मिली पंकज गन उदधि, करद कागद कातरनी।
कोटि कवी काजलह, कमल कटिकतें करनी॥
इह तिथि संख्या, गुनित कहै कक्का कवियाने।
इह श्रम लेखन हार, भेद भेदै सोइ जानै॥
इन कष्ट ग्रन्थ पूरन करय, जन वड़ या दुखनां लहय।
पलियै जतन पुस्तक पवित्र, लिखि लेखक विनती करय॥

इस छन्द का अर्थ करते हुए डा० श्यामसुन्दरदास ने रासो का संकलन-काल सं० १६४१ माना है—

"यदि पंकज से पंकज नाल (१) गन का गुन (६) का अशुद्ध रूप, उदधि से समुद्र (४) और करद से कटार या चाकू (१) जिसका फल एक होता है मान लें तो सम्वत् १६४१ बनता है। शेष शब्दों में मास तिथि आदि होगी। पर यह स्पष्ट नहीं होता। यदि इस हिसाब से रासो का संकलन संवत् १६४१ मान लिया जाय तो कुछ अनुचित न होगा।"

उक्त छन्द में गणना करते हुए डा० दास जी स्वयं सन्तुष्ट नहीं थे।

कविराज श्यामलदास ने 'पृथ्वीराजा रासो' का निर्माण सं० १६४० वि० तथा सं० १६७० वि० के मध्य माना है। पं० मोतीलाल मेनारिया ने 'राजस्थानी भाषा और साहित्य' तथा 'राज्यस्थान का पिंगल साहित्य' ग्रन्थों के आधार पर पृथ्वीराज रासो को १८ वीं शताब्दी की रचना माना है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त मतों के विवेचन से स्पष्ट है कि 'रासो' का जो रूप आज सामने है वह प्राचीन नहीं है। 'पृथ्वीराज विजय' (सं० १२४६), 'प्रवन्ध चिन्तामणि' (सं० १३६१), 'हम्मीर महाकाव्य' (सं० १४६०), 'सुरजन चरित्र' (सं० १६३५) आदि ग्रन्थ पृथ्वीराज के चरित्र पर हैं, परन्तु इनमें पृथ्वीराज रासो का कोई उल्लेख नहीं है। वि० सं० १७०५ से पूर्व 'रासो' का कोई उल्लेख नहीं मिलता। रासो की सवसे प्राचीन प्रति सं० १७६० की है, जो उदयपुर के राजकीय पुस्तकालय में है। यहाँ तक जो तर्क दिये गये हैं, वे वर्तमान में प्राप्त 'पृथ्वीराज रासो' के संकलनों के सम्बन्ध में हैं। यह बात सत्य है कि पृथ्वीराज के समकालीन लिखे गये अन्य ग्रन्थों में 'पृथ्वीराज रासो' का उल्लेख नहीं मिलता। परन्तु इसके आधार पर एकदम यह नहीं कहा जा सकता कि 'पृथ्वीराज रासो' चन्द द्वारा पृथ्वीराज के समय में लिखा नहीं गया और उसका कोई प्राचीन अस्तित्व था ही नहीं। फिर यह आवश्यक नहीं है कि किसी काल के किसी ग्रन्थ का उल्लेख उसके समकालीन एवं परवर्ती ग्रन्थों में हो ही। हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि इस समय 'पृथ्वीराज रासो' के जो छोटे और वृहदाकार संग्रह प्राप्त हैं, वे मूल 'पृथ्वीराज रासो' न होकर संकलन मात्र हैं और ये संकलन विक्रम की सोलहवीं शताव्दी के पश्चात् ही हुए। चन्दवरदाई ने पृथ्वीराज के समय में 'पृथ्वीराज रासो' की रचना अवश्य की। चाहे उसका आकार कितना ही छोटा क्यों न रहा हो। वाद में उसमें प्रक्षिप्त छन्द मिलते गये और वह 'भट्ट-भणंत' ग्रन्थ वन गया। आज जो संग्रह प्राप्त हैं, उनमें मूल 'पृथ्वीराज रासो' के छन्द अवश्य मिलेंगे। परन्तु आवश्यकता इस वात की है कि उसके मूल और प्रक्षिप्त अंश को पृथक-पृथक किया जाय, जो असाध्य नहीं तो अति कष्ट-साध्य अवश्य है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि चन्द ने पृथ्वीराज के समय में ही पृथ्वीराज रासो की रचना की। बाद में वरावर प्रक्षिप्त छन्दों का समावेश होते रहने के कारण उसका मूल रूप विकृत हो गया। वर्तमान में

प्राप्त 'पृथ्वीराज रासो' संकलन मात्र हैं जो विक्रम की सत्तरहवीं शताब्दी से पहले के नहीं हैं। संकलन-कर्त्ताओं की कृपा से ही इतिहास-विरुद्ध घटनाओं और अनैतिहासिक तथ्य रासो में बढ़ते चले गये। अपने मूलरूप में 'पृथ्वीराज रासो' की ऐतिहासिकता अक्षुण्ण है।

प्रश्न १२—'पृथ्वीराज रासो' के प्राप्त रूपान्तरों का उल्लेख करते हुए उनकी अनेकरूपता के कारणों को बतलाइये तथा मूल और क्षेपक अंशों पर विभिन्न विद्वानों के मत दीजिए।

उत्तर—पृथ्वीराज रासो की प्रतियाँ और रूपान्तर

अब तक 'पृथ्वीराज रासो' की लगभग ५१ हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त हो चुकी हैं। श्री नानूराम भाट तथा मुनि कांत सागर के पास भी 'पृथ्वीराज रासो' की प्रतियाँ सुनी जाती हैं, परन्तु अब तक इनके सम्बन्ध में कुछ पता नहीं चला है। अधिकांश प्रतियाँ उदयपुर, बीकानेर, शेखावटी तथा गुजरात में प्राप्त हुई हैं। ये प्रतियाँ चार प्रकार की हैं, जिनके आधार पर विद्वानों ने पृथ्वीराज रासो के चार रूपान्तर माने हैं।

१. वृहत रूपान्तर,
२. मध्यम रूपान्तर,
३. लघु रूपान्तर,
४. लघु तम रूपान्तर।

चारों रूपान्तरों का संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है—

वृहत रूपान्तर

वृहत रूपान्तर की कई प्रतियाँ उदयपुर के पुस्तकालय में प्राप्त हैं। 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' का जो वृहत संस्करण प्रकाशित हुआ, उसमें इन्हीं का रूपान्तर है। ये समस्त प्रतियाँ सं० १७५० के बाद की हैं। 'नागरी प्रचारिणी सभा काशी' की जो प्रति सं० १६४२ की बतलाई जाती है, उसकी प्रामाणिकता संदिग्ध है। श्री नरोत्तम स्वामी के अनुसार यह प्रति अठारहवीं शताब्दी से पूर्व की किसी भी अवस्था में नहीं हो सकती। काशी-नागरी-प्रचारिणी वाले वृहत रूपान्तर में प्रक्षिप्त अंशों की भरमार है। इसमें ६९ समय (सर्ग) और १६३०६ छन्द हैं। इसका ६९ वाँ 'महोबा समय' बहुत बाद में आल्हाखण्ड को लेकर जोड़ा गया लगता है।

मध्यम रूपान्तर

मध्यम रूपान्तर में कुछ विद्वान ११ प्रतियों का उल्लेख करते हैं, किन्तु श्री उदयनारायण तिवारी ने अपने ग्रन्थ 'वीरकाव्य' की भूमिका में मध्य रूपान्तर में चार प्रतियाँ ही बतलाई हैं। इनमें से एक ओरियंटल कालेज लाहौर के पुस्तकालय में, एक अबोहर के साहित्य-सदन में, एक बीकानेर के जैन ज्ञान-भंडार में और एक श्री अगरचन्द नाहटा के पास है। पं० मथुराप्रसाद दीक्षित लाहौर वाली प्रति को असली 'रासो' मानते हैं। उन्होंने टिप्पणी के साथ उसका एक नवीन संस्करण भी प्रकाशित कराया है। इस प्रति में छन्दों की संख्या सात हजार है और गणना करने से आर्या छन्द के हिसाब से यह संख्या ठीक बैठती है। नाहटाजी के पास की प्रति का लिपि-काल सं० १७९२ है। इस रूपान्तर की सारी प्रतियाँ सं० १७०० के बाद की हैं। 'ज्ञान-भंडार' वाली प्रति सं० १७३९-४०, अबोहर वाली प्रति सं० १७२३ की है। इस रूपान्तर में अध्यायों का नाम 'प्रस्ताव' मिलता है।

लघु रूपान्तर

लघु रूपान्तर में अन्य विद्वानों ने ५ प्रतियों तथा उदयनारायण तिवारीजी ने तीन प्रतियों का उल्लेख किया है। इस रूपान्तर की तीन प्रतियाँ बीकानेर राज्य के 'अनूप संस्कृत पुस्तकालय' में तथा एक अगरचन्द नाहटा के पास है। यह रूपान्तर बहुत छोटा है। इसमें १९ 'समय' और ३५०० छन्द हैं। इन तीनों प्रतियों के पहले, सातवें और अन्त के 'समय' का नाम किसी भी प्रति में नहीं मिलता, इनमें से दो प्रतियों में निम्न छन्द मिलता है—

> "रघुनाथ चरित हनुमन्त कृत, भूप भोज उद्दरिय जिमि।
> पृथ्वीराज सुजसु कवि चंद, कृत चन्द्रसिंह उद्धरिय इमि॥"

इनमें से एक प्रति सत्रहवीं शताब्दी की है। नाहटा वाली प्रति सं० १७२८ की है।

'अनूप संस्कृत पुस्तकालय' की तीनों प्रतियाँ परस्पर मिलती-जुलती हैं और एक-दूसरे की प्रतिलिपि जान पड़ती हैं। नाहटा वाली प्रति में भिन्नता है। पाठ और रूप में भी अन्तर है। इस रूपान्तर में अध्यायों का नाम 'खण्ड' दिया गया है। इन रूपान्तरों में मुख्य रूप से परिमाण का ही अन्तर है। बृहत

रूपान्तर के अधिकांश खण्ड मध्यम रूपान्तर में नहीं हैं। इसी प्रकार मध्यम रूपान्तर के बहुत से खण्ड लघु में नहीं हैं। इतिहास-विरुद्ध कम-अधिक बातें सभी में हैं।

लघुतम रूपान्तर

अभी तक उपर्युक्त तीन रूपान्तरों का ही ज्ञान था, परन्तु नाहटा जी ने इन सबसे छोटा रूपान्तर खोज निकाला। यह रूपान्तर परिमाण में बहुत छोटा है। इसमें १३०० छन्द हैं। इसका लिपि-काल सं० १६६७ है। इसमें अध्यायों का विभाजन नहीं है।

उक्त चारों रूपान्तरों में निम्नलिखित कथा प्रसंग समान हैं—

१. आदि पर्व,
२. दिल्ली-किल्ली कथा,
३. अनंगपाल का दिल्ली-दान,
४. पंग-यज्ञ-विध्वंस,
५. संयोगिता नेम-आचरण,
६. कयमास वध,
७. षट्रितु-वर्णन,
८. कनवज-कथा,
९. बड़ी लड़ाई,
१०. बान-बेध।

उपरोक्त गिने-चुने कथा-प्रसंगों में भी इतिहास-विरुद्ध बातें कम-अधिक मात्रा में मिलती हैं। सभी रूपान्तरों में इतिहास-प्राप्त घटनाओं का अभाव है।

रासो के प्रामाणिक अंश अथवा मूल रासो का पता लगाने के लिए तत्कालीन काव्य-परम्परा, काव्यगत रूढ़ियों भाषा और शैली के आधार पर उसकी प्राप्त-प्रतियों में छान-बीन की आवश्यकता है।

नई खोज में 'रासो' की एक सबसे अधिक प्राचीन प्रति चंद के वंशज नानूराम के पास बतलाई गई है। प्रो० रमाकांत त्रिपाठी ने इसके सम्बन्ध में लिखा है—

"नानूराम के पास 'रासो' की दो प्रतियाँ भी हैं। मैंने दोनों को देखा। एक प्रतिलिपि तो कागज-स्याही तथा अक्षरों को देखते हुए काफी पुरानी ज्ञात होती

है। उसे वे चन्द के पुत्र झल्ल कृत बतलाते हैं।"..........प्रतिलिपि जैसा कि नीचे दिये हुए लेख से ज्ञात होता है, सं० १४५५ में की गई थी—

"सम्वत् १४५५ बरसे शरद् ऋतै आश्विन मासे शुक्लपक्षे उदयात घटी १५ चतुरथी दिवसे लिखित। श्री षरतगच्छ धिराजे, पंडित श्री रूप जी लिखित चेलः श्री शोभाराम श। कपासन मध्ये लिपिकृत।"

परन्तु यह कृति अभी प्रकाश में नहीं आ पाई है। अतः इसके सम्बन्ध में अभी कुछ भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। हरप्रसाद शास्त्री को नाथूराम जी ने जो 'महोवा समय' लिखवाया था यदि वह सं० १४५५ वाली प्रति का है, तो निस्सन्देह जाली है। क्योंकि उसकी भाषा अर्वाचीन है। उससे प्राचीनता का अनुभव नहीं होता। एक उदाहरण लीजिए :—

"एक पहर मैं साँवत सारे।
लोक हजार पाँच तहँ मारे।"

सं० १६४२ की 'नागरी प्रचारिणी सभा काशी' वाली प्रति भी संदिग्ध है। अब तक अगरचन्द नाहटा वाली प्रति ही प्रामाणिक और प्राचीनतम मानी जाती है।

मूल रासो में परिमाण और क्षेपक

उक्त चारों रूपान्तरों के तुलनात्मक अध्ययन से सहज ही यह परिणाम निकाला जा सकता है कि रासो सम्बन्धी उपलब्ध सामग्री संदिग्ध है। उसका मूल रूप अन्धकार के गर्त में पड़ा हुआ है। प्राप्त प्रतियों के लघु तम होने से ही किसी प्रति को प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। यह सम्भावना की जा सकती है कि संकलन कर्ताओं ने जान-बूझकर कुछ अंश छोड़ दिये हों और मुख्य अंशों का संग्रह कर दिया हो। लघु तम संस्करण में ऐतिहासिक अशुद्धियों की संख्या कम रहेगी ही। जितनी ही अधिक घटनाओं का समावेश किया जायेगा, उतनी ही अधिक अशुद्धियों का बढ़ जाना स्वाभाविक है। सही तो यह है कि 'रासो' का मूल रूप विकृत हो चुका है। अतः रासो का छोटा और बड़ा आकार मात्र ही उसकी प्रामाणिकता की कसौटी नहीं बन सकता। उदयपुर के श्री मोहनसिंह पृथ्वीराज रासो के गम्भीर अध्ययन में प्रवृत्त हैं। आप रासो के प्रक्षिप्त अंश को पृथक करने के लिए प्रयत्नशील हैं,

परन्तु अभी आपका कार्य प्रकाश में नहीं आ पाया है, जिससे रासो के मूल और प्रक्षिप्त पर और अधिक कुछ कहा जा सके। यह निश्चय है कि मूल 'रासो' का आकार छोटा रहा होगा। राजस्थान के चारणों और भाटों की यह विशेषता रही है कि वे अपनी तथा अन्य कवियों की कविताएँ कण्ठस्थ कर लेते थे। ऐसी कविताओं में भाषा का परिवर्तन होना स्वाभाविक है। 'रासो' की सम्भवतः यही दशा रही होगी। प्रारम्भ में चंद द्वारा रचित रासो में प्रक्षिप्त छन्द मिलते चले गये और अन्त में वह वृहत रूप धारण कर गया। प्रक्षिप्त अंशों को पृथक कर उसके मूल रूप का पता चलाना अति दुष्कर कार्य है।

४

रासो शब्द की व्युत्पत्ति

प्रश्न १३—'रासो' शब्द की व्युत्पत्ति लिखिए।

अथवा

प्रश्न १४—'रासो' शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों के मत लिखते हुए आप अपना निर्णायक मत दीजिए।

उत्तर—'रासो' की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में भ्रामक धारणाएँ

वीरगाथा-काल में रूपक, विलास, प्रकाश अथवा रासो आदि के नाम से अनेक चरित्र-काव्य लिखे गये। इन काव्यों में 'रासो' के नाम से लिखे गये काव्यों की प्रधानता है। वीरगाथा-काल में वीरगाथाएँ 'रासो' के नाम से प्रचलित थीं। 'रासो' शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में बहुत सी धारणायें प्रचलित हैं। उनमें से कुछ तो सर्वथा काल्पनिक हैं। आगे हम प्रत्येक पर विचार करते हुए निर्णय पर पहुँचने का प्रयास करेंगे।

'रहस्य' से 'रासो' की उत्पत्ति

कविराजा श्यामलदास और डा० काशीप्रसाद 'रासो' शब्द की व्युत्पत्ति 'रहस्य' शब्द से मानते हैं। 'हिन्दी-शब्द-सागर' के सम्पादकों ने भी यही मत व्यक्त किया है। उनके अनुसार 'रासो' में पद्यबद्ध किसी राजा का जीवन-चरित्र और उसमें उसके युद्धों एवं शौर्य का वर्णन रहता है।

'रसायण' से 'रासो' की उत्पत्ति

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी-साहित्य के इतिहास' में 'रासो' शब्द की व्याख्या करते हुये 'रसायण' से 'रासो' की उत्पत्ति मानी है।

उन्होंने अपने कथन का आधार 'वीसलदेव रासो' की निम्न पंक्तियों को बनाया है :—

"बारह सै बहोत्तराँ मँझारि।
जेठ वदी नवमी बुधवारि ।।
" 'नाल्ह' रसायण आरम्भइ।
सारदा तूठी ब्रह्मकुमारि ।।"

शुक्ल जी के अनुसार 'वीसलदेव रासो' में 'रसायण' शब्द काव्य के अर्थ में बारम्बार आया है और यही कालान्तर में रासो बन गया।

'रास' से रासो की उत्पत्ति

'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' द्वारा प्रकाशित 'पृथ्वीराज रासो' के सम्पादकों का मत है कि 'रासो' शब्द संस्कृत के 'रास' अथवा 'रासक' शब्दों से बना। 'रास' शब्द संस्कृत में शब्द-ध्वनि, क्रीड़ा, शृङ्खला-विलास, गर्जन-नृत्य एवं कोलाहल आदि अर्थों में प्रयुक्त होता है। 'रासक' शब्द का प्रयोग काव्य अथवा दृश्य-काव्य के लिये उसी प्रकार होता है, जिस प्रकार 'भारत' शब्द का प्रयोग महाकाव्य के लिये होता था। डा० दशरथ शर्मा के अनुसार रासो मूलतः गानयुक्त नृत्य विशेष से क्रमशः विकसित होते-होते उपरूपक और उपरूपक से वीर रस के पद्यात्मक प्रबन्धों में परिणत हो गया। 'रास' ब्रज प्रान्त का महत्त्वपूर्ण अभिनय है। कृष्ण और राधा की रास-लीला प्रसिद्ध है। अतः 'रास' शब्द से 'रासो' का विकास हुआ है।

'रास' शब्द की व्युत्पत्ति रस धातु से है। रास शब्द का अर्थ गर्जन है। इसमें प्रमुख रूप से उल्लास और उत्साह की भावना रहती है। 'रास' प्रारम्भ में नृत्य के रूप में था। यह नृत्य आज भी वर्तमान है। यही नृत्य धीरे-धीरे परिष्कृत होकर गीत-काव्य और अभिनय से पूर्ण हुआ। इसमें चरित्र का समावेश हो जाने से यह प्रबन्ध के रूप में विकसित हुआ। यही चरित्र प्रधान 'रास' गेय रूपक के तत्त्वों से युक्त होकर अपने कथानक को केवल काव्यमय प्रबन्ध के रूप में लेकर विकसित हुआ और 'रासो' कहलाया।

चन्द्रावली पाण्डेय, पण्डित विश्वनाथप्रसाद तथा आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'रासक' से रासो की व्युत्पत्ति मानी है। पाण्डेय जी के अनुसार 'रासक' संस्कृत के अठारह उपरूपकों में से एक भेद है। रूपक में जिस प्रकार

नायक-नायिका अथवा नट-नटी का सम्वाद होता है, वैसे ही 'पृथ्वीराज रासो' में 'चन्द और गोरी' का संवाद है। शैली की इसी समानता के कारण 'रासक' से रासो निकला। पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र 'रासो' को 'रासक' से व्युत्पन्न तो मानते हैं किन्तु इसका अर्थ काव्य बतलाते हैं। उनका तर्क है कि जिस प्रकार संस्कृत का 'घोटक' शब्द ब्रजभाषा में 'घोड़ों', खड़ी बोली में 'घोड़ा', तथा अवधी में 'घोड़' हो जाता है, उसी प्रकार 'रासक' शब्द ब्रजभाषा में 'रासो', खड़ी बोली में 'रासा' तथा अवधी में 'रास' हो गया।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी 'हिन्दी-साहित्य के आदिकाल' 'में रासो' शब्द की व्याख्या विस्तार से करते हुये लिखते हैं—

"पृथ्वीराज रासो चरित्र-काव्य तो है ही, वह 'रासो' या 'रासक' काव्य भी है। हेमचन्द ने 'काव्यानुशासन' में 'रासक' को गेय रूपक माना···'पृथ्वीराज रासो' यदि सचमुच ही पृथ्वीराज के काल में लिखा गया था, तो उसमें रासक काव्य के कुछ लक्षण भी अवश्य रहे होंगे। 'सन्देश-रासक' का जिस ढङ्ग से प्रारम्भ हुआ है, उसी ढङ्ग से रासो का भी प्रारम्भ हुआ है।······जिस प्रकार 'विलास' नाम देकर चरित्र-काव्य लिखे गये, 'रूपक' नाम देकर चरित्र-काव्य लिखे गये, 'प्रकाश' नाम देकर चरित्र-काव्य लिखे गये, उसी प्रकार 'रासो' या 'रासक' नाम देकर भी चरित्र-काव्य लिखे गये।······स्पष्ट ही रूपक शब्द किसी अभिनेयता की ओर संकेत करता है। यह शब्द केवल इस बात की ओर संकेत करके विरत हो जाते हैं कि ये काव्य रूप किसी समय गेय और अभिनेय था। 'रासक' का तो इस प्रकार का लक्षण भी मिल जाता है। परन्तु धीरे-धीरे ये भी कथा-काव्य या चरित्र-काव्य के रूप में ही याद किये जाने लगे। इनका पुराना रूप क्रमशः भुला दिया गया।" इस प्रकार 'रासक' से रासो बना।

रासउ से रासो की व्युत्पत्ति

'सन्देश-रासक' की निम्नलिखित पंक्ति में 'रासक' के स्थान पर 'रासउ' का प्रयोग हुआ है :—

"कह बहुरुपि विणि बन्दउ रासउ भासियइ"

यह 'रासउ' शब्द 'रासक' और रासो के बीच की कड़ी है। अतः 'रासक' से 'रासउ', 'रासउ' से 'रासो' व्युत्पन्न हुआ।

'राजसूय' से रासो की व्युत्पत्ति

गार्सां-द-तासी ने 'राजसूय' शब्द के आधार पर रासो की व्युत्पत्ति मानी है। राजसूय एक महान् यज्ञ होता है, इसमें बलिदान होता है। 'पृथ्वीराज रासो' में पृथ्वीराज के महान् बलिदान की गाथा है। अतः उसका नाम 'प्रिथुराज-राजसू' अथवा पृथ्वीराज का विशाल बलिदान है।

निष्कर्ष

इस प्रकार 'रासो' की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में भ्रामक कल्पनाएँ भी की गईं। हरप्रसाद शास्त्री तथा विंध्येश्वरीप्रसाद पाठक 'रासो' की उत्पत्ति 'रजायश' से बतलाते हैं। कुछ विद्वान 'रासो' की उत्पत्ति 'रभस' शब्द से मानते हैं, परन्तु इन लोगों ने अपने तर्क का कोई आधार नहीं दिया है। वैसे 'रभस' और 'रासो' शब्द का अर्थ एक ही है। 'रभस' और 'रासो' दोनों ही उत्साह-भावना के द्योतक हैं। 'रासो' के समानार्थक 'रास', 'रासक', 'रासउ', 'रासु', 'राइसौ' आदि अनेकों प्रचलित शब्द हैं। 'रासो' के विकास का इतिहास भी इन्हीं में छिपा हुआ है। निष्कर्ष रूप में इतना ही कहा जा सकता है कि प्रारम्भ में 'रास' एक गान-युक्त नृत्य था। अभिनय के समावेश से वही गेय रूपक हुआ और उसका नाम रासक पड़ा। बाद में 'रासक' के चरित्र-प्रधान कथानक से अभिनय निकल गया और रासो चरित्र-प्रधान कथा-काव्य बन गया।

५

पृथ्वीराज रासो का महाकाव्यत्व

प्रश्न १५—एक सफल महाकाव्य की दृष्टि से 'पृथ्वीराज रासो' की समीक्षा कीजिए।

अथवा

प्रश्न १६—"महाकाव्य के भारतीय-लक्षण ग्रन्थों के समस्त लक्षण 'पृथ्वीराज रासो' में पूर्ण रूप से मिलते हैं, बल्कि यदि देखा जाय तो इन लक्षणों के अनुसार वह और भी अधिक महाकाव्य है।" इस कथन की समीक्षा करते हुए पृथ्वीराज रासो के महाकाव्यत्व पर विचार लिखिए।

अथवा

प्रश्न १७—" 'पृथ्वीराज रासो' को महाकाव्य न कहकर विशालकाय वीर काव्य कहना ही संगत होगा।"—डा० श्यामसुन्दरदास के इस कथन की व्याख्या करते हुए पृथ्वीराज रासो के महाकाव्यत्व पर विचार कीजिए।

उत्तर—महाकाव्य के लक्षण और स्वरूप

'पृथ्वीराज रासो' हिन्दी का सर्वप्रथम विशाल ग्रन्थ और महाकाव्य है। अनेक विद्वान इसके महाकाव्यत्व को स्वीकार करते हुए आये हैं, परन्तु श्री उदयनारायण तिवारी और डा० श्यामसुन्दरदास पृथ्वीराज रासो को महाकाव्य के रूप में स्वीकार नहीं करते। डा० श्यामसुन्दरदास इसे महाकाव्य न मानकर एक विशालकाय वीर काव्य मानते हैं। इसी प्रकार श्री उदयनारायण तिवारी स्थान-स्थान पर कथानक की शिथिलता और घटनाओं की अनेकरूपता का दोष वतलाकर इसके महाकाव्यत्व को स्वीकार नहीं करते। वावू गुलावराय

ने 'पृथ्वीराज रासो' को अपने 'काव्य के रूप' ग्रन्थ में 'स्वाभाविक विकासशील महाकाव्य' (ऐपिक ऑफ ग्रोथ) माना है। हडसन ने ऐपिक ऑफ ग्रोथ के दो विभाग किये हैं—१. ऐपिक ऑफ ग्रोथ, २. ऐपिक ऑफ आर्ट। ऐपिक ऑफ ग्रोथ को उसने एक लेखक की कृति नहीं माना है। सम्भवतः इसी कारण बाबू गुलाबराय ने इसे 'विकासशील महाकाव्य' कहा है। मोतीलाल मेनारिया इसमें महाकाव्य की भव्यता और दृश्य काव्य की सजीवता मानते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे एक सफल काव्य माना है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'रासो' के सम्पादकों ने उसे 'साहित्य-दर्पण' में मिलने वाले महाकाव्य के लक्षणों से युक्त महाकाव्य कहा है। डा० विपिनविहारी त्रिवेदी ने कतिपय त्रुटियों का निर्देशन करते हुए भी पृथ्वी-राज रासो को निर्विवाद रूप से पृथ्वीराज रासो के महाकाव्यत्व को स्वीकार किया है।

डा० श्यामसुन्दरदास और उदयनारायण तिवारी 'पृथ्वीराज रासो' को महाकाव्य नहीं मानते।

डा० श्यामसुन्दरदास ने अपने 'हिन्दी-साहित्य' नामक ग्रन्थ में पृष्ठ ८१-८२ पर रासो के महाकाव्य के सम्बन्ध में विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए लिखा है—

"वीरगाथा सम्बन्धी प्रबन्ध काव्यों में दूसरी प्रसिद्ध पुस्तक चन्दवरदाई कृत 'पृथ्वीराज रासो' है। इस विशाल ग्रन्थ को महाकाव्य की उस श्रेणी में नहीं गिन सकते, जिसमें यूनान के प्रसिद्ध महाकाव्य इलियड आदि तथा भारतवर्ष के रामायण, महाभारत आदि की गणना होती है।...यह सत्य है कि 'पृथ्वीराज रासो' भी एक विशाल ग्रन्थ है और यह भी सत्य है कि महाकाव्य की भाँति इसमें युद्ध की प्रधानता है। इतने ही साम्य के आधार पर उसे महाकाव्य कहलाने का गौरव प्राप्त नहीं हो सकता। महाकाव्य में जिस व्यापक तथा गम्भीर रीति से जातीय चित्तवृत्तियों का स्थायित्व मिलता है, उनका 'पृथ्वीराज रासो' में सर्वथा अभाव है। महाकाव्य में यद्यपि एक प्रधान युद्ध होता है; तथापि उसमें दो विभिन्न जातियों का संघर्ष दिखाया जाता है और उसका परिणाम भी व्यापक तथा विस्तृत होता है। 'पृथ्वीराज रासो' में न तो कोई प्रधान युद्ध है और न किसी महान् परिणाम ही का

उल्लेख है। सबसे प्रधान बात तो यह है कि 'पृथ्वीराज रासो' में घटनाएँ एक दूसरे से असम्बद्ध हैं, तथा कथानक भी शिथिल और अनियमित है, महाकाव्यों की भाँति न तो घटनाओं का किसी एक आदर्श में संक्रमण होता है और न अनेक कथानकों की एकरूपता ही प्रतिष्ठित होती है। ऐसी अवस्था में 'पृथ्वीराज रासो' को महाकाव्य न कहकर विशालकाय काव्य कहना ही संगत होगा।"

डा० उदयनारायण तिवारी 'पृथ्वीराज रासो' को महाकाव्य के लक्षणों पर सफल मानते हुए न मानने की बात कहते हैं। उन्होंने अपने ग्रन्थ 'वीरकाव्य में लिखा है :—

"इसमें सन्देह नहीं कि लक्षण ग्रन्थों के अनुसार रासो को महाकाव्य ही कहना उपयुक्त होगा। यह ६९ समयों में विभक्त है। इसमें कवित्त, दूहा, तोमर, त्रोटक, गाहा, आर्या आदि छन्दों का प्रयोग किया गया है। इसके नायक पृथ्वी-राज क्षत्रिय-कुल-भूषण और वीर पुरुष हैं। अन्य वर्णन-विस्तार भी, जो महा-काव्य के लिये अनिवार्य हैं, पृथ्वीराज रासो में मिल जाते हैं। किन्तु जहाँ तक महाकाव्य में जातीय चित्तवृत्ति तथा कार्य-कलाप की अभिव्यक्ति का प्रश्न है, रासो को विशाल वीर काव्य ग्रन्थ कहना ही उचित है। स्थान-स्थान पर इसके कथानक में शिथिलता है।"

उक्त दोनों विद्वानों में से डा० दास 'इलियड' को आदर्श मानकर 'पृथ्वीराज रासो' के महाकाव्य को स्वीकार नहीं करते। लेकिन तिवारी जी की स्वीकृति में भी अस्वीकृति है। चन्दवरदाई से पूर्व संस्कृत और प्राकृत में महाकाव्यों की एक पुष्ट परम्परा चली आ रही थी। चन्द भारतीय संस्कृति एवं भारतीय काव्य-परम्परा के कवि थे। अतः भारतीय काव्यशास्त्र में बतलाये गये महाकाव्य के समस्त लक्षण पृथ्वीराज रासो में मिलते हैं और वह हिन्दी का प्रथम विशाल महाकाव्य है। आगे हम भारतीय काव्य-शास्त्रियों तथा पाश्चात्य विद्वानों द्वारा दिये गये महाकाव्य के लक्षणों पर दृष्टि रखते हुए 'पृथ्वीराज रासो' के महा-काव्यत्व का विश्लेषण करेंगे।

महाकाव्य के लक्षण

पाश्चात्य विद्वानों द्वारा बतलाये गये लक्षण

१. महाकाव्य विशाल आकार का वर्णात्मक काव्य होता है।

२. महाकाव्य में जातीय भावों की प्रधानता होती है।
३. महाकाव्य की विषयवस्तु लोक-विश्रुत या ऐतिहासिक होती है।
४. महाकाव्य के पात्र शौर्य-गुण-प्रधान होते हैं। दैवी पात्रों का भी कथानक में योग रहता है।
५. महाकाव्य में नायक को केन्द्र बनाकर सभी कथावस्तु एक सूत्र में पिरोई जाती है।
६. इसमें एक ही छन्द का प्रयोग होना चाहिये।

भारतीय काव्य-शास्त्रियों द्वारा महाकाव्य के लक्षण

भारतीय काव्य शास्त्रियों ने बहुत गम्भीरता और विस्तार से महाकाव्य के लक्षणों पर विचार किया है। 'साहित्य-दर्पण' के श्लोक ६१३-६२२ तक आचार्य विश्वनाथ ने महाकाव्य के जो लक्षण दिये हैं, वे सर्वमान्य हैं :—

१. महाकाव्य सर्गबद्ध होना चाहिये। न बहुत छोटे और न बहुत बड़े आकार के आठ से अधिक सर्ग होने चाहिए।
२. कथानक का प्रारम्भ नमस्कार, वन्दना अथवा वस्तु-निर्देश से होना चाहिए।
३. विषयवस्तु के आधार पर ही सर्ग का नाम होना चाहिए।
४. महाकाव्य का नामकरण कथावस्तु, नायक अथवा कवि के नाम पर होना चाहिए।
५. सर्ग के अन्त में अगले सर्ग की कथा की सूचना होनी चाहिए।
६. प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द होना चाहिए। सर्गांत में छन्द भिन्न होना चाहिए। किसी-किसी सर्ग में अनेक छन्द भी हो सकते हैं।
७. नायक देवता अथवा धीरोदात्त गुणों से युक्त उच्च कुलोत्पन्न क्षत्रिय होना चाहिए।
८. शृंगार, वीर और शान्त रसों में से कोई एक रस अङ्गी तथा अन्य रस सहायक रूप में होना चाहिए।
९. नाटक की समस्त संधियाँ होनी चाहिए।
१०. धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष में से कोई एक फल होना चाहिए।
११. कहीं खलों की निन्दा और कहीं सज्जनों का गुण कीर्तन होना चाहिए।

१२. महाकाव्य का कथानक लोक-विश्रुत अथवा इतिहास-प्रसिद्ध होना चाहिए।

१३. सांगो-पांग रूप में देश-काल एवं घटनाओं का वर्णन होना चाहिए। सन्ध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, प्रदोष, अन्धकार, दिन, प्रभात, शिकार, ऋतु, वन-पर्वत, संयोग-वियोग, नगर, युद्ध, यात्रा, विवाह आदि के विस्तृत वर्णन महाकाव्य में रहना आवश्यक है।

महाकाव्य के उपर्युक्त लक्षणों की कसौटी पर 'पृथ्वीराज रासो'

पाश्चात्य दृष्टिकोण से 'पृथ्वीराज रासो' एक वृहदाकार वर्णात्मक कथा-काव्य है। इसमें जातीय भावों का उत्कर्ष दिखाया गया है। पृथ्वीराज जाति और देश की रक्षा के लिए शाहबुद्दीन गोरी को वारम्वार पराजित करते हैं और जातीय भाव की रक्षा में ही उनका बलिदान होता है। अन्तिम हिन्दू सम्राट पृथ्वीराज चौहान का वृत्त लोकप्रिय, लोक-विश्रुत और इतिहास प्रसिद्ध है। कथानक के नायक पृथ्वीराज में शौर्य-गुण की प्रधानता है। वे बड़े शौर्य और उत्साह से युद्धों में भाग लेते हैं। सारी कथा और उसके अन्तर्गत घटनाएँ पृथ्वीराज को लेकर ही एक सूत्र में पिरोई गई हैं। शैली में शालीनता और उदात्तता है। अतः पाश्चात्य दृष्टिकोण से हम 'पृथ्वीराज रासो' को सफल महाकाव्य कहेंगे। हम डा० दास के इस तर्क को मानने को तैयार नहीं हैं कि 'पृथ्वीराज रासो' गम्भीर रीति से जातीय चित्तवृत्तियों का अभाव है। शाहबुद्दीन से अनेक बार टक्कर लेना और उसे पराजित करना और फिर सम्मान रक्षा के लिए अपना बलिदान कर देने से बढ़कर नायक का और अधिक बड़ा आदर्श हो ही क्या सकता था। तिवारी जी के कथन के अनुसार रासो की घटनाएँ अवश्य अव्यवस्थित हैं। कुछेक स्थलों पर कथानक भी शिथिल हो गया है। परन्तु यह भी सत्य है कि सारी घटनाएँ कथानक के नायक पृथ्वीराज से एक सूत्र में पिरोई हुई हैं। अतः इस दृष्टि से भी हम रासो के महाकाव्यत्व पर प्रश्न-चिन्ह लगाना उचित नहीं समझते। परन्तु जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि पृथ्वीराज महाकाव्य के भारतीय आचार्यों द्वारा दिये गये लक्षणों की कसौटी पर पूर्ण रूप से सफल है। अतः हम इसी कसौटी पर 'पृथ्वीराज रासो' के महाकाव्यत्व का विश्लेषण करेंगे।

विशालकाय चरित्रात्मक महाकाव्य

कथा-विस्तार और विशालता की दृष्टि से 'पृथ्वीराज रासो' विशाल चरित्रात्मक महाकाव्य है। इसमें ढाई हजार पृष्ठ और सोलहसै से भी अधिक छन्द हैं। सारा कथानक समयों (सर्गों, अध्यायों) में विभाजित है। समयों की संख्या उनहत्तर है। इसमें कथानक के उत्कर्ष के साथ जातीय उत्कर्ष सामने आ जाता है। प्रवन्धात्मकता की दृष्टि से कथानक की शिथिलता का दोष लगाया जाता है। इसका कारण घटनाओं का अव्यवस्थित होना है और यह दोष प्रक्षिप्त अंशों के प्रवेश पा जाने का ही परिणाम है, परन्तु यह भी सत्य है कि सारी कथायें चरित्र-नायक पृथ्वीराज से सम्वन्धित हो गई हैं। चन्द ने कथानक के मार्मिक स्थलों का भी अनुभूतिपूर्ण वर्णन किया है। कथा में रोचकता वनी रहती है। अतः कथानक की विशाल-योजना और वस्तु-गठन की दृष्टि से 'पृथ्वीराज रासो' सफल महाकाव्य है।

लोक-विश्रुत ऐतिहासिक कथानक

महाकाव्य का कथानक लोक-विश्रुत और इतिहास प्रसिद्ध होना चाहिए। इस दृष्टि से पृथ्वीराज रासो को निर्विवाद रूप से एक सफल महाकाव्य कहा जा सकता है। पृथ्वीराज और उनसे सम्वन्धित कथाएँ लोक-विश्रुत और इतिहास प्रसिद्ध हैं। जयचन्द, भीमराव चालुक्य, संयोगिता, परमर्दि चन्देल, कयमास, शाहबुद्दीन गोरी आदि इतिहास-विश्रुत पात्र हैं। ऐतिहासिक वृत्त के साथ जो कल्पना-प्रसूत घटनाएँ ली गई हैं, वे भी जन-मानस में लोक-श्रुतियों के रूप में पाई जाती हैं।

प्रारम्भ में मंगलाचरण

'मंगलाचरण' स्तुति और वस्तु-निर्देश से कथानक का प्रारम्भ होना भारतीय महाकाव्यों की विशेषता रही है। चन्द के कथानक प्रारम्भ करने से पूर्व क्रमशः ओंकार (ब्रह्म) गुरु, सरस्वती, विष्णु, शिव तथा ब्रह्मा को नमस्कार करते हुए मंगलाचरण प्रस्तुत किया है—

"ॐ आदिदेव प्रनम्य नम्य गुरयं वानीयं वन्दे पयं।
सिष्टं धारन धारयं, वसुमती लच्छीस चर्नाश्रयम्॥
तं गुं तिष्टति ईस दुष्ट दहनं सुर्नाथ सिद्धि श्रयं।
थिर चर जंगम जीव चंद नमयं सर्वेस वर्दामयं॥"

विभिन्न स्तुतियों के पश्चात् रासोकार वस्तु-निर्देश पर आ जाता है—

"दानव कुल क्षत्रीय, नाम ढ़ुँढा रष्षस वर।
तिहि सुजोति प्रथिराज, सूर सामंत अस्ति भर।
जीह जोति कवि चंद, रूप संजोगि भोगि भ्रम।
इक्क दीह उपन्न, इक्क दीहै समाय क्रम।
जथ्य कथ्य होइ निर्भय, जोग-भोग राजन लहिय।
वज्रंग बाहुर अरि दल मलन, तासु कीत्ति चंदह कहिय।"

धीरोदात्त नायक

भारतीय महाकाव्य के लक्षणों में धीरोदात्त नायक का होना अनिवार्य माना गया है। 'रासो' के कथानक के नायक अन्तिम हिन्दू-सम्राट पृथ्वीराज चौहान हैं। वे धीरोदात्त नायक के समस्त गुणों से सम्पन्न हैं। वे अपनी आन के दृढ़व्रती, क्षमा-युक्त, वीर, गम्भीर और धीर स्वभाव वाले, कुलीन, तेजस्वी, प्रेमी, सुशील और सौन्दर्य-सम्पन्न हैं। निम्न उदाहरण में उनके धीरोदात्त नायक के समस्त गुण प्रकट हुए हैं। शुक पद्मावती से उनके उदात्त गुणों का वर्णन करता हुआ कहता है—

"संभरि नरेस चहुआंन थांन।
प्रथिराज तहां राजंत भांन॥
वैसंह वरीस सोडस नरिंद।
आजानु बाहु भुअलोक यंद॥
संभरि नरेस सोमेस पूत।
देवत्त रूप अवतार धूत॥
× × ×
जिहि पकरि साह साहाव लीन।
तिहुँ वेर करिय पानीप हीन॥
वलि वेन करन जिमि दान मान।
सत सहस सील हरिचंद समान॥
साहस सुक्रंम विक्रम जुवीर।
दांनव सुमत्त अवतार धीर॥
दसच्यार जानि सब कला भूप।
कंद्रप्प जानि अवतार रूप॥"

यहाँ धीरोदात्त नायक का शास्त्रोक्त रूप सामने आ जाता है।

आठ से अधिक सर्ग

'पृथ्वीराज रासो' में ६९ समय या सर्ग हैं। सर्गों में अनुपात का अभाव है। ६१वें समय में जहाँ २२५३ छन्द हैं, वहाँ १६वाँ समय १८ छन्दों ही का है। सर्गों के कलेवर में यह अन्तर कथानक-गठन में दोष बन गया है।

प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द का प्रयोग

महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द का विधान किया गया है। सर्ग के अन्त में परिवर्तन होना चाहिए। किसी सर्ग में अनेक प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया जा सकता है। 'रासो' में महाकाव्य के इस नियम का पालन नहीं हुआ है। प्रत्येक सर्ग में अनेक छन्दों का प्रयोग हुआ है। परन्तु छन्दों के आधिक्य और शीघ्रता से छन्द परिवर्तन के कारण 'रासो' में कहीं भी अस्वाभाविकता और अरोचकता नहीं आने पाई है।

सर्गान्त में आगे की कथा की सूचना

महाकाव्य के सर्गों में आगे के सर्ग की कथा-सूचना का विधान है। इसके द्वारा कथानक में पूर्वापर शृंखला जुड़ी रहती है। रासो के बिखरे हुए कथानक में रासोकार ने सर्गान्त में आगे की कथा की सूचना देकर इस नियम का पालन किया है। बहुत से समय (सर्ग) स्वतन्त्र भी हैं। उदाहरण के लिए सर्ग समय संख्या ५, १८, २०, २५, ३१, ४१, ५९ आदि को लिया जा सकता है।

वर्ण्य कथा के आधार पर समय (सर्ग) का नामकरण

'पृथ्वीराज रासो' के प्रत्येक समय सर्ग का नाम वर्ण्य-कथा के आधार पर है। उदाहरण के लिए 'नाहर राय समय', 'चित्ररेखा समय', 'पद्मावती समय', 'अनंगपाल समय', 'रेवा-तट समय' आदि समयों को लिया जा सकता है। कुछ सर्गों (समयों) के नाम प्रस्ताव और 'कथा' वर्ण्य-विषय के ही आधार पर हैं। जैसे 'दिल्ली-दान-प्रस्ताव', 'संयोगिता नाम प्रस्ताव', 'बान-वेध प्रस्ताव', 'शुक चरित्र प्रस्ताव' और 'हुसेन कथा', 'होली कथा', 'मेवाती-मुगल कथा', 'तरुण कथा' आदि।

१०

नामकरण

महाकाव्य का नामकरण विषय-वस्तु, कवि अथवा चरित्र-नायक के नाम के आधार पर होना चाहिए। 'पृथ्वीराज रासो' का नामकरण चरित्र नायक पृथ्वीराज के नाम पर है। कथानक में आद्यान्त पृथ्वीराज का यश एवं शौर्य पूर्ण चरित्र वर्णित है। 'रासो' शब्द चरित्र का वोधक है। अतः 'पृथ्वीराज रासो' नामकरण सर्वथा उपयुक्त है।

रस-योजना की दृष्टि से महाकाव्यत्व

पृथ्वीराज रासो में नव-रस की योजना है। परन्तु अंगी रस वीर-रस है। वीर-रस के साथ में संयोग-शृङ्गार की धारा प्रवाहित हुई है, परन्तु शृङ्गार-रस सहायक ही रहा है। सारा काव्य आद्यान्त वीर-रस प्रधान है। युद्धों की प्रधानता के कारण वीर-रस अंगी-रस है।

नाटक की सन्धियाँ

भारतीय महाकाव्य के लक्षणों में कथानक में नाटक की संधियों की अन्विति आवश्यक मानी गई है। 'पृथ्वीराज रासो' में नाटकीय संधियों का प्रयोग कुछ शिथिल है। किन्तु सभी संधियों का निर्वाह मिल जाता है—

१. **मुख संधि**—पृथ्वीराज, पृथ्वीराज के सामन्त, चन्द तथा संयोगिता का जन्म विषयक वर्णन प्रथम समय में हुआ है। यहीं मुख संधि मिल जाती है।

२. **प्रतिमुख संधि**—'समय' संख्या चार, पाँच तथा नौ में पृथ्वीराज के वंश-प्रसार का वर्णन और कथानक के उद्देश्य की ओर संकेत है। यहाँ प्रतिमुख संधि है।

३. **गर्भ संधि**—शाहवुद्दीन के साथ पृथ्वीराज के हुए अनेकों युद्ध गर्भ-संधि के अन्तर्गत हैं।

४. **विमर्श संधि**—पृथ्वीराज के पराजित होकर वन्दी वनने में विमर्श संधि है।

५. **निर्वहण संधि**—शब्द-वेधी वाण से शाहवुद्दीन का वध कर पृथ्वीराज और चन्द दोनों परस्पर कटार मारकर अपने प्राणों का उत्सर्ग कर देते हैं। यहीं कथानक के अन्त के साथ में निर्वहण संधि है।

इस प्रकार खोजने पर पृथ्वीराज रासो में पाँचों नाटकीय संधियाँ मिल जाती हैं, परन्तु संधि-योजना में रासोकार को पूर्ण सफलता नहीं मिली है।

चतुर्वर्ग की प्राप्ति

महाकाव्य में अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष में कोई एक फल होना आवश्यक है। पृथ्वीराज रासो में मोक्ष साध्य है। परन्तु अर्थ, धर्म और कर्म की भी उपेक्षा नहीं है—

"पार्वहि सु अरथ अरु ध्रम्म काम।
निरमान मोष पार्वहि सुधाम।"

खलों की निन्दा और सज्जनों की स्तुति

'पृथ्वीराज रासो' में खलों की निन्दा और सज्जनों की स्तुति तत्व का भी पालन हुआ है। चन्द पहले 'समय' के छन्द संख्या ५१-५२ में खल और सज्जन दोनों का सत्कार करते हैं—

"सरस काव्य रचना रचौं, खल जन सुनि न हसंत।
जैसे सिंधुर देखि मग, स्वान स्वभाव भुसंत॥
तौ पनि निमित्त सुजन गुन, रचिये तन मन फूल।
जूका भय जिय जानि कैं, क्यों डारियै दुकूल॥"

सांगोपांग वस्तु-वर्णन

महाकाव्य में संध्या, सूर्य, चन्द्रमा, रात्रि, अन्धकार, दिन, प्रभात, आखेट, वन, पर्वत, सागर, संयोग-वियोग, नगर, युद्ध-विवाह आदि के व्यापक और सांगोपांग वर्णन होने चाहिए। 'पृथ्वीराज रासो' में ऐसे वर्णनों की अधिकता है। रासोकार ने रूपक-योजना द्वारा सात हजार वर्णन प्रस्तुत किये हैं। वर्णनों में सर्वत्र विशालता और रोचकता है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन और विद्वानों के मतों का विश्लेषण करने के पश्चात् सहज ही यह परिणाम निकाला जा सकता है कि 'पृथ्वीराज रासो' में भारतीय काव्य-शास्त्र की दृष्टि से महाकाव्य के समस्त लक्षण मिलते हैं। रासो में यह महान सन्देश है कि पृथ्वीराज की तरह सम्मान और मातृ-भूमि की रक्षा के लिए जीवन भी उत्सर्ग कर देना चाहिए। इस महान सन्देश को लिए 'रासो' महाकाव्य के रूप में सदैव अमर रहेगा। आचार्य विश्वनाथ जी ने महाकाव्य के जो लक्षण वतलाये हैं, वे सभी 'पृथ्वीराज रासो' में घटित होते हैं। अतः 'पृथ्वीराज रासो' एक सफल महाकाव्य कहा जाता है।

६

कथा-प्रवाह और प्रबन्ध-कौशल

प्रश्न १८—कथा-प्रवाह और प्रबन्धात्मकता की दृष्टि से 'पृथ्वीराज रासो' की सम्यक् समीक्षा कीजिए।

अथवा

प्रश्न १९—"पृथ्वीराज रासो में मूलकथा के साथ विभिन्न कथाओं के विकास में भी रासोकार की प्रबन्ध-कुशलता देखी जा सकती है। कथा-प्रवाह में रासोकार ने कथानक के अनुभूतिपूर्ण मार्मिक स्थलों को भी परखा है।" इस कथन के पक्ष या विपक्ष में अपना सटीक मत दीजिए।

स्मृति-संकेत

१. 'रासो' में विभिन्न स्वतन्त्र घटनाएँ होने पर भी उनमें एकसूत्रता और प्रबन्ध-कौशल है।
२. रासोकार की दृष्टि पृथ्वीराज के जीवन की सम्पूर्ण कथा न कहकर उनके अन्तिम जीवन पर रही है। अतः शेष घटनाओं का संकेत और संक्षिप्त वर्णन ही आया है।
३. 'रासो' में मुख्य रूप से चार ही घटनाओं का वर्णन है, जो कथानक प्रवाह के सूत्र को मिलाकर कवि के प्रबन्ध-कौशल का परिचय देती हैं। ये घटनाएँ हैं—कयमास वध, पृथ्वीराज-जयचन्द-युद्ध, शाहबुद्दीन पृथ्वीराज-युद्ध और शाहबुद्दीन-पृथ्वीराज का अन्त।
४. इसके साथ ही वस्तु-वर्णन के रूप में अनेकों प्रसंग आये हैं, परन्तु उनका सम्बन्ध-सूत्र कथानक के नायक पृथ्वीराज से अविच्छिन्न रहा है।

५. कथानक में रोचक, मार्मिक और अनुभूति पूर्ण प्रसंगों के समावेश और वर्णन में रासोकार का प्रबन्ध-कौशल निखरा है।

६. अनुभूतिपूर्ण मार्मिक और रोचक वर्णन कथानक की शिथिलता की ओर ध्यान नहीं जाने देते।

७. 'पृथ्वीराज रासो' में कथा-प्रवाह और प्रबन्ध-कौशल है। स्वतन्त्र घटनाओं के वर्णन में भी रासोकार ने अपने प्रबन्ध-कौशल से एक-सूत्रता ला दी है।

उत्तर—महाकाव्य में प्रबन्धात्मकता और कथा-प्रवाह का महत्त्व

प्रवन्धकार कवि के कौशल का पता यह देखने से चलता है कि प्रबन्ध के अन्तर्गत उसने घटनाओं और कथा-प्रसङ्गों का विस्तार किस प्रकार किया है, तथा कथानक में घटनाओं की एकसूत्रता किस प्रकार स्थापित हुई है। साथ ही कवि कथानक के अनुभूतिपूर्ण मार्मिक स्थलों को पहचानने में कहाँ तक सफल हुआ है। प्रवन्धात्मकता के लिये यह आवश्यक है कि घटनाओं का पूर्वापर सम्बन्ध और तारतम्य बना रहे, साथ ही कथानक की रोचकता भी नष्ट न होने पाये। पृथ्वीराज रासो घटना-बहुल एक विशाल महाकाव्य है। इसकी अधिकांश घटनाएँ स्वतन्त्र हैं। उनमें पूर्वापर सम्वन्ध की भी स्थापना नहीं हो पाती। इस कारण कथानक में जहाँ कहीं शिथिलता आ गई है, वह अनेक प्रक्षिप्त अंशों और घटनाओं के प्रवेश पा जाने के कारण है। अपने मूल रूप में 'रासो' में कथा-प्रवाह, प्रवन्धात्मकता, रोचकता और मार्मिकता है।"

वस्तु-चयन में उद्देश्य

रासोकार का उद्देश्य पृथ्वीराज की सम्पूर्ण कथा कहना नहीं है। उसकी दृष्टि पृथ्वीराज के अन्तिम जीवन को प्रकाशित करने की ओर ही रही है। चन्द ने पृथ्वीराज के जीवन का परिचय केवल एक ही छन्द में दे दिया है। पृथ्वीराज के बाल्यकाल का संकेत भर मिल जाता है। वह सोमेश्वर का पुत्र, वहिलावन का निवासी था। उसका बचपन अजमेर में व्यतीत हुआ। इसी प्रकार पृथ्वीराज द्वारा कालिंजर को जलमग्न करने, चन्देल शासक परमर्दि को पराजित करने, गुजरात के भीम चालुक्य पर विजय प्राप्त करने और शाहबुद्दीन को कई बार हराने के संकेत मिल जाते हैं।

मुख्य घटनाएँ

पृथ्वीराज रासो में मुख्य रूप से निम्नलिखित चार घटनाओं का ही वर्णन हुआ है—

१. कयमास-वध,
२. पृथ्वीराज-जयचन्द युद्ध,
३. शाहबुद्दीन-पृथ्वीराज युद्ध,
४. शाहबुद्दीन और पृथ्वीराज का अन्त।

शाहबुद्दीन-पृथ्वीराज युद्ध और दोनों का अन्त ये दोनों घटनाएँ एक-दूसरे की अति निकटवर्ती हैं और एक ही दृढ़ सूत्र में पिरोई हुई हैं। अन्तिम घटना में पृथ्वीराज के शौर्य और सम्मान की पूर्ण रक्षा हुई है। कवि नायक को पराजित नहीं छोड़ना चाहता था। अन्य घटनाओं को परस्पर में ऊपर से कोई सम्बन्ध दिखाई नहीं देता। कयमास-वध की घटना पृथ्वीराज-जयचन्द युद्ध अथवा शाहबुद्दीन-पृथ्वीराज युद्ध से सम्बन्धित नहीं है।

'कयमास-वध' 'समय' जयचन्द का राजसूय तथा संयोगिता का प्रेमानुष्ठान और प्रथम 'पृथ्वीराज का कन्नौज गमन' समयों के बीच का है। पहले समय में पाठक को संयोगिता के प्रेमानुष्ठान का पता लग जाता है और बाद के 'समय' में पृथ्वीराज-संयोगिता को प्राप्त करने के लिए कन्नौज जाता है। 'कयमास-वध' समय दोनों समयों के बीच की कड़ी बन जाता है। कयमास-वध की प्रासंगिक कथा को रासोकार बड़े कौशल से अधिकारिक कथा से जोड़ देता है। कयमास के वध क़ी सूचना पाकर उसकी पत्नी चन्द से मृत-पति का शव दिलाने का अनुरोध करती है। पृथ्वीराज इस शर्त पर शव ले जाने की अनुमति देता है कि चन्द उसे छद्म वेश में कन्नौज ले जावेगा।

पृथ्वीराज-जयचन्द-युद्ध और शाहबुद्दीन-पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध की असम्बद्धता को रासोकार बड़े कौशल से दूर कर देता है। जयचन्द-युद्ध के पश्चात् पृथ्वीराज संयोगिता के साथ केलि-विलास में राज-काज भूल जाता है। उसकी मोह-निद्रा तभी दूर हो पाती है, जबकि शाहबुद्दीन पूरी शक्ति के साथ चढ़कर सिर पर आ जाता है। इस मोह-निद्रा में पड़े रहने के कारण ही पृथ्वीराज को पराजय मिलती है। कथानक के अन्त में रासोकार 'कयमास-वध' तथा संयोगिता के केलि-विलास का एक सार-गर्भित सामंजस्य प्रस्तुत करता है।

चन्द पृथ्वीराज से कहता है कि जिस विलासिता के गर्त में गिरने से कयमास की दुर्गति हुई, उसी विलासिता के गर्त में तुम गिरे, तो अब उसके परिणाम से कैसे वच सकते हो। तुम्हारी कयमास की तरह गति होनी ही है। इस दशा में यदि तुम शत्रु के भी प्राण ले सको, तो यही वहुत है। चन्द का निम्न कथन ही सारी कथाओं को एक सूत्र में पिरो देता है—

"प्रथमिराज कमांन वांन द्रिढ़ मुठ्ठि गहहि कर।
जिन विसमउ मन करहि भुअपत्ति अप्पु वर ॥
जि कछु किअउ कयमास किअउ अप्पनउ सु पायउ।
सोइ संभरी नरेसु तुहिं ज अम्मरपुर आयउ ॥
विधिना विधान मेटइ कवन दीनमान दिन पाइयइ।
सर एक फोरि संभरि धनी सत्तहिं सबुद गमाइयइ ॥"

रासोकार ने कथा को 'समयों' में इस प्रकार विभाजित किया है, कि उसका प्रवन्ध-कौशल देखते ही वनता है। विभिन्न कथाओं के विकास में कवि ने अपने प्रवन्ध-कौशल का परिचय दिया है। सारी रचना एक सुनिश्चित आधार पर खड़ी है और कोई भी प्रसंग विषयान्तर उपस्थित नहीं करता। सभी प्रसङ्ग नायक की प्रधान कथा से जुड़े हुए हैं।

कथा-प्रवाह और कथा-प्रवाह में अनुभूतिपूर्ण मार्मिक स्थल

'पृथ्वीराज रासो' के कथा-प्रवाह में रोचकता और मार्मिकता है। वर्णात्मक कथानक के बीच-बीच में रासोकार में मार्मिक प्रसङ्गों की उद्भावना करने की क्षमता है। इन अनुभूतिपूर्ण प्रसङ्गों से नीरस ऐतिहासिक वृत्त भी मार्मिक हो गये हैं। कथानक में कथा-प्रवाह की एकसूत्रता देखी जा सकती है। प्रारम्भ में रासोकार चरित्र-नायक पृथ्वीराज के वाल्यकाल का परिचय देकर बड़े लाघव से उनको कर्मक्षेत्र में उतार देता है। कथानक का सूत्र गुजरात के भीमदेव और आवू-नरेश सलष तक फैल जाता है। सलष की पुत्री इच्छिनी के लिए पृथ्वीराज और भीमदेव में संघर्ष होता है। पृथ्वीराज विजयी होता है और इच्छिनी से उसका विवाह हो जाता है। इसके पश्चात् नट तथा हंस के द्वारा शशिव्रता का सूत्र पृथ्वीराज से जुड़ जाता है। शिव-पूजन को जाती हुई शशिव्रता का हरण पृथ्वीराज करता है। परिणामस्वरूप पृथ्वीराज और जयचन्द का संघर्ष होता है। शशिव्रता का विवाह जयचन्द के भतीजे से होने वाला था।

यह घटना आगे आने वाले जयचन्द और पृथ्वीराज के संघर्ष की पृष्ठभूमि बन जाती है। इसके पश्चात् मृगया तथा अनेक युद्धों और विवाहों से चरित्र-नायक का चरित्र विकसित होता है। कयमास-वध की घटना का सूत्र भी पृथ्वीराज जयचन्द के संघर्ष से जुड़ जाता है। पृथ्वीराज चन्द के कहने से कयमास का शव उसकी पत्नी को इसी शर्त पर देता है कि चन्द उसके साथ कन्नौज जायगा। संयोगिता अपहरण के पश्चात् की समस्त घटनाएँ शाहवुद्दीन-पृथ्वीराज संघर्ष और उसके परिणाम की ओर उन्मुख होती है। संयोगिता, पद्मावती आदि के अपहरण में पृथ्वीराज की सैनिक शक्ति क्षीण कर चुके थे। पृथ्वीराज का विलास में डूब जाना राज्य में अव्यवस्था एवं असन्तोष को जन्म देता है। पृथ्वीराज की मोह-निद्रा तब दूर होती है, जब शाहवुद्दीन चढ़कर सिर पर आ जाता है। पृथ्वीराज की पराजय और कैद होकर गजनी ले जाये जाने से कथानक बड़ी तीव्र गति से चर्मान्त की ओर बढ़ जाता है। पृथ्वीराज के शब्द-वेधी वाण से शाहवुद्दीन का वध और इसके तुरन्त बाद ही परस्पर में कटार मारकर चन्द और पृथ्वीराज का अन्त कथानक को बड़ा ही गौरवमय और मार्मिक बना देता हैं। इससे अन्त में चरित्र नायक के गौरव और सम्मान की पूर्ण रूप से रक्षा हो गई है।

रासोकार को कथानक के मार्मिक स्थलों की पहचान है। उसने कथानक के बीच-बीच में अनेकानेक अनुभूतिपूर्ण मार्मिक प्रसङ्गों की उद्‌भावना की है। पृथ्वीराज के विवाहों और राजकुमारियों के अनुराग-वर्णन के प्रसङ्ग बड़े ही मार्मिक और अनुभूतिपूर्ण बन पड़े हैं। पृथ्वीराज की वाल-क्रीड़ा का सुन्दर चित्र उपस्थित करता हुआ रासोकार कहता है—

"नह तलय दूभ थह विन रहत,
हुलसि हुलसि उठि-उठि गिरत ॥"

इच्छिनी की वयः सन्धि का स्निग्ध चित्र निम्न उदाहरण में दृष्टव्य है। विभिन्न उपमाओं से युक्त चित्र में सर्वथा नवीनता है—

"वाले तन्वय मुग्ध मध्यह इमं स्वयनाम वैं संधयं।
मुग्धे मध्यमश्याम वामति इमं मध्याह्न छाया पगं ॥
वालप्पन तन मध्य जोवन इमं सरसीअ अग्गी जलं।
अंग मध्य सुनीर झलमल ससी सुम्भेसु सै सव्वयं ॥"

पृथ्वीराज का संयोगिता से साक्षात्कार होता है । वह उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग के सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाता है । उसे संयोगिता का सारा शरीर उपमानों से ही बना हुआ लगता है—

"कुंजर उप्पर सिंध सिंह उप्पर दो पव्वय ।
पव्वय उप्पवर भृंग, भृंग उप्पर ससि सुम्भय ।।
ससि ऊपर एक कीर, कीर उप्पर मृग दिट्ठौ ।
मृग ऊपर के कोवंड संघ कन्द्रप्प वयट्ठौ ।।
अहि मयूर महि उप्परह हीर सरस हेमन् जर्‌यो ।
सुर भुवनु छंडि कविचन्द कहि तिहि घौषैं राजस पर्‌यो ।।"

पृथ्वीराज के अनेकानेक युद्धों, विवाहों और विलास के सुखात्मक वातावरण के पश्चात् दुखात्मक वातावरण आता है । पृथ्वीराज को पराजय मिलती है । शाहबुद्दीन गोरी उनको वन्दी बनाकर गजनी ले जाता है । वह उनके नेत्र फुड़वाकर कैद में डाल देता है । पृथ्वीराज अपने इस पतन के कारणों का विश्लेषण करता है । अतीत के सुख-वैभव और विलास के दृश्य उसके नेत्रों के सामने मूर्तिमान हो उठते हैं । वर्तमान दयनीय स्थिति हृदय को करुणा से भर देती है । चन्द पृथ्वीराज के इस मानसिक द्वन्द्व का वर्णन निम्न प्रकार करते हैं—

"सहौ फूल की फूलनी माहि नाथं ।
तुरन्त तरामौ जु मालीन हाथं ।।
नहीं सूर सामन्त परिवार उसं ।
नहीं गज्ज वाजं भंडार दिनसं ।।
नहीं पँगना प्रान ते अति प्यारी ।
नहीं घोष गहिला इतं चित्रसारी ।।
नहीं मृगनयनी चरन्नं तलासैं ।
नहीं कूक केका सवद्दं उल्लासैं ।।
नहीं पातुरं चातुरं नृत्यकारी ।
नहीं ताल संगीत आलपकारी ।।
नहीं चोय मौनं करु लष्व दानं ।
नहीं भट्ट चन्द विरद्दं वषानं ।।"

'पृथ्वीराज रासो' की समाप्ति शोकान्त होने पर भी रासोकार अपने कौशल से सुखान्त का सन्देश दे देता है । पृथ्वीराज की पराजय और उसका अन्त

अवश्य हुआ, परन्तु म्लेक्ष से धरणी का उद्धार हुआ, और चरित्र-नायक के सम्मान की पूर्ण रूप से रक्षा हो गई। कथान्त बड़ा ही मार्मिक अनुभूतिपूर्ण बन पड़ा है—

"मरन चन्द बरदाइ, राज पुनि सुनिग साहि हनि।
पुहंपजलि असमान, सीस छोड़ी सुदेवतनि॥
मेछ अवद्धित धरनि, धरनि सव तीय सोह सिग।
विनहि तिनहि संजोति, जोति जोतिहि संपातिग॥
रासो असंभ नव रस सरस, चन्द छंद किय अमिय सम।
शृंगार-वीर, करना विभछ, भय अद्भुत हसंत सम॥"

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'पृथ्वीराज रासो' एक विशाल महाकाव्य है। उसमें मुख्य कथानक के साथ असंख्य घटनाएँ और प्रसंग आये हैं। घटनायें और प्रसंग 'समयों' (सर्गों) में विभाजित हैं। ऊपर से देखने में सर्ग स्वतन्त्र लगते हैं और कहीं-कहीं पर कथानक भी शिथिल दिखाई देने लगता है। परन्तु यह सत्य है कि प्रत्येक घटना और प्रत्येक प्रसङ्ग चरित्र-नायक से सम्बन्धित होकर कथानक के विकास में सहायक हो गया है। कथानक की धारा में एक-सूत्रता और प्रवाह है। बीच में आये हुए अनुभूतिपूर्ण मार्मिक स्थलों के वर्णन कथानक को रोचकता प्रदान करते हैं। आज 'पृथ्वीराज रासो' का जो वृहदाकार रूप सामने है, उसमें प्रक्षिप्त अंश बहुत अधिक मिल चुका है। इसलिए उस पर वस्तु-संविधान में शिथिलता और घटनाओं में अन्विति न होने का दोष लगाया जाता है। परन्तु महाकवि चन्द का 'पृथ्वीराज रासो' सर्वथा निर्दोष होगा, यह उसके वर्तमान रूप से सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

७

रासो में चरित्र-चित्रण

प्रश्न २०—" 'पृथ्वीराज रासो' में एक विशाल महाकाव्य के अनुरूप ही चरित्र-कल्पना और चरित्र-चित्रण को स्थान मिला है।" इस कथन की सम्यक् समीक्षा कीजिए।

अथवा

प्रश्न २१—चरित्र-कल्पना और चरित्र-विकास की दृष्टि से पृथ्वीराज रासो की विशेषताएँ बतलाइए।

स्मृति-संकेत

१. 'रासो' वीर-काव्य है, अतः उसके समस्त पात्र वीर हैं।
२. पृथ्वीराज चौहान कथानक के नायक हैं। उनका चरित्र महाकाव्योचित धीरोदात्त नायक के गुणों की गरिमा से युक्त है।
३. संयोगिता का चरित्र प्रेमिका एवं विलासवती मुग्धा का चरित्र है। उसके चरित्र का सम्यक् विकास नहीं हो पाया है।
४. चन्द का चरित्र पृथ्वीराज का पूरक है। उसके चरित्र का विकास पृथ्वीराज के चरित्र के साथ ही हुआ है।
५. शेष पात्रों में जयचन्द तथा शाहबुद्दीन जैसे महत्त्वपूर्ण पात्रों का चरित्र भी विकसित नहीं हो पाया है।
६. केवल पृथ्वीराज और चन्द का चरित्र ही आद्यान्त विकसित है और महाकाव्य की गरिमा के अनुकूल है।

उत्तर—'पृथ्वीराज रासो' एक विशाल वीर काव्य है। इसमें वीर पात्रों की संख्या असंख्य है। कथानक के सभी पात्र असामान्य वीरता का प्रदर्शन करते

हैं। पृथ्वीराज कथानक के नायक हैं। उनमें धीरोदात्त नायक के समस्त उदात्त गुण हैं। सारे कथानक में उन्हीं का गरिमामय चरित्र आद्यान्त विकसित हुआ है। उनके पश्चात् चन्द ही एक ऐसा पात्र है जिसकी स्थिति पृथ्वीराज के समानान्तर आद्यान्त बनी रहती है, अन्य पात्रों में संयोगिता जैसी प्रमुख पात्री जो कि नायिका का स्थान ग्रहण करती है, चरित्र अधूरा ही सामने आता है। वह पृथ्वीराज के साथ दिल्ली आकर मुग्धा युवती के रूप में विलास में डूब जाती है। इसके पश्चात् शाहवुद्दीन से युद्ध आदि की लम्वी घटनाओं में रासो-कार उसे स्मरण तक नहीं करता।

जयचन्द और शाहबुद्दीन को कथानक में प्रतिनायक का स्थान प्राप्त है। वे पृथ्वीराज के प्रवल प्रतिद्वन्द्वी भी हैं। रासोकार ने इनकी वीरता का विकास नहीं दिखाया है। चन्द ने जयचन्द की तुलना में पृथ्वीराज को वास्तविक सूर कहा है। परन्तु जयचन्द की शूरता के कृत्यों का विस्तार नहीं है, जिससे पाठक स्वयं तुलना करके सन्तुष्ट हो सके।

शाहबुद्दीन गोरी में वीरता के स्थान पर नृशंसता ही रासोकार ने अधिक दिखाई है और वह पृथ्वीराज से ग्यारह वार पराजित होता है। पृथ्वीराज ने उसको छोड़कर अपनी उदारता और क्षमाशीलता का परिचय दिया है, परन्तु शाहवुद्दीन अन्तिम युद्ध में पृथ्वीराज को वन्दी बनाकर ले जाता है और उसकी आँखें निकाल कर बन्दीगृह में डाल देता है। उसकी इस कृतघ्नता और नृशंसता पर पाठक क्षुब्ध हो उठता है। पृथ्वीराज के शब्द-वेधी वाण से उसका वध देखकर पाठकों को सन्तोष और आनन्द प्राप्त होता है। कयमास एक अभागे व्यक्ति के रूप में सामने आता है। उसका कालिमामय चरित्र ही कथानक में सामने आता है। पृथ्वीराज के द्वारा उसका वध होता है। अन्य पात्रों में अनेकों सामन्त हैं, जिनका वीर चरित्र एक झाँकी के रूप में सामने आता है। उनके युद्धों और वीरतापूर्ण कृत्यों का रासोकार ने अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया है। हरीसिंह, कनक वड़ गूजर, निडर राठौर, कान्ह, अल्हन, अचलेस, सलष, लषन, आदि सामन्त पृथ्वीराज की रक्षा में अपना आत्मोत्सर्ग करते हुए दिखाई पड़ते हैं।

रासो में प्रमुख विकसित चरित्र केवल पृथ्वीराज चौहान और चन्द के हैं। नायिका होने के कारण संयोगिता का चरित्र भी महत्त्वपूर्ण है। अतः हम इन तीनों पात्रों के चरित्र-चित्रण पर विस्तार से विचार करेंगे।

संयोगिता

अनुपम सुन्दरी

'संयोगिता' रासो के कथानक में सर्व प्रथम एक अनुपम सुन्दरी के समान सामने आती है। उसके मनोरम सौन्दर्य का वर्णन पाठकों की चित्त-वृत्ति को स्निग्ध बना देता है। वह मृगनैनी चन्द्रमुखी यवंकुरों को हाथ में लिए हुए मृगों को चरा रही है। सखियाँ उसे मानिनी कहती हैं।

'जव अंकुर करि पानि चरावति वच्छ मृगु।
मनु मानिनि मिस इंदु, आनंदह देषि द्रगु ॥"

संयोगिता माननी है। मानो उसके बहाने चन्द्रमा ही मृग-शावकों को देखकर आनन्दित हो रहा है।

मानिनी और दृढ़व्रती संयोगिता

संयोगिता यथार्थ में मानिनी और दृढ़व्रती है। वह पृथ्वीराज को वरण करने का निश्चय करती है, फिर इस निश्चय से उस दृढ़व्रती को कोई किसी प्रकार भी विमुख नहीं कर सकता। पिता जयचन्द उसे पृथ्वीराज से विरत करने के लिये दासियाँ नियुक्त करते हैं, किन्तु उनका प्रयास विफल होता है। जयचन्द उसके हठ से रुष्ट होकर उसे गंगा-तट के महल में एकान्त-वास के लिये भेज देते हैं। वह पृथ्वीराज का दूर से दर्शन करती है। उसके शरीर में सात्विक भाव हो जाता है—

"सुनि रव सुन्दरि उभभ तन स्वेद कंप सुर भंग।
मनु कमलिनि कल संभरी अम्रित किरन तन रंग ॥"

प्रेमिका रूप

संयोगिता का प्रेमिका रूप बड़ा ही मनोरम है। उसे वरण कर जब पृथ्वीराज जाने लगता है, वह गवाक्षों में जाकर खड़ी हो जाती है। वह पृथ्वीराज का विरह इस प्रकार व्यतीत करती है, जिस प्रकार चातकी स्वाति को रटती हुई दिन बिताती है।

वीरांगना रूप

प्रेमिका संयोगिता वीरांगना रूप में भी सामने आती है। पृथ्वीराज को आता हुआ देखकर अनुमान करती है कि उसका प्रिय युद्ध से विमुख होकर आ रहा है। वह सिर पीटती हुई कहती है—

"जिहि प्रिय तन अंगलि फिरइ तिहिं प्रियजन कहा कज्ज ।"

अर्थात् "जिस प्रिय जन की ओर लोक की उंगलियाँ उठें, उस प्रिय जन से क्या काम है ।" संयोगिता का जब यह विश्वास हो जाता है कि पृथ्वीराज युद्ध में जा रहा है और वह तो केवल उसको लेने के लिए ही लौटकर आया है । तब वह आनन्द से पुलकित होकर पृथ्वीराज के घोड़े पर जा बैठती है—

"सुन्दरि सोचि समच्छिम गह-गह कंठ भरि ।
तवहिं प्रान प्रथिराज त षंचिय वाहु करि ।।
दिय हिय पुट्ठिय भार सु सब्व सुलिष्षनउ ।
करति तुरंग सुरंग स पुछ्छिछत वछ्छ नउ ।।"

युद्ध में संयोगिता के पत्नीत्व का स्निग्ध एवं मधुर स्वरूप प्रकट हुआ है ।

विलासिनी संयोगिता

दिल्लीश्वरी होकर संयोगिता के वीरांगना रूप में परिवर्तत हो जाता है । वह काम-केलि को ही जीवन की सार्थकता मान लेती है । वह अपने विलास में फँसाकर पृथ्वीराज को दीन और दुनियां से पृथक कर देती है । उसका यह कृत्य ही पृथ्वीराज की पराजय का कारण बनता है । शाहबुद्दीन के आक्रमण के समय चन्द उनको विलास निद्रा से जगाते हैं । इस भयानक स्थिति में भी वह पृथ्वीराज को मुक्त करना नहीं चाहती और जीवन की सार्थकता काम को तुष्ट करने में बिताती है । वह पृथ्वीराज को रोकती हुई कहती है—

"कह सु प्रियह पउमिनिय कंत धनु धरउ तउ न धनु ।
सुष सुषमार आरोहु असर संसार मरन मन ।
दिन दिनियर दिन चंदु रयनि दिन-दिन ही आवहिं ।।
जंतु-जंतु इह रमनि स्रवन लग्गवि समुझावहिं ।
अरधंग धरा, अरधंग हम अरधंगी अरधंग भरि ।
जस हँस हँस तह हँसिनी सर सुक्कइ पंकज न परि ।"

अर्थात् काम-विहीन जीवन संसार में मरण के समान है । इसके लिये पृथ्वीराज को आश्चर्य के साथ उसे मीठी फटकार भी देनी पड़ती है । वे कहते हैं कि जो संयोगिता मेरी वीर बाँहों की पूजा करने वाली थी, वह आज रतिनाथ की वातें कर रही है :

"सुनि प्रिय प्रिय दिष्यौ बदन,
किय जिय निर्भय पाथ।
बाहु पुज्जउ वरह तुह,
कहसि मुग्ध रतिनाथ ॥"

इस प्रसंग के पश्चात् रासोकार संयोगिता के विषय में मौन हो जाता है। 'रासो' के अन्त तक संयोगिता का कोई प्रसङ्ग नहीं आया है। शाहबुद्दीन से युद्ध के लिये प्रयाण, उसके बन्दी होकर गजनी जाने और वहाँ नेत्र-हीन किये जाने आदि के अवसर पर रासोकार संयोगिता के उद्‌गारों को सामने ला सकता था। इससे संयोगिता के चरित्र को पूर्णता एवं गरिमा प्राप्त होती है।

चन्दवरदाई

'पृथ्वीराज रासो' में चन्द का चरित्र विशेष गरिमामय है। वह पृथ्वीराज का सच्चा और प्रबुद्ध सहचर है। पृथ्वीराज की सारी गरिमा का कारण चन्द ही है। 'रासो' में चन्द के विना पृथ्वीराज का चरित्र अधूरा है।

चन्द का प्रसंग 'पृथ्वीराज रासो' में कयमास-वध के अनन्तर आता है। आखेट से लौटकर पृथ्वीराज सभा बुलाता है। चन्द उसमें सम्मिलित होता है। वह स्वप्न में पृथ्वीराज द्वारा कयमास-वध की सारी घटना सुन चुका था। यहाँ चन्द बड़ी निर्भीकता से कयमास-वध के प्रसङ्ग में पृथ्वीराज से प्रश्न करता है :—

"सेस सिरुप्परि सूर तर जइ पुच्छइ नृप एस।
दोहुँ बोलि मण्डन मरनु चहइ तउ कव्वु कहेस।"

चन्द की यह निर्भीकता ही पृथ्वीराज जैसे उग्र स्वभाव के राजा को पथ पर लाने में समर्थ बनी। विलास-मग्न पृथ्वीराज को वह चेतावनी देता हुआ कहता है :—

"गोरी रत्तउ तुव धरा तू गोरी अनुरत्त।"

साथ ही वह पृथ्वीराज को युद्ध के लिए प्रोत्साहित करता है। पृथ्वीराज के कैद होकर गजनी ले जाये जाने पर चन्द भी पीछे से पहुँच जाता है और शाहबुद्दीन से प्रतिशोध लेने के लिए प्रेरित करता है :—

"अरे नरिंद वा बंध पिंड कच्चउ सुर सच्चउ।
अप्पु तेज संमीर धरा आयास ज पंचउ।
जरा जाल वंधियउ काल आनन महि षिल्लइ।
हंतुह हंतुह अजप जप्पि सरु वरु कर मिल्लइ।
जिन चलइ हंस हंसी सरिस छंडि मोह तन पंजरहि।
प्रथीराज आज तिहिं मत्ति करि करि नरिंद जिन उव्वरहि॥"

पृथ्वीराज का मन निराशा, शोक एवं अन्तर्द्वन्द्व से आवृत्त हो जाता है। चन्द बड़ी निर्भीकता से उसके अन्तर्द्वन्द्व को दूर करने के लिए कहता है कि उसने कयमास के साथ जो कुछ किया था, उसी का परिणाम उसको मिल रहा है। विलासिता के कारण पृथ्वीराज ने कयमास का वध किया था। पृथ्वीराज के सामने भी विलासिता का परिणाम है। असः आगा पीछा करना व्यर्थ है :—

"प्रथमिराज कंमान वांन द्रिढ मुट्ठि गहहि कर।
जिन विसमउ मन करहि करहि भुअपत्ति अप्पु वर।
जि कछु दियउ कयमास किअउ अप्पनउ सु पायउ।
सोइ संभरी नरेषु तुहि ज अम्मरपुर आयउ।
विधना विधान मेटइ कवन दीनमान दिन पाइयइ।
सर एक फोरि संभरि धनी सत्तहि सब्रुद गमाइयइ॥"

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि चन्द पृथ्वीराज का सच्चा सहचर है। उसका चरित्र पृथ्वीराज के साथ आद्यान्त विकसित हुआ है। पृथ्वीराज के साथ ही उसके भी जीवन का अन्त होता है। वह सुख, दुःख, हर्ष, विषाद आदि प्रत्येक परिस्थिति में पृथ्वीराज के साथ दिखाई पड़ता है। उसके बिना पृथ्वीराज का चरित्र अपूर्ण है।

पृथ्वीराज

पृथ्वीराज 'रासो' महाकाव्य के नायक हैं। उनमें एक धीरोदात्त नायक के समस्त गुण हैं। कथानक में आद्यान्त उनके अतुल शौर्य का वर्णन हुआ है। गजनी में शाहबुद्दीन का वध करते हुए उनका अन्त बहुत ही गौरवमय हुआ है। पृथ्वीराज के चरित्र का विश्लेषण निम्नलिखित शीर्षकों में किया जा सकता है :—

नायकत्व

पृथ्वीराज चौहान कथानक के नायक हैं। उनकी बाल-क्रीड़ा से लेकर प्राणोत्सर्ग तक का पूरा चरित्र रासो में चित्रित हुआ है। कथानक उनके द्वारा किये गये अनेक विवाह और राजाओं से किये गये युद्धों में गठित है। इच्छिनी से विवाह, पद्मावती और संयोगिता-हरण आदि उनके विवाहों की प्रमुख घटनाएँ हैं। जयचन्द और शाहबुद्दीन गोरी से संघर्ष उनके जीवन की इतिहास-विश्रुत घटनाएँ हैं। समस्त घटनाएँ, प्रसंग और कथानक में आये हुए व्यक्ति प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप में उनके व्यक्तित्व से सम्बन्धित हैं। एक शास्त्रोक्त धीरोदात्त नायक के समस्त गुण पृथ्वीराज के चरित्र में मिलते हैं।

धीरता और विनयशीलता

धीरता और विनयशीलता प्रारम्भ से ही पृथ्वीराज के चरित्र में है, वे गुरुजनों के प्रति विनयशील होने के साथ-साथ संकोची भी हैं। वे जयचन्द का राजसूय में सम्मिलित होने का निमंत्रण पाकर सकुच जाते हैं। उनकी ओर से एक गुरुजन गोविन्ददास ही उत्तर देता है। सामन्त और सेनापतियों का भी पृथ्वीराज सम्मान करते हैं। कान्ह के अयान कहने का भी वे बुरा नहीं मानते। चंद तो उनसे कहनी-अकहनी सभी कुछ कह सकता है।

कर्त्तव्य-भावना

पृथ्वीराज में कर्त्तव्य-पालन की भावना इतनी अधिक है कि वे इसके लिए अपने को संकट में डालने को सदैव प्रस्तुत रहते हैं। जयचन्द से संघर्ष में सौन्दर्य-लिप्सा नहीं कर्त्तव्य-पालन की प्रबल भावना ही है। उन्हें समाचार मिलता है कि संयोगिता का हृदय उन पर अनुरक्त है और उसने उनके वरण करने का व्रत धारण किया है, परन्तु जयचन्द उसका विवाह अन्यत्र करना चाहता है। अतः संयोगिता के व्रत की रक्षा करना उनका परम कर्त्तव्य हो जाता है। कन्नौज के चर द्वारा उसको समाचार मिलता है—

"संयोगि जोग वर तुम्ह आज।
व्रत लिअउ वरण पृथ्वीराज राज ॥"

पृथ्वीराज को जब यह ज्ञात होता कि जयचन्द ने द्वारपाल के रूप में उनकी प्रतिमा स्थापित कर उन्हें अपमानित किया है, उनका चित्त अशान्त हो जाता

११

है। उनकी मानसिक स्थिति असंतुलित हो जाती है। चन्द की सलाह से मन बहलाने के लिए वे आखेट में रहने लगते हैं। जिस प्रधान 'अमात्य' 'कयमास' को वे राज-काज सौंपते हैं, वही राज-महल के नियमों को भंगकर करनाटी दासी के विलास में डूबा दिखाई पड़ता है। पृथ्वीराज को यह सहन नहीं होता है। वे उसका वध कर देते हैं। मानसिक संघर्ष की स्थिति समाप्त होते ही उनको जयचन्द द्वारा अपमानित और उपहास का पात्र बनने पर ग्लानि होती है और वे उसका प्रतिशोध लेने अथवा जीवन-उत्सर्ग करने के लिए दृढ़-प्रतिज्ञ हो जाते हैं। वे चन्द के गले लगते हुए अपना दृढ़ संकल्प व्यक्त करते हैं—

"दोइ कंठ लग्गिय गहन नयनह जल गल न्हांनु।
अब जीवन वंछिहि अधिक कहि कवि कौन सयानु।।"

वीरता और शौर्य

पृथ्वीराज वीरता और शौर्य की तो साक्षात् प्रतिमा ही हैं। उनकी समस्त जीवन-गाथा उनकी वीरता और शौर्य की ही कहानी है। वे संयोगिता का वरण कर चुपचाप कन्नौज से नहीं चल देते। वे दायज के रूप में जयचन्द से युद्ध चाहते हैं और बड़ी वीरता से युद्ध करते हुए संयोगिता-सहित दिल्ली आ पहुँचते हैं।

कर्त्तव्य में शिथिलता

संयोगिता-वरण के पश्चात् पृथ्वीराज के जीवन में शिथिलता आती है और यह शिथिलता ही शाहबुद्दीन से उनकी पराजय का कारण बनती है। वे संयोगिता को सुखी करना ही एक मात्र अपना लक्ष्य बना लेते हैं। वे उस प्रौढ़ मानिनी की रति में इतने अधिक लीन हो जाते हैं गुरुजन, बांधव, भृत्य और प्रजाजन भी उनसे खिन्न रहने लगते हैं—

"इह विधि विलसि विलसि असार सुसार किअ।
दइ सुख जोग संजोगि सोइ पृथ्वीराज जिअ।।
अहनिसि सुध्धि न जानहि माननि प्रौढ़ रति।
गुरु बांधव भृत लोइ भई विपरीत गति।।"

परन्तु शाहबुद्दीन का आक्रमण होने पर चन्द की चेतावनी मात्र से उनकी मोह-निद्रा दूर हो जाती है। वे तत्काल सन्नद्ध हो जाते हैं—

"सुनि कग्गरु पिट्टउ सुकर धर रब्बइ गुरु भट्ट।
नरकि तोन सजियउ स किरि जिमि वेष छँडि सू नट्ट ॥"

संयोगिता उसे काम-केलि में पुनः प्रवृत्त करना चाहती है। वे उसे झिड़कते हुए कर्त्तव्य-पथ पर चल देते हैं और शाहबुद्दीन की विशाल सेना से तब तक लोहा लेते हैं, जब तक वन्दी नहीं बना लिये जाते। वन्दी और नेत्र-हीन हो जाने पर भी पृथ्वीराज की वीरता में अन्तर नहीं आता।

पृथ्वीराज का अन्तिम जीवन संघर्ष और नैराश्य से भर जाता है, परन्तु चन्द उनकी निराशा को दूर कर शाहबुद्दीन से प्रतिशोध लेने के लिए प्रेरित कर देते हैं। वे बड़े शौर्य से शब्द-वेधी बाण के द्वारा शाहबुद्दीन का वध करते हैं। उनका भी अन्त बड़ा गौरवमय होता है। अन्धे होने पर भी शत्रु के दरबार में ही शत्रु का सिर काट कर आत्मोत्सर्ग करने का ऐसा वीरतापूर्ण उदाहरण विश्व के इतिहास में नहीं मिलेगा—

"मरन चन्द बरदिया राज धुनि साह हन्यउ सुनि।
पुहपंजलि असमान सीस छोड़ी त देवतनि॥
मेछ अवध्धित धरणि धरणि नवत्रीय सुहस्सिग।
तिनहि तिनहि संजोति जोति जोतिहि संपत्तिग॥"

इस प्रकार रासोकार ने 'रासो' में पृथ्वीराज के चरित्र की अमर कल्पना की है। वे वीरता के साक्षात अवतार हैं। कर्त्तव्य और वीरता उनके जीवन की प्रमुख विशेषताएँ हैं। उनका आत्मोत्सर्ग इतिहास में सदैव अमर रहेगा, परन्तु ऐसा लगने लगता है कि उनका सारा व्यक्तित्व चन्द द्वारा ही नियन्त्रित और प्रेरित है। चन्द और पृथ्वीराज के अतिरिक्त अन्य पात्रों के चरित्र का सम्यक् विकास नहीं हो पाया है।

८

रासो का साहित्यिक मूल्यांकन

प्रश्न २२—वस्तु-वर्णन और भाव-व्यंजना की दृष्टि से पृथ्वीराज रासो की समीक्षा कीजिए।

अथवा

प्रश्न २३—"पृथ्वीराज रासो में भाव-व्यंजना की अपेक्षा वस्तु-वर्णन की प्रधानता है"—इस उक्ति की सम्यक् समीक्षा कीजिये।

उत्तर—'पृथ्वीराज रासो' में वस्तु-वर्णन और भाव-व्यंजना दोनों ही का समन्वय हुआ है। युद्ध-सज्जा तथा युद्ध-वर्णन, नख-शिख-वर्णन, प्रकृति-वर्णन, षट्ऋतु-वर्णन, व्यूह-वर्णन, नगर-वर्णन, पनघट-वर्णन, विवाह-वर्णन, उत्सव-वर्णन आदि विविध वस्तु-वर्णन रासो में मिलते हैं। इस वस्तु-वर्णन के बीच-बीच में अनुभूतिपूर्ण मार्मिक व्यंजना भी देखते ही बनती है। आगे हम वस्तु-वर्णन और भाव-व्यंजना के कतिपय स्थलों को चुनकर उनके सौंदर्य का उद्घाटन करेंगे।

वस्तु-वर्णन

युद्ध-सज्जा और युद्ध-वर्णन

पृथ्वीराज रासो आद्यान्त युद्धात्मक प्रसंगों से भरपूर है। पृथ्वीराज के अनेकानेक युद्धों के अतिरिक्त पृथ्वीराज-जयचन्द-युद्ध और पृथ्वीराज-शाहबुद्दीन-युद्ध महत्त्वपूर्ण हैं। रासोकार अतिशयोक्ति के द्वारा युद्ध-सज्जा का दृश्य सजीव कर देता है। निम्न उदाहरण में युद्धारम्भ में उठी हुई धूल का एक वर्णन देखिये—

"हयग्गयं नरम्भरं ।
उन च्चियं जलद्धरं ।।
दिशा निसान वज्जये ।
समुद्य सद्य लज्जये ।।
रजोद मद्य उप्पली ।
व्योम पंक संकुली ।।
तटाक वाल रंगिनी ।
चकी चक्र वियोगिनी ।।
× × ×
अमण्ड रेन मंडने ।
डरप्पि इन्दु छंडने ।।"

चन्द ने सैन्य-वैभव, राजसी ठाट-बाट, दिग्गजों की चिंघाड़, घोड़ों की हिनहिनाहट, शस्त्रों की खनखनाहट और युद्धों की भीषणता का भावपूर्ण चित्रण किया है। संश्लिष्ट योजना के द्वारा यवन-सेना का निम्न वर्णन बड़ा ही सजीव बन पड़ा है—

"षुरासान सुलतान षंधार मीरं ।
वलष स्यौं वलं तेग अच्चूक तीरं ।।
रुहंगी, फिरंगी हलंबी समानी ।
ठटी ठट्ट बल्लोच ढालं निसानी ।।
मंजारी चषी मुक्ख जंवूक लारी ।
हजारी हजारी हुँकै जोध भारी ।।
निनं पष्वरं पीठ हय जीन सालं ।
फिरंगी-कती पास सुकलात लालं ।।
तहाँ वाध वाघं मरूरी रिछोरी ।
घनं सार समूह अरु चौर भौरी ।।
एराकी अरव्वी पटी तेज ताजी ।
तुरक्की महावांन कम्माँन वाजी ।।"

चन्द को युद्ध के स्थिर चित्र चित्रित करने में बड़ी सफलता मिली है। वीरों का वीरत्व-कर्म, कर्त्तव्य-पालन, प्रचण्ड-पराक्रम आदि का जीता-जागता

चित्र रासोकार ने प्रस्तुत कर दिया है। निम्न उदाहरणों में देखिए इनके कथन 'उत्साह' को पुष्ट करते हैं—

"हाहुलिराव समीर कहि, सुन पंगानी वत्त।
एक भिरै असि लष्व सौ, सोभर किमि भाजंत॥"

× × ×

चवै चन्द पुण्डीर इम, नह वल कथ्थहु पुव्व।
पंग-पंग पग नरिंद को, जग्य विध्वंसृयाँ सव्व॥

नख-शिख वर्णन

वस्तु-वर्णन की दृष्टि से 'रासो' के नख-शिख-वर्णन का महत्वपूर्ण स्थान है। नख-शिख वर्णन में रासोकार ने नारी-सौन्दर्य का मूर्तिमान चित्र प्रस्तुत कर दिया है। निम्न उदाहरण में इच्छिनी का नख-शिख सौन्दर्य देखिए—

"नयन सुकंजना, नेख, तीव्र निच्छल छवि कारिय।
स्रंवनन सहज, कटाछ कर्षन नर तारिय॥
भुज मृनाल कर कमल, उरज अंवुज कल्लिय कल।
जंभ रंभ कटि सिंध गमन दुति हंस करी छल॥
देव अरु जस्सि नागिनि नरिय नरहि गर्व दिष्पत नयन।
इच्छिनी आँखि लज्जा सहज कितक शक्ति कव्विए वयन॥"

इसी प्रकार पनघट पर जल भरते हुए जयचन्द की दासियों का नख-शिख सौन्दर्य देखिए—

"द्रिग चंचल चंचल तरुनि, चितवत चित्त हरेति।
कंचन कलस झकोटि कै, सुन्दरि नीर भरेति॥"

× × ×

"दशन त्रियन दिल्ली नृपति, सोव्रन घट पर हथ्थ।
वर घूँघट छुटि पहगौ सप्पट परि मनमथ्थ॥
सप्पट परि मनमथ्थ भेद पट कुचतर स्वेदं।
उष्ट कंप जल दृगन जारी जंभायत भेदं॥
सिथिल गति जजि भगति गलति पुंजई तन सरसी।
निकट निजल घट तजै मुहर मुहरं पति दरसी॥"

यहाँ वस्तु-वर्णन के साथ भाव-व्यंजना के अन्तर्गत कायिक चेष्टाओं एवं अनुभावों का बड़ा ही आकर्षक वर्णन हुआ है। दासियाँ जल भर रही थीं।

उनका घूँघट अचानक सरक जाता है। सामने सौन्दर्य की सीमा पृथ्वीराज दिखाई पड़ते हैं। सोने का घड़ा हाथ का हाथ में ही रह जाता है घूँघट खुला ही रह जाता है। वक्षस्थल के तट-देश पर पसीना झलक आता है। ओंठ काँपने लगते हैं। गति शिथिल हो जाती है। पृथ्वीराज को निहारती हुई सुन्दरी भाग जाती है। खाली घड़ा गङ्गा तट पर पड़ा रह जाता है। सुन्दरियों के कटाक्षों का एक संश्लिष्ट चित्र देखिए—

"दुराय कोय लोचने।
प्रतष्ष काम मोचने॥
अवध्धि ओट भौंहये।
चलंति सोह सौंहये॥"

प्रकृति-वर्णन

'रासो' में प्रकृति-वर्णन यद्यपि अधिक नहीं है, लेकिन जितना भी है बड़ा ही सजीव, सुन्दर, स्वाभाविक है। प्रातः और संध्या के वर्णन बड़े सुन्दर बन पड़े हैं। निम्न वर्णन में प्रातःकाल की व्यंजना हो जाती है—

'कोती भार पुरा पुनर्मद गजं शाखा न गंडस्थलं।
उच्छं तुच्छ तुरा स शशि कमनं करिकुंभ निद्रादलं॥
मधुरे साइ सकारता अलिकुलं गुंजार गुंजानहा।
तरुणो प्राण लटापटा पगपगं जयराज संप्रापता॥"

यहाँ प्रातःकाल की गजमद से तुलना की गई है। वस्तु-वर्णन से भावानुभूति छलक रही है। षट्ऋतु-वर्णन भी रमणीय है। वस्तु-वर्णन के रूप में अन्य वर्णन भी सुन्दर हुए हैं। काव्य की दृष्टि से भी इनकी उपयोगिता कम नहीं है। कन्नौज नगर का वर्णन, जयचन्द के नृत्य-गीत-समारोह, नृत्य-संगीत परम्पराओं आदि के वर्णन बड़े सजीव हैं, निम्न उदाहरण में गङ्गा का वर्णन कामिनी के रूप में हुआ है—

"उभय कनक सिंभ स्रिगं कंठीव लीला।
पुनरपि पुहप पूजा वदति रति विधराज॥
उरसि मुक्त हारे मध्धि घंटीव सवदं।
मुगति सुकल वल्ली वंग रंग त्रिवल्ली॥"

इस प्रकार 'पृथ्वीराज रासो' आद्यान्त रोचक वस्तु-वर्णनों से भरा हुआ है।

वस्तु-वर्णन के साथ भाव-व्यंजना भी मार्मिक है—रसानुकूल भाषा द्वारा वीर भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। वीर भावों की अभिव्यक्ति में रासोकार का मन बहुत रमा है। आलम्व, उद्दीपन, अनुभाव और संचारियों की सांगोपांग योजना वीर-रस की निष्पत्ति करती हुई पाठकों को रस-मग्न कर देती है। पृथ्वीराज की सेना की सजावट और सेना-प्रयाण का एक दृश्य देखिए—

"हयग्गयं सजे भरं, निसांन बज्जि दूभरं।
नफेरि वीर बज्जई, मृदंग झालरी गई।।
सुनङ्ग ईस रज्जई, तनीज राज सज्जई।
सुभेरि भुंकयं घनं, श्रवन्न फुट्टि झंझनं।।"

रासो में सौन्दर्य-चित्रण बड़ा ही रोचक और सजीव है। वीर-रस के समानान्तर शृङ्गार-रस की धारा प्रवाहित हुई है। शृङ्गार-वर्णन में संयोग-शृङ्गार की प्रधानता है। विप्रलंभ की भी कुछेक स्थलों पर मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। निम्न उदाहरण कितना मर्मस्पर्शी है—

"घट घयार वज्जिय विषम, हलिग हिन्दु दल हाल।
दुतिय चन्द पूनिय जिये, वर वियोग बढ़ि वाल।।
वर वियोग वढ़ि वाल, लाल प्रीतम कर छुट्टौ।
कै कारन हा कन्त, आस असु जानि न पुट्टौ।।
देखत्त नैन सूज्झें न दिसि, परिय भूमि संथार।
संयोगी जोगिनि भई, जब वज्जिग घरियार।।"

वीर और शृङ्गार रस के अतिरिक्त रौद्र, वीभत्स, भयानक, हास्य आदि रसों की भाव-व्यंजना भी रासो में यत्र-तत्र हुई है। कहीं-कहीं पर तो भाव व्यंजना इतनी अधिक मधुर है कि रस की गागर ही छलकने लगती है। स्नान करती हुई इच्छिनी का एक शब्द-चित्र द्रष्टव्य है—

"विन बस्तर रंग-सुरंग रसी,
सुहलै जनु साष मदन्न कसी।।
लव लोनइ लोइ उवट्टन कौं,
कि बस्यौं मनु काम सुपट्टन कौं।।
द्रिग फुल्लिय कांम विरांमन के,
उघरै मकरन्द उदै दिन के।।

विन कंचुकि अंग सुरंग वरी,
सुकली जनु चमंक हेम भरी ॥
× × ×
"सुभरी लट चंचल नीर भरी,
तिनकी उपमा कवि दिव्य धरी ॥
तिन सौं लगि के जल वुन्द ढरै,
सु छटै मनु तारक राह करै ॥
जु कछू उपमा उपजी दुसरी,
मनो माट्य स्याम सुमत्ति धरी ॥
अति चंचल ह्वै विथुरे मुष तै,
मनौ राह सखी सिसुता वपते ॥"
× × ×
"करि मंजन अंगोछि तन, धूप वासि वहु अंग ।
मनो देह जनु नेह धुलि, हेम मोज जनु गंग ॥"

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'पृथ्वीराज रासो' का वस्तु-वर्णन गरिमामय है। वह कथानक के विकास में नीरसता कहीं नहीं लाता है। वस्तु-वर्णन के गतिमय संश्लिष्ट चित्र वड़े ही मनमोहक वन पड़े हैं। वस्तु-वर्णन से भाव-व्यंजना कहीं पृथक नहीं हो पाई है। भावानुभूति के मार्मिक और अनुभूतिपूर्ण चित्र प्रस्तुत करने में रासोकार को विशेष सफलता मिली है। सर्वत्र ही वस्तु-वर्णन भावात्मक पृष्ठभूमि में हुआ है। अतः वस्तु-वर्णन और भावानुभूति का सहज ही समन्वय हो गया है।

प्रश्न २४—भाव-पक्ष और कला-पक्ष की दृष्टि से 'पृथ्वीराज रासो' की सम्यक् समीक्षा कीजिए।

अथवा

प्रश्न २५—रासो के काव्य-सौष्ठव की सोदाहरण समीक्षा कीजिए।

अथवा

प्रश्न २६—रासो की साहित्यिक विशेषताओं का मूल्यांकन कीजिए।

अथवा

प्रश्न २७—वृत्त-वर्णन, रस परिपाक, प्रकृति-चित्रण, अलंकार-योजना, छन्द-योजना और भाषा की दृष्टि से 'पृथ्वीराज रासो' की समीक्षा कीजिए।

उत्तर—भावपक्ष और कलापक्ष

काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से 'पृथ्वीराज रासो' एक अनुपम रचना है। इसमें इतिवृत्तात्मकता और रसात्मकता का सुन्दर समन्वय हुआ है। इसमें वस्तु-वर्णन और भाव-व्यंजना दोनों ही उच्च कोटि की हैं। रासोकार ने भावानुभूति की अभिव्यक्ति के लिए मार्मिक प्रसंग चुने हैं। 'रासो' वीर काव्य है, किन्तु उसमें चन्द ने अनुभूतिमय नव-रस योजना की है। भावपक्ष के अन्तर्गत नव-रस-योजना का सुन्दर निर्वाह हुआ है। जैसा कि निम्न कथनों से स्पष्ट है—

"उक्ति धर्म विसालस्य, राजनीति, नवं रसं।
पट् भाषा पुराणं चं, कुरानं कथितं मया।।

—आदि पर्व

रासो असंभ नवरस सरस, चन्द छन्द किय अमिय सम।
शृंगार, वीर करुना विभछ, भय अद्भुत हंसत सम।।"

—बान-वेध-प्रस्ताव

कलापक्ष के अन्तर्गत भाषा अलङ्कार, छन्द, गुण, वाग्वैदग्ध्य का समन्वय होता है। सफल कला-पक्ष में भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति हो सकती है। उक्त कसौटियों को दृष्टि में रखते हुए अब हम 'पृथ्वीराज रासो' की काव्य माधुरी और साहित्यिक-सौन्दर्य का उद्घाटन करेंगे।

वस्तु-वर्णन

वीर काव्य पृथ्वीराज रासो के कथानक का विकास पृथ्वीराज के शौर्य-प्रदर्शन और युद्ध-वर्णन में हुआ है। रासो के प्रायः सारे युद्ध इच्छिनी, पद्मावती, संयोगिता आदि प्रेमिकाओं को लेकर हुए। अर्थात युद्ध का कारण प्रायः राजकुमारियाँ रहीं। इस कारण वीर-रस के साथ में शृंगार रस की धारा भी प्रवाहित हुई है। नव-रस में से अन्य रस प्रसंगवश ही आये हैं। वीर और उसके बाद शृंगार रस की प्रधानता होने के कारण सारे वस्तु-वर्णन वीर-रसानुभूति और शृंगार के स्निग्ध वर्णन से युक्त हैं। वस्तु-वर्णन बड़ा ही उत्कृष्ट बन पड़ा

है। सेना-सज्जा, सेना-प्रयाण, युद्ध, नगर, पनघट, उत्सव, नख-शिख और वारहमासा आदि के वर्णन बड़े ही रोचक हैं। वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद आदि के वर्णन भाषा, भाव, ध्वनि और बिम्ब उपस्थित करने की दृष्टि से उत्तम हुए हैं। नख-शिख वर्णन सर्वत्र अनूठा है। रूप-सौन्दर्य वर्णन के वड़े ही सजीव चित्र चन्द ने सजाकर रखे हैं।

रस-योजना

वीर-भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति से रासो आद्यान्त भरा हुआ है। रासो में वीर-रस अंगी तथा अन्य रस सहायक के रूप में आये हैं। इस प्रकार रासो में नव-रस योजना है। आलम्बन, उद्दीपन अनुभाव, विभाव और संचारियों की सांगोपांग योजना वीर-रस की निष्पत्ति में सहायक हुई है। सेना-सज्जा और रण-प्रयाण के वड़े ही गतिशील चित्र उभरे हैं। गोरी की सेना के रण-प्रयाण का एक वर्णन देखिए :—

"चमंकत तेज सनाह-सनाह। करं धर पद्ध राह विराह॥
झलक्कत टोप सुटोप उतंग। मनौ रज जोति उद्योत विहंग॥
दमंकत तेज कमान कमान। चितं चित मीर रही भइमान।
भले भर सॉइय ध्रंम सगत्ति। लषै धर जीयन जत्ति न गत्ति॥

युद्धारम्भ का चित्र और अधिक सजीव रूप में सामने आता है :—

घरं धार कढ्ढी। घनं बीज बढ्ढी।
रस रोस थट्टी। मुंष मुंद्द अट्टी।
परे चट्ट पट्टी। मनौ मद्द जट्टी।
उनं तेग कढ्ढी। जनौ वज्र टट्टी।
जम दढ्ढ दट्टी। मनौं नोन अट्टी।
उछट्टे उछट्टी। घनं घट्ट घट्टी॥"

पद्मावती के निम्न छन्द में देखिए, भाषा की धारावाहिकता में युद्ध की तीव्र गति फूट पड़ी है :—

"गही तेग चहुआंन हिन्दवान रानं।
गजं जूथ परि कोपि केहरि समानं॥
करे रुंड मुंड करी कुंभ फारे।
वरं सूर सामंत हूँ कि गर्ज भारे॥

करी चहि चिक्कार कर कलप भग्गे ।
मदं तंज्जिय लाज उमंग मग्गे ।।
दौरि गज अंध चहुँआन केरो ।
घेरियं गिरद्दं चिहौं चक्क फेरो ।।
गिरद्दं उड़ी भांन अंधार रैनं ।
गई सूझि सुझ्झै नहीं मझ्झि नैनं ।।"

पृथ्वीराज चौहान शक्ति के अवतार हैं। वे अपने प्रवलतम शत्रु शाहवुद्दीन को ग्यारह वार बन्दी बनाकर छोड़ देते हैं। पृथ्वीराज और चन्दवरदाई का युद्ध वड़ा ही ओजस्वी है। सुल्तान की सेना युद्ध के लिए डटी हुई है। पृथ्वीराज अपनी सेना को रण-भूमि में मयूर व्यूह में ले आते हैं। भीषण युद्ध होता है, पृथ्वीराज रासो में युद्ध-वीर की प्रधानता है। मोतीलाल मेनारिया ने लिखा है :—

"रासो की विशेषता यही है कि उसमें वीर हृदय के उच्छ्वास संग्रहीत हैं।"

'रासो' में वीरों के मुख से निकले हुए वीरोचित कथन वीरत्व दर्प का जीता-जागता चित्र प्रस्तुत कर देते हैं। निम्न उदाहरणों में देखिए :—

हाहुलिराव समीर कहि, सुन पङ्गानी वत्त ।
एक भिरै असि लष्ष सौं, सो भर किमि भाजंत ।।
× × ×
चवैं चन्द पुण्डीर इम, कह वल कथ्थहु पुव्व ।
पंग-पंग पग नरिंद को, जग्य विध्वंस्यौ सव्व ।।

रासो में वीर-रस के अन्तर्गत युद्धवीर की ही वेगवती धारा प्रवाहित हुई है। यत्र-तत्र युद्ध-वीर, दया-वीर, दान-वीर, धर्म-वीर आदि का निर्वाह हुआ है। शाहवुद्दीन को ग्यारह वार वन्दी बनाकर छोड़ देने से वढ़कर दया-वीर का उदाहरण और क्या हो सकता है। दान-वीर का एक उदाहरण लीजिए :—

"करि सनान गंगोदकह, दिय सुगाइ दस दान ।
दस तोला तुलि हेंम दिय, अंन दान अमान ।।"

वीर-रस के अन्तर्गत ही रौद्र और वीभत्स रस की व्यंजना रासो में हुई

है। हुसैन खाँ को पृथ्वीराज ने शरण दी है। शाहबुद्दीन उसको निकाल देने का प्रस्ताव भेजता है। इसे सुनकर पृथ्वीराज का क्रोध उमड़ पड़ता है। उसकी भृकुटी वक्र, मुँह और नेत्र लाल हो जाते हैं :—

"संभलिय वत्त प्रथिराज मंत, भ्रिकुटी करूर द्रिग रत्त गंत।
आरत मुष्य स्रुत श्रोन बुंद, कल मलिय कोप रोमंत जिंद।"

वीर-भाव की सम्यक् निष्पत्ति के लिए उत्साह क्रोध एवं जुगुत्सा भावों की व्यंजना हुई है, निम्न उदाहरण में वीर-रस के अन्तर्गत क्रोध एवं जुगुप्सा भावों की व्यंजना देखिए—

"सजिय सकल सन्नाह, दाह जसु दङ्गल पट्टिय।
सुमरि साह इक देव, दुवन दल देषि उपट्टिय॥
छुट्टिय पट्टिय नयन, भइ दुन्दुभी गयन्ना।
तेग वेग झम झमिय, मच्च आरीठ भयन्ना॥

× × ×

दुअ सेन वल असियो वरसी, नचि जुग्गानि षप्पर लै हरषी।
छिन में सिर भार जुझार झटैं, बहुरयौं नैन पंजर आइ परैं।"

यहाँ 'सनाह' आदि से सजना 'उत्साह' तेग 'झमझमाना' 'क्रोध' और 'पंजर कटना' तथा योगिनियों का खप्पर नृत्य 'जुगुप्सा' है।

'पृथ्वीराज रासो' में रस-योजना की प्रमुख विशेषता वीर और शृङ्गार रस की मैत्री है। अनेक स्थलों पर वीर रस की व्यंजना के साथ शृङ्गार का योग पाया जाता है। निम्न उदाहरण में शाहबुद्दीन गोरी जब पृथ्वीराज के सैन्य दल की तैयारी के विषय में सुनता है, तब उसका विकल मन कंपित होकर मन्द गति से इस प्रकार आगे बढ़ता है, मानों नवोढ़ा केलि-भवन में प्रवेश कर रही हो :—

"सुनि बत्त गोरी गरुअ, तन मन कंप्यो ताम।
चलयौं मन्दगति मन विकल, ज्यौं गहे नऊड़ा काम॥"

वीर भावों के साथ-साथ कोमल एवं मनोहर शृङ्गारी भावों की उद्‌भावना 'पृथ्वीराज रासो' में अपना विशेष महत्त्व रखती है। वीर भावों के साथ मधुर और कोमल भावों का जैसा समन्वय रासो में है, वैसा अन्यत्र न मिलेगा।

शृंगार रस

'पृथ्वीराज रासो' में संयोग शृङ्गार और विप्रलम्भ शृङ्गार दोनों ही पक्षों का विस्तार से निरूपण है। संयोग-शृङ्गार के अन्तर्गत रूप-सौन्दर्य-वर्णन, वयःसंधि-वर्णन, सद्यः स्नाता-वर्णन, प्रथम-मिलन, प्रथम-स्पर्श, काम-क्रीड़ा आदि का वर्णन है। शृङ्गार के उद्दीपन के लिए प्रकृति और वातावरण को भी ग्रहण किया गया है। चित्ररेखा का सौन्दर्य योगियों के हृदय में भी कामोद्दीप्त कर देता है :—

"वेस्या वंछित भूप रूप मनसा, शृङ्गार हारावली।
सोयं सूरति लच्छित अच्छित गुनं, वेली सुकामावली।
का वर्नै कवि उक्ति जुक्ति मनयं, त्रैलोक्यं साधनं।
सोयं वाल ति रत्त उष्ट विद्रुम, कामोद जोगेसरं।
रूपि नद्धि कटाच्छ कूल तटयौ, भावं तरंगं वरं।
हावं भाव ति मीन ग्रासित गुनं, सिद्धं मनं भंजनी।
सोयं जोग वग्गं रूप ति वरं, त्रैलोक्य ना ता समं।
सोय साह सहाबुद्दीन ग्रहियं, आनंग क्रीड़ा रसं॥"

चन्द ने अनेक प्राकृतिक उपमानों के द्वारा पद्मावती के रूप-लावण्य का चित्र उपस्थित किया है :—

"मनहु कला ससि भान, कला सोलह सो वन्निय।
वाल वेष ससिता समीप अम्रित रस पिन्निय।
विगसि कमल स्रिग भ्रमर नैन खंजन मृग लुट्टिय।
हीर, कीर, अरु विंव, भाँति नख-सिष अहि घुट्टिय।
छप्पति गयंद हरि हंस गति, विह वनाय संचै सचिय।
पदमिनिय रूप पदमावतिय, मनहुँ काम कामिनि रचिय।"

शृङ्गार के अन्तर्गत चंद ने नख-शिख-सौन्दर्य और सद्यः स्नाता का विस्तार से वर्णन किया है, नख-शिख वर्णन के अन्तर्गत इच्छिनी, पृथा और संयोगिता का नख-शिख वर्णन है। रूप और शृंगार-वर्णन के निम्न प्रसङ्ग वड़े अनूठे वन पड़े हैं :—

१—इच्छिनी का शृंगार
२—पंडीरी दाहिमी रूप

३—पृथा का शृङ्गार
४—इन्द्रावती का रूप
५—हंसावती के शृङ्गार का वर्णन
६—अप्सराओं का सौन्दर्य-वर्णन
७—संयोगिता का अङ्ग-सौन्दर्य वर्णन

इच्छिनी की वयःसंधि का निम्न वर्णन कितना मादक है :—

"बाले तन्वय मुग्ध मध्यह इमं स्वपनाय वैसंधयं ।
मुग्धे मध्यमश्याम वामति इमं मध्यान छाया पगं ।।
बालप्पन तन मध्य जोवन इमं सरसीअ अग्गी जलं ।
अंग मध्य सनीर झलमल ससी सुम्भेसु सैं सव्वयं ।।"

इच्छिनी का सद्यः स्नाता सौन्दर्य का वर्णन मुनियों और योगियों का भी ध्यान भंग करने वाला है—

"कवहूँ गहि सुक्त सिषंड वरैं, मनों नंषत केसन सिंधु सरैं ।
जु सितं सित नीर लिलाट धपैं, सु मनो मिलि सोमहि गंग लसैं ।
जल में भिजि मुँहूँ कला, दुसरी, सुलरैं मनु बाल अतीन वरी ।
वुधि चित्त उपंग कितीक कहौं, निज पट्टि अभै व्रत वेद वहौं ।"

× × ×

"करि भज्जन अंगोछि तन, धूप वासि वहु अंग ।
मनो देह जनु नेह फुलि, हेम मोज जनु गंग ।।"

नख-शिख वर्णन जितना सुन्दर चन्द ने किया है, उसकी समता अन्यत्र खोजने से कम ही मिलेगी । कुछ उदाहरण लीजिए :—

वेणी-वर्णन

"ओपमा भुअ वेनी विशाल । नागिनी असित सित सहित वाल ।"

कुचों तक फैले हुए केश और कंचुकी-वर्णन

"नग माल वाल कुच पर विसाल । ओपम्म चन्द चिंती सुसाल ।।
चिंतिय सु वरैं वर सिम पुव्व । मनमथ्थ उक्र मुष फुंकि उद्ध ।।"

× × ×

"शोभै त्रिमाल कुच तर तरंग, जनु तिथ्थराज मंडली अनंग ।
सोभै-सुरंग कंचुकी वाम, जनु संभरेह पर कुटी काम ।।"

कटि-वर्णन

"कटि घटि निट्ठ मुट्ठिय समाय।
मनु ग्रहन धनुष मनमथ्थराय।"

जंघा-वर्णन

"वर जंघ रम्भ विपरीत तंभ।
कैं पिंडि दिष्ट मनमंथ्थ संभि।"

कंचुकी का उठाव

"उठी पट कुट्टिय कंचुकी वाम कि जीवन को त्रिपुर चलि-काम॥"

कपोल-वर्णन

"उपमा सु कपोलन की चिलकैं,
जु मनौ ससि है रवि में झलकैं।"

नितंब-वर्णन

"नितंव तुङ्ग सोभए, अनंग अंग लोभए।
मनो कि रूप रंभ के, सुरंभ चक्क संभ के॥"

संयोग-शृङ्गार के अन्तर्गत चंद ने प्रथम स्पर्श, आलिंगन और प्रथम साक्षात्कार का वड़ा ही रोचक और मादकतापूर्ण वर्णन किया है। पद्मावती शुक से पृथ्वीराज के आने का समाचार पाती हैं। वह तुरन्त अपनी सज्जा में लीन हो जाती है। इसमें हृदय की उमंग उमड़कर वाहर छलकने लगती है :—

"संदेस सुनत आनंद गैन।
उमगीय वाल मनमथ्थ सैन॥
तन चिकट चीर डारयो उतारि।
मंजन मंयक नवसत सिंगार॥
भूषन मंगाय नष सिष अनूप।
सजि सैन मनौं मनमथ्थ भूप॥"

इच्छिनी के प्रसंग में पृथ्वीराज तथा इच्छिनी के परिणय के पश्चात् आलिंगन का बहुत ही हृदय स्पर्शी चित्रण चंद ने किया है। निम्न उदाहरण में शारीरिकता और मानसिकता का अनुपम योग हुआ है। प्रिय के हृदय से उरोजों का स्पर्श होने पर उस वाला ने अर्ध-निमीलित नेत्रों से देखा। प्रियतम

के उर-स्पर्श से उसके कुच इस प्रकार उत्तेजित हुये मानो प्रियतम के प्रति हृदय के भाव उमड़कर ऊपर उठ रहे हों :—

"उअर उरोजनि सत्ते, सिद्धि बालाय दिठ्ठयी नैनं।
कुच तुछ अंकुर उठ्ठै, प्रीतम विम्भाव हियो चढ़ई ॥"

चंद ने प्रिय-समागम और सुरति-सुख का वर्णन किया है, परन्तु अन्य कवियों की तरह वर्णन में अश्लीलता नहीं आने पाई है। इसके लिये रासोकार ने संकेत शैली अपनाई है—

"ऐन सैन रति मैन सम, प्रथम समागम वाल।
नेह देह दुअ एक हुअ, परे प्रेम रस जाल।
इत्तं सुक्ख गनिज्जै, लज्जीजै, जोहयो कव्वी।
वारिज विपनं मज्झं, सुझ्झै न हरुअ गरुआयं ॥"

प्रथम समागम के लिये जाते समय इच्छिनी के हृदय में कौमार्य-भंजन का भय भी है और मिलनोत्कंठा भी है। निम्न उदाहरण में इस दशा का बड़ा ही मनोवैज्ञानिक चित्र कवि ने उपस्थित कर दिया है :—

"हलहलै लता कछु मंद वाय।
नव वधू केलि-भय कंप पाय।
उपमां उर कवी कहीय ताम।
जुव्वन तरंग अंगि अंगि काम।"

इस प्रकार भाव, विभाव और अनुभावों की योजना द्वारा 'पृथ्वीराज रासो' में संयोग-शृङ्गार का वर्णन वहुत विस्तार से हुआ है। संयोग-शृङ्गार के अन्तर्गत रूप-वर्णन, नख-शिख-वर्णन और पूर्वराग से लेकर प्रथम समागम तक चंद से कोई भी सूक्ष्म से सूक्ष्म वर्णन भी अछूता नहीं रहा। परन्तु शृङ्गार वर्णन की सबसे प्रमुख विशेषता यह रही है कि वह सर्वत्र संयत रहा है। उसमें स्थूलता और अश्लीलता नहीं आने पाई है।

विप्रलम्भ शृंगार

विप्रलम्भ शृङ्गार के पूर्वराग, मान, प्रवास और करुण चार भेद किये गये हैं। रासो में पूर्वराग का वर्णन ही अधिक विस्तार से हुआ है। राजकुमारियाँ पृथ्वीराज के शौर्य-सौन्दर्य और गुणों की प्रशंसा सुनकर पृथ्वीराज की ओर

आकर्षित होती हैं। मिलन में बाधाएँ उनकी प्रेम-पीड़ा को उद्दीप्त करती हैं। पूर्वराग के अन्तर्गत कवि को वियोग को विकसित करने का पर्याप्त अवसर मिल गया है। पृथ्वीराज का यश श्रवण करते ही पद्मावती उनके प्रेम में पड़कर तड़पने लगती है। वह अनुराग रंग में डूब जाती है और उसके तन मन में पृथ्वीराज बस जाता है। वह शुक से शीघ्र ही दिल्ली जाकर पृथ्वीराज को ले आने को कहती है।

"सुनत श्रवन प्रथिराज जस, उमग बाल विधि अंग।
तन, मन, चित चहुवांन पर बस्यो सुरत्तह रंग।।"

× × ×

"पदमावती विलषि वर बाल वेली,
कही कीर सौं बात तब हो इकेली।
झँट जाहु तुम कीर दिल्ली सुदेसं,
वरं चहुआंन जु आनौ नरेसं।
आनौ तुम चहुआंन वर, अस कहि इहै संदेसं।
साँस सरीरहि जो रहै, प्रिय प्रथिराज नरेसं।।"

शाहबुद्दीन गोरी से पृथ्वीराज युद्ध करने चलते हैं। संयोगिता वियुक्त हो कर मूच्छित हो जाती है और पृथ्वी पर गिर पड़ती है—

"इह प्रयान नृप करत, परी संजोगि धरा धपि।
सषी करत सव जतन, चलन पयान तहाँ नृप।।"

संयोग के समय सुख देने वाली वस्तुएँ वियोग में दुखद लगने लगती हैं। पिया के विना रात्रि नागिन बन कर डसने लगती है। प्रियतम वियोग में संयोगिता के लिये समस्त सुखदायी प्रकृति विपरीत हो गई है—

"वही रत्ति पावस्स, वही मघवान धनुष्षं।
वही चपल चमकंत, वही वग पंत निरष्षं।।
वही घटा घमघोर, वही पप्पीह मोर सुर।
वही जमी असमान, वही रवि-ससि निसि वासुर।।
वेही आवास जुग्गिनि पुरह, वेई सहचरि मंडलिय।
संयोगि पयंपति कंत विनु, मुहि न कुछ लग्गत रलिय।।"

पृथ्वीराज रासो में अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुण-कथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण आदि काम-दशाओं का वर्णन मिल जाता

है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि पृथ्वीराज रासो में वियोग-वर्णन का अधिक विस्तार पूर्वराग की अवस्था के अन्तर्गत ही अधिक हुआ है। प्रवास-जनित वियोग का अधिक विकास नहीं है। इसके साथ ही संयोग-शृङ्गार की तरह वियोग-शृङ्गार को विस्तार नहीं मिल पाया है।

रौद्र रस

वीर और शृङ्गार के पश्चात् रासो में रौद्र रस को ही प्रमुखता मिली है। रौद्र वीर-रस का सहायक माना जाता है। पृथ्वीराज रासो में वीर-रस के साथ में बहुत से स्थलों पर रौद्र रस की अभिव्यक्ति हुई है। निम्न उदाहरण में रौद्र-रस की स्वतन्त्र व्यंजना हुई है। चन्द जयचन्द के दरबार में पृथ्वीराज के यश और पराक्रम का वर्णन करता है। इसे सुनते ही जयचन्द क्रोध में भर जाता है।

"सुनत पंग कवि वयन नयन, श्रुत वदन रत्तवर।
भुवन बंक रद अधर, चंपि उर उससि सासभ्भर ॥
कोप कलंमलि तेज, सुन विक्रम अरि क्रंमह।
सगुन विचार कमंध, दिष्षि दिसि चंद सु पिम्मह ॥
आदर सुभट्ट राजिंद किय, अंग ऐंडाइ विसतारि करि।
नत मिलत मोहि संभरि धनिय, कहौ वत्त मुष विरद बर ॥"

यहाँ जयचन्द आश्रय, पृथ्वीराज का यश और पराक्रम आलम्बन, सुल्तान गोरी, भीमदेव चालुक्य आदि का मान-मर्दन किया जाना उद्दीपन, जयचन्द के नेत्र लाल होना, भ्रकुटी टेढ़ी होना, होंठ चबाना आदि अनुभाव हैं। 'कलमंलि' में अमर्ष-संचारी है।

वीभत्स रस

पृथ्वीराज रासो में वीभत्स रस का स्वतन्त्र रूप में वर्णन नहीं हुआ है। यत्र-तत्र वीभत्स-रस की व्यंजना युद्ध-वर्णन के अन्तर्गत ही हुई है। एक उदाहरण लीजिए—

"पत्र भरें जुग्गिनि रुधिर, गिद्धय मंस उकारि।
नच्यो ईस उमया सहित, रुंड माल गल धारि॥"

भयानक रस

भयानक रस की व्यंजना वीर-रस के साथ और स्वतन्त्र रूप में भी हुई है। स्वतन्त्र रूप में भयानक-रस का एक वर्णन लीजिए—

"सुनिय वयन्न श्रवन्न, कंपि प्रथिराज थरत्थर।
जिते सथ्थ सूर सामन्त, सूर उर त्रास धरद्धर।।
गये वदन कुमिलाय, सक्कि अति अधर अद्ध उध।
वोलत वोल न वनै, सनै संताप साप दध।।"

शान्त-रस वीर-रस विरोधी है अतः वीरकाव्य 'रासो' में शान्त रस की अभिव्यंजना नहीं हुई है। खोजने पर एकाध उदाहरण ही मिलेंगे। इसी प्रकार हास्य और करुण रस का भी आधिक्य नहीं है। विभिन्न वीरों की स्त्रियों के सती होने में करुण-रस की व्यंजना आती है। अद्भुत-रस के अनेक प्रसंग 'रासो' में आये हैं।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता हैं कि पृथ्वीराज रासो में कवि ने नव-रस की बड़ी ही सफल योजना की है। रासो चरित्र-प्रधान वीर-काव्य हैं। कथानक की इतिवृत्तात्मकता और वस्तु-वर्णन में रासोकार ने अनुभूतिपूर्ण रसात्मक प्रसंगों की बड़ी मनोरम व्यंजना की हैं। इन अनुभूतिपूर्ण रसात्मक स्थलों ने इतिवृत्तात्मक वर्णनों को भी सरस वना दिया हैं।

प्रकृति-चित्रण

'पृथ्वीराज रासो' में प्रकृति के भव्य चित्र अंकित हुए हैं। पट-ऋतु वर्णन तो वड़ा ही आकर्षक वन पड़ा है। अधिकांश प्रकृति-वर्णन उद्दीपन के रूप में हुआ है, परन्तु उसकी सवसे वड़ी विशेषता यह है कि वह कथानक का अङ्ग वन गया है। 'रासो' में स्वतन्त्र-वर्णन का प्रायः अभाव रहा है। समस्त-प्रकृति-वर्णन निम्न श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं—

१. आलम्वन रूप में प्रकृति-चित्रण।
२. उद्दीपन रूप में प्रकृति-चित्रण।
३. आलंकारिक-प्रकृति-चित्रण।

आलम्वन रूप में प्रकृति-चित्रण

चन्द दरवारी कवि थे। राजदरवार की सीमाओं में रहते हुए भी उन्होंने आलम्वन रूप में प्रकृति के सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये हैं। एक उदाहरण लीजिए—

"गज्जरन दरिय सम्मीर सद्द ।
निझ्झरत झरय नद रोर नद्द ।।
निझ्झरहि सरिय झरहर करुर ।
उम्भरहि सलित सलिता सपूर ।।"

उद्दीपन रूप में प्रकृति-चित्रण

शृङ्गार के उद्दीपन के रूप में प्रकृति को कवियों ने अपने काव्य में प्रमुख स्थान दिया है। पृथ्वीराज रासो में ऋतु-वर्णन बड़ा ही सजीव है, षटऋतु-वर्णन कथानक के नायक पृथ्वीराज और नव-विवाहिता संयोगिता से सम्बन्धित है। पृथ्वीराज उसके विलास और मोह-पाश से निकलकर वारम्वार जाना चाहते हैं। संयोगिता ऋतुओं की रमणीयता का प्रतिपादन कर उनको रोकने का प्रयास करती है। संयोगिता ही नहीं अपितु प्रत्येक रानी रति-विषयक उत्तेजना प्रदान करती है। समस्त षट्ऋतु वर्णन कामोद्दीपक भावों से युक्त है। षट्ऋतु-वर्णन वसन्त से प्रारम्भ होता है—

"सामग्गं कलधूत नूतन शिखरा मधुलेहि मधुवेष्टिता ।
वाता सीत सुगन्ध मन्द सराना आलोल साचेष्टिता ।।
कंठी कंठ कुलाहेल मुकलया कामस्य उद्दीपनी ।
रले रत्त वसन्त पत्त सरसा संजोगि भोगाइते ।।"

वसन्त अपनी मादकता बिखेर रहा है। मधुकर मधु पीकर उन्मत्त हो रहे हैं। शीतल, मन्द, सुगन्धित पवन चल रही है। वसन्त के ऐसे उन्मादक वातावरण में संयोगिता पृथ्वीराज के साथ संभोग कर रही है।

ग्रीष्म का वर्णन

"दीहा दिव्व संदभ कोप अनिला आवर्त मित्राकरं ।
रेन सेन दिसान थान, मलिना गोयग्ग अडंवरं ।।
नीरे नीर अपीन छीन छपया तपया तरुण्या तनं ।
मलया चन्दन चन्दमंद किरणासु ग्रीष्म आसेचनं ।।"

ग्रीष्म में अनिल कुपित हो रही है। रेणु की सेनाएँ दिशाओं में छा गई हैं। मलय, चन्दन और चन्द्रमा की किरणें ही सुखदायी हो रही हैं। ऐसी ग्रीष्म सुषमा में संयोगिता पृथ्वीराज के साथ संभोग कर रही है।

शरद-ऋतु

शरदागम नव-दम्पत्तियों को अधिक कामोद्दीप्त कर देता है । इस समय कोई भी युवती अपने प्रियतम को नहीं छोड़ना चाहती । संयोगिता भी पृथ्वीराज से आग्रह कर रही है कि वे ऐसे समय में उसको अकेली छोड़कर न जायँ—

"विले युत सनेह मेह मुगता मुक्तानि दिव्वा दिने ।
राना छत्रिन साजि रात्रि छिनया नंदानन व्यासने ॥
कुसुमे कातिग चन्द निर्मल कला दीपानि वर दायते ।
माँ मुक्के पिय वाल नाल समया सरदाय दर दायते ॥"

हेमन्त-ऋतु

"छिन्नं वासुर सीत दिघ्घ निसया सीतं जनेतं बने ।
सेजं सज्जर वानया वनितया आनंग आलिगने ॥
या वाला तरुणी वियोग, पतनं नलिनी हिमंतेहिमं ।
मा मुक्के हिमवंत मंत गमने प्रमदा निरालम्वनं ॥"

संयोगिता दीन होकर कह रही है कि हे प्रियतम ! हेमन्त में गमन न करो अन्यथा यह प्रमदा क्षणभर भी जीवित न रह सकेगी । वर्षा की प्रकृति और झड़ी संयोगिता के प्रेम को उद्दीप्त कर देती है । संयोगिता प्रियतम से अनुनय करती है कि वे पावस में न जायँ क्योंकि विरह की अग्नि उसके शरीर को तपा कर नष्ट कर देगी—

"घन गरजै घरहरै पलक निस रैन निघट्टै ।
सजल सरोवर पिष्षि, दियौ ततहन घन फट्टै ॥
जल बद्दल वरषंत, पेम पल्लहौ निरंतर ।
कोकिल सुर उच्चरै, पहरंत पंचसर ॥
दादुरह मोर दामिनि दसय, अरि चवत्थ चातक रटय ।
पावस प्रवेस बालम न चलि, विरह अगिनि तन तप घटय ॥"

बादलों की गम्भीर गर्जना के साथ भीषण वर्षा संयोगिता को कामाग्नि से पीड़ित करती है—

"मोर सोर चिहुँ ओर, घटा आषाढ़ बद्दि नभ ।
वक, दादुर झिंगुरन, रटत चातिग रंजत सुभ ॥
वरषंत बूँद घन मेघ सन, तव सुमिरै जद कुँअरि ॥"

शिशिर-ऋतु

शिशिर ऋतु की प्रकृति पद्मावती के वियोग को उद्दीप्त कर देती है। उसकी रोमावली घन है, श्रेष्ठ स्नेह नीर है, गिरि द्रंग जल की धारा है। कुच पवन हैं और शिशिर की रात्रि में विरह हृदय रूपी वाटिका को उजाड़ने वाला कारण है। उसके विरह रूप मृग का वध करने वाला उसका सिंह रूप प्रियतम है। अतः निम्न छन्द में वह स्वामी को जाने से रोकती हुई कहती है—

"रोमाली घन नीर निद्ध चरयो गिरि दंग तारायते।
पव्वय पीन कुचानि जानि मलया फुंकार फुंकारये॥
शिशिरे सर्वरि वारुनी च विरहा मम हृदय विद्दारये।
मा कांत मृग वद्ध सिंघ मने किं दैव उव्वारये॥"

आलंकारिक प्रकृति वर्णन

'पृथ्वीराज रासो' में आलंकारिक रूप में भी प्रकृति का पर्याप्त चित्रण हुआ है। कवि ने नख-शिख वर्णन में प्रकृति से चुन-चुनकर उपमान जुटाये हैं। प्रकृति के विभिन्न रूपों को लेकर उत्प्रेक्षा, उपमा तथा रूपक का सफल निर्वाह चन्द ने किया है। एक उदाहरण लीजिए—

"चन्द वदनि मृगनयनि, भौंह असित कोदंड वनि।
गंग मङ्ग तरलति तरङ्ग, वेनी भुअङ्ग वनि॥
कीर नास भृगु दिपति, दसन दामिक दारमकन।
छीन लंक श्रीफल अपीन चंपक वरन तन॥"

'पृथ्वीराज रासो' के भावपक्ष के निरूपण के पश्चात् सहज ही यह परिणाम निकाला जा सकता है कि कथानक में भावात्मक अनुभूति और कोमल कल्पनाओं को सर्वत्र स्थान मिला है। वीर-भाव का रूप वीरता, आतंक, निर्भीकता, साहस, कर्त्तव्य एवं धर्म-पालन के रूप में प्रकट हुआ है।

कलापक्ष

भावपक्ष यदि काव्य की आत्मा है, तो कलापक्ष उसका शरीर है। सफल और पुष्ट कलापक्ष के अभाव में रसात्मक भावाभिव्यक्ति नहीं हो सकती। कलापक्ष के अन्तर्गत छन्द, अलंकार, गुण, रीति, भाषा और शैली आते हैं। आगे हम कलापक्ष के प्रत्येक तत्त्व पर विचार करेंगे।

छन्द-योजना

'पृथ्वीराज रासो' में चन्दवरदाई का छन्द-कौशल अद्भुत है। उनके समान छन्दों पर अधिकार अन्य किसी कवि का नहीं मिलता। रासो में अनेकानेक छन्दों का प्रयोग बड़ी सफलता से हुआ है। भावों के अनुसार छन्द नए-नए रूप धारण करते चले जाते हैं। छन्द-परिवर्तन के कारण कथा-प्रवाह में व्यवधान नहीं आता। पृथ्वीराज रासो में लगभग बहत्तर प्रकार के मात्रिक, वर्णिक, संयुक्त वृत्त तथा फुटकर छन्दों का प्रयोग हुआ है। इसमें 'कवित्त', 'छप्पय', 'दूहा', 'पद्धरी', 'गाहा', 'आर्या', 'अरिल्ल', 'नाराच', 'त्रोटक', 'साटक', 'भुजंग प्रपात', 'तोमर' आदि छन्दों का प्रयोग हुआ है। इन छन्दों में सर्वाधिक छप्पय और उसके पश्चात् आर्या, दूहा और पद्धरी छन्द को अधिक महत्त्व मिला है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार 'चन्दवरदाई छप्पयों का राजा था।" ......वैसे तो हर तलवार की झंकार में चन्दवरदाई तोटक, तोमर, पद्धरी और नाराच पर उतर आते हैं, पर जमकर वे छप्पय और दूहा ही लिखते हैं।" डा० विपिनविहारी त्रिवेदी ने 'पृथ्वीराज रासो' के छन्दों की समीक्षा करते हुए लिखा है—

"इस काव्य के अधिकांश छन्द, प्राकृत और अपभ्रंश के हैं। जिनमें से कुछ का प्रयोग परवर्ती हिन्दी-साहित्य में जोधराज कृत्त 'हमीर रासो' और सूदन कृत 'सुजान चरित्र' प्रभृति वीर प्रबन्ध काव्यों मात्र के अतिरिक्त अपेक्षाकृत कम देखा जाता है, तथा इससे वह भी निर्विवाद रूप में सिद्ध हो जाता है कि इसके मूल रूप का प्रारम्भ १२वीं शताब्दी में ही हुआ होगा, जबकि इन छन्दों का बोलबाला था।"

× × ×

"विविध आकार-प्रकार वाले रासो के समयों की छन्द-योजना और उसका स्वच्छंद दीर्घ विस्तार सरसता का साधक है, बाधक नहीं।......वे अवसर के अनुकूल ओज, माधुर्य और प्रसाद गुणों की सफल सृष्टि करते हैं।......अस्तु हम साहस के साथ कह सकते हैं कि कवि ने अपने छन्दों का चुनाव बड़ी दूरदर्शिता से किया है। कथा के मोड़ों को भली प्रकार पहिचान कर वर्ण और मात्रा की अद्भुत योजना करने वाला रासो का रचयिता वास्तव में छन्दों का सम्राट था।"

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि 'पृथ्वीराज रासो' के छन्द भावोत्कर्ष में सहायक हैं। डा० नामवरसिंह का रासो की छन्द-योजना के सम्बन्ध में निम्न कथन सत्य ही है—

"वस्तुतः हिन्दी में चंद को छन्दों का राजा कहा जा सकता है। भाव-भंगिमा के साथ-साथ दनादन भाषा नए-नए छन्दों की गति धारण करती चलती है और विशेषता यह है कि वल खाती हुई नदी में वहते हुए चित्त को कोई मोड़ नहीं खटकता। छन्द-परिवर्तन के प्रवाह में सहज आत्म-विस्तृति का ऐसा सुख अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। रासो में एक ही साथ संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश की छन्द-परम्परा के पुनरुज्जीवन तथा हिन्दी के नूतम छन्द-संगीत के सूत्रपात की संधि वेला है। इस तमाम छन्द-संघटन में भी रासो का अपना हिन्दी काव्योचित संगीत सर्वोपरि है।"

अलङ्कार-योजना

"पृथ्वीराज रासो' की अलङ्कार-योजना में पांडित्य-प्रदर्शन का प्रयास नहीं है, और न व्यर्थ ही अलङ्कार ठूँसने की प्रवृत्ति ही दिखाई पड़ती हैं। प्रायः सभी अलङ्कार भावाभिव्यक्ति में सहायक बनकर सहज ही आ गये हैं। 'रासो' में शब्दालङ्कार एवं अर्थालङ्कार—दोनों ही प्रकार के अलङ्कारों में सहजता और स्वाभाविकता का गुण मिलता है। डा० विपिनबिहारी ने पृथ्वीराज रासो की अलङ्कार-योजना के सम्बन्ध में कहा है—

"……कुछ अलङ्कारों को छोड़कर रासो में उनकी योजना स्वाभाविक रूप में है।"

'रासो' में वर्णन के अनुकूल अनुप्रास की सुन्दर योजना मिलती है। शब्दालङ्कारों में यमक, वक्रोक्ति और अर्थालङ्कारों में उपमा, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, भ्रान्तिमान, स्मरण, उदाहरण आदि अलंकारों का सर्वत्र सफल प्रयोग मिलता है।

शब्दालङ्कार

अनुप्रास

१. "पद्मावति विलषि वर बाल वेली।"
२. 'प्रवीन कोक केलयं कुकी कुकेक केलयं।"

३. कुट्टिय कुलाह कलंतरह, डकी-ढाल ढढोरियै ।"
४. "जंग जुरन जालिम जुझार ।"

यमक

१. "वह गोरी पद्मावती, गहि गोरी सुरतान ।"
२. "हरि-हरि हरि बन हरित महि, हरत पिष्षयै अंषि ।
सारंग रुकि सारंग हो, सारंग करनि करिष्ष ।"
३. दै पानी दिल्ली धरा, मनसा पानी रष्षि ।
सो चित्यो संभरि धनी, जनम सुकित्तिय अष्षि ।"

वक्रोक्ति

'वक्रोक्ति' अलङ्कार से वर्णन में वक्रता आ जाती है । जयचन्द के दरवार में चन्द पृथ्वीराज के शौर्य की प्रशंसा करता है, जयचन्द पृथ्वीराज की खिल्ली उड़ाता हुआ कहता है—

"मुह दरिद्र अरु तुच्छ तन, जंगल राव सुहद्द ।
वन उजार पशु तन चरन, क्यों दूवरौ वरद्द ॥"

यहाँ 'जँगलराव' का अर्थ 'भील' तथा पृथ्वीराज और 'वरद्द' का अर्थ 'वैल' और चन्दवरदाई है । जयचन्द वक्रोक्ति के द्वारा पृथ्वीराज को भील और चन्द को वैल कह देता है ।

अर्थालंकार

रसात्मक प्रसङ्गों में अर्थालङ्कारों का प्रयोग ही सौन्दर्य-वृद्धि करता है । चंद ने काव्य-परम्परा के अनुसार प्रसिद्ध उपमानों का ही प्रयोग किया है । कुछ अप्रसिद्ध उपमान भी आ गये हैं । इस प्रकार के अप्रसिद्ध उपमान उत्प्रेक्षाओं के अन्तर्गत आये हैं । कवि नायिका के मणि-वंध में कालीनाग पर नृत्य करते हुए कृष्ण की सम्भावना करता है :—

"मनीस वाल साच ज्यौं, कि कान्ह कालि नाथ ज्यौं ।
सरीन वैन कथ्थयौ, जु कान्ह कालि मथ्थयौ ।
मनि वंध पुहपति दीसए, जनु कान्ह कालिय सीसए ।
जनु सीस फूलत अच्छयौ, मनु कान्ह कालिय सुच्छयौ ॥"

उपमा

रासो में उपमा पूर्णोपमा, नियवयवा, लुप्तोपमा एवं मालोपमा आदि समस्त भेदों का प्रयोग हुआ है। निम्न उदाहरण में 'तन' उपमेय, 'तिनुका' उपमान 'सम' वाचक है :—

"माया मोह विरत्त मन, तन तिनुका सम डारि।
जुट्टं पिथ्थ दरबार महि, की तरवार दुधारि।"

रूपक

रासो में रूपक और उसके भेदों का प्रयोग हुआ है। रासोकार को साँग-रूपक विशेष प्रिय है। निम्न उदाहरण में नायिका में नदी के अवयवों का आरोप है :—

"वाल नाल सरिता उतंग, आनंग अंग सुज।
रूप सुतट्ट मोहत तड़ाग, भ्रम भये कटाच्छ दुज।
प्रेम-पूर विस्तार, जोग मनसा विध्वंसन।
दुति ग्रह नेह अथाह, चित्त करषन पिय ट्ठुन।
मन विसुद्ध बोहिथ्य वर, नहिं थिर चित जोगिंद तिहि।
उतरन पार न पावै नहीं, मीन तलफ लगि मत्त विहि॥"

उत्प्रेक्षा

उपमेय में उपमान की सम्भावना से उत्प्रेक्षा होती है। रासो उत्प्रेक्षाओं का तो भण्डार ही है। नवीन उपमानों ने कहीं-कहीं पर भाव को अत्यधिक सरल और प्रभावोत्पादक वना दिया है :—

१—"कुच मद्धि हार विराज, हरद्वार गंगा जु राज।"
२—"नितंब तुंग सोहये, अनन्त अंग लोमये।
मनों कि रथ्य रम्भ के, के सुरम्भ चक्क संभ के।"
३—"जीति जग सैसव जु वय, इह पिष्षिय उन्मान।
मानो वाल विदेस पिय, अग्गय सुनि फुलिकान।"

प्रतीप

प्रतीप में उपमान की उपमेय रूप में कल्पना की जाती है। इस प्रकार उपमेय का उत्कर्ष दिखाया जाता है। निम्न उदाहरण में राजकुमारी हेमावती के अङ्ग-प्रत्यङ्ग का उत्कर्ष दिखाने के लिए उपमानों का अपकर्ष दिखाया है :—

"वैनि नाग लुट्ट्यौ, वदन ससि राका लुट्यौ ।
नैन पदमपंघुरिय, कुम्भ कुच नारिंग छुट्यौ ।"

स्मरण

पूर्वानुभूत वस्तु सदृश किसी वस्तु को देखकर उसकी स्मृति आने में स्मरण अलङ्कार होता है । वियोगिनी संयोगिता को वियोग-काल में प्रकृति संयोग की स्मृति को सद्य कर देती है :—

"वही रत्ति पावस्स, वह मघवान धनुष्षं ।
वही चपल चमकंत, वही वगपँत निरष्षं ।
वही घटा घनघोर, वही पप्पीह मोर सुर ।
वही जमी असमान, वही रवि-ससि निसि वासुर ।
वेई आवास जुग्गिनि पुरह, वेई सहचरि मंडलिय ।
संजोगि पयंपति कंत विन, मुहि न कछु लग्गत रलिए ।"

भ्रान्तिमान

एक वस्तु को भ्रम के कारण दूसरी वस्तु समझ लेने में भ्रान्तिमान अलङ्कार होता है । पृथ्वीराज गङ्गा-तट पर गवाक्ष से संयोगिता को देखकर भ्रान्ति में पड़ गये—

"ससि उप्पर एक कीर, कीर उप्परि भ्रग दिट्ठौ ।
भ्रग उप्पर कोवंड, संघ कंन्द्रप्प बयट्ठौ ॥"

अतिशयोक्ति

"गंग डोलि ससि डोलि, डोलि व्रह्मण्ड सक्र डुलि ।
अष्ट थान दिगपाल, चाल चंचाल विचल थल ॥"

लोकोक्ति

जहाँ लोक-कहावतों के माध्यम से भावों को अधिक बल दिया जाता है । रासो में अनेकानेक स्थलों पर लोकोक्ति का प्रयोग हुआ है :—

१—"नीच वान नीचह जनिय, विलसन किति अयग्ग ।
सुनहु सरूप मुत्ति कर, दासि चरावत कग्ग ॥"
२—"जव फुट्टे आकाश कौन थिगरी सू रष्षै ।"
३—"जल मह ज्यो गति जोंक, भेद कोई न जानं ।"

'पृथ्वीराज रासो' में कवि का अलङ्कार-योजना कौशल सराहनीय है। सर्वत्र अलङ्कारों की प्रचुरता है। अलङ्कार कोरे चमत्कार-प्रदर्शन के लिए प्रयुक्त नहीं हुए हैं वे भावाभिव्यक्ति में सहायक हैं।

अभिव्यक्ति-कौशल और भाषा

'रासो' में अभिव्यक्ति-कौशल देखते ही वनता है। अनुभूति और अभिव्यक्ति का सर्वत्र समन्वय वना रहता है। निम्न उदाहरण में उत्प्रेक्षा अलङ्कार है। इसके द्वारा कवि नव-युवती की सुकुमारता के साथ ही उसकी लज्जाशीलता, अनुराग और हृदय की उमंग आदि आन्तरिक भावों का चित्रण कर देता है। शशिव्रता मन्दिर की ओर वढ़ी। सखियाँ उसको घेरे हुये हैं। मन्दिर में प्रथम दर्शन हुआ। सुकुमार लज्जा-भार-भरिता शशिव्रता की शोभा देखते ही वनती है। पृथ्वीराज ने उसकी बाँह पकड़ी, मानो गजराज ने लहराती हुई कांचन लता को पकड़ लिया हो। यहाँ कवि की कवित्व-शक्ति का पूरा परिचय मिल जाता है—

"चौंहान हथ्थ वाला गहिय,
सो ओप्पम कवि चन्द कहि ॥
मानो कि लता कंचन लहरी,
मत्त वीर गजराज गहि ॥"

'रासो' में अभिव्यक्ति क्षमता सवसे अधिक भाषा-अधिकार के रूप में देखी जा सकती है। कवि अपनी इच्छानुसार शब्दों का प्रवाह मोड़ देता है। प्रत्येक शब्द जैसे उसके इंगित पर नाचता हुआ दिखाई पड़ता है। उसने प्रत्येक शब्द को वहुत तराश-तराश कर रखा है। शब्द-योजना इतनी समर्थ है कि वर्णनीय वस्तु का चित्र-सा खड़ा हो जाता है। शब्द-चयन, पद-प्रयोग की सार्थकता, ध्वन्यात्मकता और नाद-सौन्दर्य रासो की भाषा की विशेषता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि रासो की भाषा चित्र-विधायिनी है। शास्त्रीय दृष्टि से 'रासो' भाषा-वैचित्र्य का उदाहरण प्रस्तुत करता है।

'रासो' में यत्र-तत्र अरवी-फारसी के शब्द भी मिलते हैं। संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश-मिश्रित हिन्दी का आदि रूप 'रासो' की भाषा प्रस्तुत करती है। छन्द-भेद के आधार पर भाषा में परिवर्तन हो जाता है। मात्रिक छन्दों के प्रयोग में भाषा का प्रकृत रूप मिलता है। इसमें न तो अनुस्वार रंजन मिलेगा और न

समास एवं तत्सम के प्रयोग की अधिकता ही। वर्णिक छन्दों की भाषा में संस्कृतमयता लाने का प्रयास किया गया है।

निष्कर्ष

इस प्रकार 'पृथ्वीराज रासो' भावाभिव्यंजना, वस्तु-वर्णन, अलङ्करण, उक्ति-वैचित्र्य तथा अभिव्यक्ति कौशल आदि सभी दृष्टियों से उत्कृष्ट काव्य ठहरता है। साहित्यिक दृष्टि से 'रासो' उत्कृष्ट काव्य है। वाह्य एवं अन्तरंग प्रकृति-पर्यवेक्षण, भाव-माधुरी, व्यापक ज्ञान-गरिमा एवं सजीव भाव-प्रतिभा का रासो अनूठा उदाहरण है।

प्रश्न २८—प्रकृति-चित्रण की दृष्टि से पृथ्वीराज रासो की समीक्षा कीजिए।

उत्तर—प्रश्न संख्या २७ के उत्तर में 'प्रकृति-चित्रण' शीर्षक को पढ़िए।

प्रश्न २९—रस-योजना की दृष्टि से 'पृथ्वीराज रासो' की सोदाहरण समीक्षा कीजिए और सिद्ध कीजिए कि 'रासो' में अंगी रस वीर है, अन्य रस सहायक रूप में आये हैं।

उत्तर—प्रश्न संख्या २७ के उत्तर में 'रस-योजना' शीर्षक को पढ़िए।

प्रश्न ३०—छन्द-योजना और अलंकार योजना की सफलता की दृष्टि से पृथ्वीराज रासो की समीक्षा कीजिए।

उत्तर—प्रश्न संख्या २७ के उत्तर में 'छन्द-योजना' और 'अलंकार-योजना शीर्षक को पढ़िए।

९

भाषा-शैली

प्रश्न ३१—भाषा-शैली की दृष्टि से पृथ्वीराज रासो की समीक्षा कीजिए ।

अथवा

प्रश्न ३२—रासो की भाषा की भाषा-विज्ञान, व्याकरण और काव्य की दृष्टि से शास्त्रीय विवेचना कीजिए ।

अथवा

प्रश्न ३३—"पृथ्वीराज रासो अनेक भाषाओं का अजायबघर है ।"—इस कथन की सोदाहरण समीक्षा कीजिये ।

अथवा

प्रश्न ३४—'पृथ्वीराज रासो' की भाषा के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए उसमें पाई जाने वाली अनेकरूपता के कारणों पर प्रकाश डालिए ।

स्मृति-संकेत

१. रासो में छन्दों के प्रयोग के अनुसार शैली में भेद हो गया है ।
२. मात्रिक छन्दों का जहाँ प्रयोग हुआ है, भाषा में अनुस्वार, सामासिकता और तत्समता न मिलेगी ।
३. वर्णिक छन्दों में अनुस्वार-रंजन, सामासिकता और तत्समता है ।
४. वर्ण्य-विषय के अनुसार शैली-भेद कम है । युद्ध-वर्णन सम्बन्धी प्रसंगों में शैली-भेद कुछ अधिक मिलता है ।
५. शाहबुद्दीन सम्बन्धी प्रसंगों में विदेशी शब्दों का प्रयोग हुआ है ।
६. कहीं-कहीं शैली में इतनी संक्षेप-प्रवणता है कि पाठकों को अर्थ ग्रहण करने के लिए अपनी तरफ से कुछ न कुछ शब्द जोड़ने पड़ते हैं ।

७. रासो की भाषा में व्याकरण के नियम पिंगल भाषा के ही हैं।
८. रासो की भाषा अपभ्रंश, डिंगल अथवा राजस्थानी न होकर पिंगल है।
९. रासो भाषाओं का अजायबघर है।
१०. रासो की भाषा अपभ्रंशोत्तर काल की पुरानी हिन्दी अथवा ब्रजभाषा है।

उत्तर—भाषा विज्ञान की दृष्टि से रासो की भाषा का महत्त्व

'पृथ्वीराज रासो' की भाषा का अध्ययन भाषा-विज्ञान की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। इसमें हिन्दी-भाषा का प्राचीनतम रूप सुरक्षित है, अतः यह हमारी भाषा का प्राचीनतम रूप सामने लाने में सहायक हो सकता है। भाषा-विज्ञान की दृष्टि से रासो का अभी तक वैज्ञानिक अध्ययन नहीं किया गया है। सबसे पहले पाश्चात्य विद्वान एफ० एस० ग्राउज ने 'पृथ्वीराज रासो' की भाषा का अध्ययन किया। इसके पश्चात् 'रासो' की भाषा के अध्ययन के सम्बन्ध में छोटे-मोटे प्रयास होते रहे। 'रासो' की भाषा के अध्ययन में सबसे बड़ी कठिनता प्रामाणिक मूल रासो के अनुसन्धान की है।

विद्वानों के मत

डा० विपिनविहारी त्रिवेदी में 'पृथ्वीराज रासो' की भाषा के सम्बन्ध में अपने निष्कर्ष निम्न प्रकार दिये हैं—

"भाषा-शास्त्री को यदि भारत की गौड़ीय भाषा की अभिसंधि देखनी है, तो रासो से अधिक चमत्कृत करने वाला दूसरा कोई ग्रन्थ उसे न मिलेगा। विभिन्न भारतीय भाषा की संख्या में उसे अनोखे और क्रान्तिकारी सिद्धान्तों के नियमन का अवसर स्थल-स्थल पर आयेगा,............इसकी भाषा की परीक्षा करने पर कठिन समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इसमें वैदिक, संस्कृत, पालि, पैशाची, मागधी, अर्ध-मागधी, शौरसेनी, महाराष्ट्री, अपभ्रंश, प्राचीन राजस्थानी, प्राचीन गुजराती तथा पंजाबी, ब्रज आदि भारतीय आर्य भाषाओं के शब्दों के अतिरिक्त अरबी, फारसी और तुर्की के शब्दों की अनोखी खिचड़ी तैयार मिलती है, तथा देशज शब्दों की एक बड़ी संख्या है। परन्तु इस काव्य में कई शताब्दियों के अवान्तर में प्रक्षेपों का घटाटोप होते-होते भाषा का रूप और अधिक विकृत हो गया है। अनेक शब्दों के संस्कृत से लगाकर

आधुनिक काल तक जितने रूपान्तर हुए हैं, उन सबका प्रयोग 'रासो' में मिलता है। चन्द ने स्वयं रासो में छः भाषाओं—'पुराण और कुरान' का होना उल्लेख किया है—

"षट् भाषा पुराणं च, कुराणं कथितं मया।"

× ×

"षट भापा रस्स तन नट्ट नाद।
जानो विवेक विच्चार वाद॥"

× ×

"संस्कृत प्राकृतं चैव, अपभ्रंशा पिशाचिका।
मागधी सूरसेनी च, षट भाषाश्चैव जायते॥"

इस प्रकार चन्द ने अपने को अनेक भाषाओं का ज्ञाता कहा है और यही कारण है कि उनके 'रासो' में भाषा की विविधता मिलती है।

'रासो' की भाषा के सम्बन्ध में निम्नलिखित मत हैं

१. रासो की भाषा अपभ्रंश है।
२. रासो की भाषा डिंगल अर्थात पुरानी राजस्थानी है।
३. रासो की भाषा व्रज अर्थात पिंगल है।
४. रासो की भाषा मिश्रित है।

अपभ्रंश के पक्ष में

मुनि जिन विजय, पं० मथुराप्रसाद दीक्षित, मुनि कान्तिसागर, डा० सुनीतिकुमार चटर्जी, डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, डा० दशरथ शर्मा आदि पृथ्वीराज रासो की भाषा को अपभ्रंश मानते हैं। मुनि जिन विजय को शोध में अपभ्रंश भाषा के चार छप्पय मिले हैं। इनमें से तीन छप्पय 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' से प्रकाशित रासो में कुछ विकृत रूप में मिल जाते हैं। इनके आधार पर उन्होंने 'पृथ्वीराज रासो' को 'देश्य प्राकृत भाषा' में लिखा हुआ सिद्ध किया। देश्य प्राकृत भाषा से उनका तात्पर्य प्राकृताभास हिन्दी अथवा अपभ्रंश से ही है। डा० श्यामसुन्दरदास ने मुनि जिन विजय के निष्कर्षों में शंका करते हुए लिखा है—"अब प्रश्न यह उठता है कि कौन किसका रूपान्तर है। क्या आधुनिक रासो का अपभ्रंश में अनुवाद हुआ था, अथवा

असली रासो अपभ्रंश में रचा गया था पीछे उसका अनुवाद प्रचलित भाषा में हुआ। डा० दास की यह शंका असंगत है। साधारणतः पूर्ववर्ती भाषा की कृतियों का अनुवाद परवर्ती भाषा मे होता है। पं० मथुराप्रसाद दीक्षित ने पृथ्वीराज रासो की भाषा को अपभ्रंश मानते हुए लिखा है—

"पृथ्वीराज रासो बारहवीं शताब्दी में बना है उस समय की भाषा प्राकृत मिश्रित थी, अतएव पृथ्वीराज रासो का भी प्राकृत मिश्रित भाषा में निर्माण हुआ है। प्राकृत मिश्रित भाषा से तात्पर्य अपभ्रंश से ही है।

कलकत्ते के मुनि कान्तिसागर अपने पास सन् १४०६ की रासो की प्रति बतलाते हैं। उसके आधार पर उन्होंने सन् १९४६ में 'विशाल भारत' में अपनी एक लिखित टिप्पणी में रासो की भाषा अपभ्रंश घोषित की, परन्तु मुनि कांतिसागर की प्राप्त रासो की प्रति अभी तक प्रकाश में नहीं आ सकी है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने चन्दबरदाई को अपभ्रंश परम्परा का अन्तिम कवि और पृथ्वीराज रासो की भाषा को अपभ्रंश बतलाया। भाषा-वैज्ञानिक डा० सुनीतिकुमार चटर्जी ने रासो की भाषा के सम्बन्ध में अपना निष्कर्ष निम्न प्रकार व्यक्त किया है—

"निर्विवाद निष्कर्ष यह है कि मूल पृथ्वीराज रासो की रचना एक प्रकार की अपभ्रंश में हुई थी न कि किसी आधुनिक भारतीय भाषा में। और एक नवीन भाषा के आरम्भ की अपेक्षा रासो अपभ्रंश भाषा और साहित्य की देन है।"

डा० दशरथ शर्मा ने भी रासो की भाषा को अपभ्रंश अथवा पुरानी राजस्थानी कहा है।

डिंगल या राजस्थानी भाषा के पक्ष में

डा० दशरथ शर्मा रासो की भाषा को अपभ्रंश कहते हुए भी लिखते हैं—

"इन प्रदेशों की देशी भाषा में रचित राजस्थान के सम्राट और सामन्तों की गौरवमयी गाथा को हम चाहे अपभ्रंश की कृति मानें, चाहे प्राचीन राजस्थान की देश्य भाषा की, इसमें वास्तविक भेद हो गया है।"—इस उदाहरण से सिद्ध होता है कि शर्माजी रासो की भाषा को प्राचीन राजस्थानी या डिंगल मानने के पक्ष में हैं। डा० मोतीलाल मेनारिया भी प्रारम्भ में 'रासो' की भाषा पिंगल मानते रहे हैं, परन्तु बाद में उन्होंने अपने "राजस्थानी भाषा और

साहित्य" निबन्ध में 'पृथ्वीराज रासो' की भाषा को राजस्थानी मिश्रित ब्रजभाषा बताया और उसके ऊपर प्राकृत, अपभ्रंश, अरबी, फारसी आदि का प्रभाव प्रदर्शित किया। डा० रामकुमार वर्मा ने अपने 'हिन्दी-साहित्य के आलोचनात्मक इतिहास' में 'पृथ्वीराज रासो' की भाषा को डिंगल और 'रासो' को चारण-युग का डिंगली ग्रन्थ माना है।

नरोत्तम स्वामी 'पृथ्वीराज रासो' की भाषा डिंगल मानने वाले विद्वानों के मतों का खण्डन करते हुए कहते हैं—"इन विद्वानों ने न तो डिंगल को देखा, न डिंगल की इन रचनाओं का अध्ययन ही किया, और डिंगल क्या है इससे अपरिचित होने के कारण इन पिंगल रचनाओं को डिंगल कह डाला—केवल इसलिए कि इनकी रचना राजस्थान में हुई।"

पिंगल या ब्रजभाषा के पक्ष में

सर्वश्री एफ० एस० ग्राउज, जॉन बीम्स, डा० ग्रियर्सन, टैसीटरी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डा० श्यामसुन्दरदास, मिश्रबन्धु, डा० धीरेन्द्र वर्मा, नरोत्तम स्वामी, डा० उदयनारायण तिवारी आदि रासो की भाषा को पिंगल अर्थात् प्राचीन ब्रजभाषा मानते हैं। ग्राउज के अनुसार 'पृथ्वीराज रासो' की भाषा ब्रजभाषा है, वह न अपभ्रंश है और न डिंगल। डिंगल का प्रभाव जो दिखाई पड़ता है, वह शैली मात्र है। डा० ग्रियर्सन और टैसीटरी ने भी 'रासो' की भाषा को पश्चिमी हिन्दी अर्थात् ब्रजभाषा माना है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल अपने 'हिन्दी-साहित्य' के इतिहास में रासो की भाषा पिंगल ही स्वीकार करते हैं। डा० नरोत्तम स्वामी ने अन्य मतों का खण्डन करते हुए रासो की भाषा को पिंगल माना है। उनका निष्कर्ष निम्न प्रकार है—

"अनुश्रुति रासो को राजस्थानी-डिंगल की रचना नहीं मानती। राजस्थान की परम्परागत अनुश्रुति तो रासो को पिंगल (ब्रजभाषा) की ही रचना मानती आई है। केवल डिंगल से सर्वथा अनभिज्ञ कतिपय आधुनिक कालीन विद्वानों ने कुछ समय से यह भ्रांत धारणा अवश्य फैला रखी है और उनके कुछ अनुयायी भी उत्पन्न हो गये हैं।"

पं० मोतीलाल मेनारिया ने जो कारक चिन्हों का विश्लेषण प्रस्तुत किया है, वह उनको ब्रजभाषा के प्रयोग सिद्ध करता है। रासो में ब्रजभाषा की सुमधुर ललित पदावली मिलती है। कुछ उदाहरण लीजिए—

"मनहु काम कामिनि रचिय, रचिय रूप की रास ।
पसु पंछी सब मोहिनी, सूर नर मुनियर पास ।।"

× × ×

"मुक्ताहार विहार सार सुवुधा,
अब्धा बुधा गोपिनी ।।
सेतं चीर सरीर नीर गहिरा,
गौरी गिरा जोगिनी ।।"

कुछ अन्य विद्वानों के निष्कर्ष निम्न प्रकार हैं

"रासो की भाषा न मूल अपभ्रंश है न मूल राजस्थानी । वह सोलहवीं शताव्दी की व्रजभाषा का एक अत्यन्त विकृत रूप है ।

—डा० रामरतन भटनागर

"रासो के बृहद-संस्करण की भाषा का जहाँ तक सम्बन्ध है, उसका साँचा निश्चय रूप से व्रज का है ।" —डा० उदयनारायण तिवारी

"रासो के व्याकरण के नियम हिन्दी के ही हैं और प्रधानता पिंगल की है, डिंगल की नहीं ।" —डा० नामवरसिंह

मिश्रित भाषा के पक्ष में

डा० विपिनविहारी त्रिवेदी के अनुसार 'पृथ्वीराज रासो' की भाषा में वैदिक, संस्कृत-पालि, पैशाची, मागधी, अर्ध-मागधी, सौरशेनी, पंजावी, व्रज आदि भारतीय भाषाओं के शव्दों के अतिरिक्त तुर्की, फारसी और अरवी के शव्दों की भी अनोखी खिचड़ी मिलती है ।

व्याकरण की कसौटी पर रासो की भाषा

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि रासो में सस्कृत से लेकर अपभ्रंश भाषा तक की शव्दावली मिलती है । शव्दों को खूब तोड़ा-मरोड़ा भी गया है और साथ ही विदेशी शव्द भी प्रयुक्त हुए हैं, फिर भी व्याकरण के नियम हिन्दी के ही हैं और पिंगल भाषा की ही प्रधानता है ।

रासो के स्वर—वैदिक भाषा की तरह रासो में कहीं-कहीं 'ऋ' के स्थान पर 'उ' मिलता है । जैसे 'पृथ्वी' का 'पुहमि', 'पुहमी' आदि । कहीं पर मध्य

स्वरागम और कहीं पर स्वर-लोप और व्यंजन-लोप के उदाहरण भी मिलते हैं। जैसे—

अल्प=अलप।
शब्द=सबद।
भगिनी=भंग्नी।

सम्पर्क वर्ण से पूर्व के स्वर का ह्रस्व भी अनेकरूपता सहित मिलता है। जैसे 'धूम' का 'धुम्म', 'हाथ' का 'हथ्थ', 'कागज' का 'कग्गद'।

असंयुक्त व्यंजन—रासो में कहीं-कहीं 'ख' के स्थान पर 'ष' (खोरि का षोरि) हो जाता है। इसी प्रकार—

१. स्वरों के बीच का असयुक्त 'म' 'व', 'य' में बदल जाता है। जैसे—नगर का नयर, सागर का सायर।

२. पालि की भाँति 'य' के स्थान पर 'ज' मिलता है। जैसे—'योजन' का 'जोजन'।

संयुक्त व्यंजन—

१. 'ज्ञ' के स्थान पर 'ग्य' या 'गि' जैसे 'आज्ञा' से 'अग्या' या अग्गिया'।

२. परवर्ती 'र' मध्य स्वरागम द्वारा पूर्ण वर्ण हो जाता है। जैसे 'प्रचुर' से 'फरचर', 'प्रवेश' से 'परवेस'।

३. संयुक्त शब्दों को सरल और छन्दोपयोगी बनाने के लिये कुछ अन्य प्रयत्न भी किये गये हैं जैसे—'कोल्हू' को 'कोलू'।

सर्वनाम—सर्वनामों में प्रायः प्राचीन रूप ही मिलते हैं।

१. कर्त्ता, उत्तम पुरुष को साधारण रूप 'हौं' मिलता है।

"तौ हौं छेड़ो देह।"

२. 'मैं' के स्थान पर 'मैं', 'मोहि', 'मुहि', 'मुह' मिलता है।

३. 'मुझे' और 'मेरे' प्रयोग भी मिलेंगे।

इसी प्रकार अन्य पुरुषों के प्रयोग मिलते हैं।

कारक-चिन्ह—

'पृथ्वीराज रासो' में कारक चिन्हों के प्रयोग में रासोकार ने पूर्ण स्वच्छन्दता अपनाई है। चिन्हों की संख्या अत्यधिक है। उदाहरण के लिए अपादान में

'स्म', 'सों', 'सो', 'से', अधिकरण में 'परि', 'पर', 'मैं' 'मद्धि', 'महि', 'मोहँ' मिलता है।

क्रिया—'रासो' में प्रक्षेपों की भरमार के कारण क्रिया के प्रयोगों में विभिन्न रूप मिलते हैं। अतः कोई नियम निश्चित नहीं किया जा सकता।

अव्यय—समुच्चय बोधक अव्यय 'और' के स्थान पर 'अवर', 'अपर', 'अरु' प्रयोग मिलते हैं।

संख्यावाचक विशेषण—संख्यावाचक विशेषण भिन्न-भिन्न भाषाओं से आये हैं। जैसे 'एक' के रूप एकं (पालि), 'एक्क' (प्राकृत), 'एक्कु' (अपभ्रंश) और हिन्दी (एक) है।

रासो के व्याकरण पर संक्षेप में विचार करने के उपरान्त सहज ही परिणाम निकलता है कि सारे नियम हिन्दी के व्याकरण से ही मिलते हैं। अतः रासो की भाषा डिंगल (राजस्थानी) अथवा अपभ्रंश न होकर पिंगल (प्राचीनतम) हिन्दी है।

रासो की भाषा मिश्रित है

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, रासो में वैदिक, संस्कृत, पालि, पैशाची, शौरसेनी, मागधी, अर्ध-मागधी, अरबी, फारसी, पंजाबी, प्राकृत, अपभ्रंश और ब्रजभाषा के शब्दों का प्रयोग हुआ है। प्रत्येक भाषा के कुछ शब्दों के उदाहरण दिये जा रहे हैं—

वैदिक शब्दों का प्रयोग—कुठ (कृत), वुन्द (वृन्द), रिउ (ऋतु), रष्षस (राक्षस)।

संस्कृत शब्दों का प्रयोग—समीप, कमल, मृग, हीर, कीर, छत्रपति, हरि, काम, कला आदि—

"मतहुँ कला ससिभान, कला सोलह सो वन्निय।
वाल वेस ससि ता समीप, अम्रित रस पिन्निय॥
विगसि कमल स्त्रिग भ्रमर, बैन खंजन मृग लुट्टिय।
हीर, कीर, अरु, विम्व मोति, नष-शिष अट्टि घुट्टिय॥
छत्रपति गयंद हरि हंस गति, विह बनाय संचै सचिय।
पदमिनिय रूप पदमावतिय, मनहु काम कामिनि रचिय॥"

पालि, पैशाची, शौरसेनी—दिसि (दिश), वेस्वा (वेश्या), सद्द (शब्द), उद्देस (उद्देश्य)।

अर्ध-मागधी—नयर (नगर), सायर (सागर), लोय (लोग)।

प्राकृत तथा अपभ्रंश—

"सयनं सव्वान किम सज्जानं वज्जि नीहानं नीसानं।"

अरबी-फारसी के शब्द—

"ले चल्यो सिताबी करी फारि फौजं।
परे पीर सै पंच तह षेत चौजं॥"

अरबी-फारसी शब्दों के प्रयोग के सम्बन्ध में मिश्रबन्धु ने लिखा है—

"भारत में शाहबुद्दीन के साथ ही यवनों का प्रवेश नहीं हुआ, उसके प्रायः दो सौ वर्ष पहले से ही महमूद गजनवी की चढ़ाइयाँ होने लगी थीं और पंजाब का एक बड़ा भाग मुसलमानों के अधिकार में चला गया था। महमूद गजनवी से भी पहले सिंध तथा मुलतान के देशों पर मुसलमानों का अधिकार हो गया था। अतः पंजाबी भाषा में मुसलमानी शब्दों का मिलना स्वाभाविक ही था। फिर चन्दवरदाई का जन्म लाहौर में हुआ था। वहाँ उस समय मुसलमानों ही का अधिकार था।......इन सब कारणों से चन्द की भाषा में मुसलमानी शब्दों का होना स्वाभाविक ही था।"

पंजाबी शब्दों का प्रयोग—

'हूनंदे', 'परद्दी', 'कूकन्दा', 'लूसन्दा', 'उपंन्ना' जैसे पंजाबी शब्दों का प्रयोग रासो में हुआ है।

ब्रजभाषा के शब्द—निम्न उदाहरण में आधुनिक ब्रजभाषा के शब्दों का प्रयोग मिलता है।

"एक पहर में सांवत प्यारे। लोक हजार पाँच तँह मारे।
ये साँवत पृथ्वीराज पियारे। केते ईदल संकर जुहारे॥"

शैली

भाषा और छन्दों की विविधता के कारण पृथ्वीराज रासो की शैली भी विविधतामय हो गई है। छन्द-भेद के आधार पर शैली में अन्तर हो गया है।

मात्रिक छन्दों के प्रयोग की शैली अनुस्वार-रंजन से युक्त सामासिक और तत्समता प्रधान नहीं है, परन्तु वर्णिक छन्दों की शैली में सामासिकता, और अनुस्वार-रंजन अधिक आ गया है। वर्ण-विषय के अनुसार शैली-भेद कम मिलता है। युद्ध-वर्णन में ध्वनि प्रभाव उत्पन्न करने के लिये शैली-भेद मिलता है। शब्द-योजना रमणीय है। भरती के शब्द कहीं नहीं मिलते। मोटे रूप में 'पृथ्वीराज रासो' में शैली के निम्नलिखित भेद किए जा सकते हैं—

१. तत्सम संस्कृत बहुला शैली।
२. प्राकृत तथा अपभ्रंश बहुला शैली।
३. आधुनिकता लिये ब्रजभाषा शैली।

रासो में भाषा की अनेकरूपता और उसके कारण

भाषा में अनेकरूपता है। इस अनेकता का मुख्य कारण यह है कि 'रासो' अनेक कवियों के हाथ की कठपुतली बना रहा। चंद द्वारा लिखित मूल रासो की भाषा एकरूप ही रही होगी। रासो में प्रक्षिप्त अंश इतने प्रवेश पाते गये कि उनके कारण भाषा की एकरूपता नष्ट हो गई। रासो की भाषा भले ही भाषाओं का अजायबघर या खिचड़ी हो, किन्तु विषय और वस्तु-वर्णन की दृष्टि से वह अनुकूल है। चंद ने भाषा का निर्माण एक-शिल्पी की तरह किया है। चन्द ने स्वयं 'रासो' में छः भाषाओं का प्रयोग स्वीकार किया है। चंद के समय संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, पैशाची, मागधी और शौरसेनी प्रचलित थीं। संभवतः 'षट्भाषा' का तात्पर्य इन्हीं भाषाओं से है। विद्वानों ने 'रासो' में भाषा के कई स्तर सिद्ध किये हैं, किन्तु मूल भाषा का धारा प्रवाह एक ही है। अतः रासो को भाषाओं का अजायबघर कहना उचित नहीं है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन के पश्चात् पृथ्वीराज की भाषा के सम्बन्ध में कुछ निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। रासो की भाषा अपभ्रंश या डिंगल (राजस्थानी) नहीं है। रासो में अपभ्रंशोत्तर काल की पुरानी हिन्दी अथवा ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है। रासो की भाषा राजस्थानी से प्रभावित अवश्य है, परन्तु वह ब्रजभाषा-व्याकरण से अनुशासित है। उसमें अपभ्रंशोत्तर कालीन हिन्दी की

लगभग सभी विशेषताएँ मिलती हैं। परन्तु यह सत्य है कि 'पृथ्वीराज रासो' के प्रामाणिक संस्करण के अभाव में उसकी भाषा के सम्वन्ध में कोई अन्तिम निर्णय नहीं दिया जा सकता। अतः हम आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में इस प्रसङ्ग को समाप्त करते हैं—

"भाषा की दृष्टि से यदि ग्रन्थ पृथ्वीराज रासो को कसते हैं, तो और भी निराश होना पड़ता है। उसमें व्याकरण आदि की कोई व्यवस्था नहीं है। दोहों की और कुछ-कुछ कवित्तों की भाषा तो ठिकाने की है, पर त्रोटक आदि छन्दों में तो कहीं-कहीं अनुस्वारांत शब्दों की ऐसी भरमार है, जैसे संस्कृत शब्दों की नकल की हो, कहीं-कही तो भाषा आधुनिक ढाँचे में ढली दिखाई पड़ती है, क्रियाएँ नए रूपों में मिलती हैं, पर साथ ही कहीं-कहीं भाषा अपने असली प्राचीन रूप में पाई जाती है, जिसमें प्राकृत और अपभ्रंश शब्दों के रूप और विभक्तियों के चिन्ह पुराने ढंग के हैं। इस दशा में भाटों के इस वाग्जाल के बीच कहाँ पर कितना ग्रन्थ असली है, इसका निर्णय असम्भव होने के कारण यह ग्रन्थ न तो भाषा के इतिहास के और न साहित्य के जिज्ञासुओं के काम का है।"

१०

रासो में चन्द की बहुज्ञता

प्रश्न ३५—पृथ्वीराज रासो को दृष्टि में रखते हुए चन्दवरदाई की बहुज्ञता पर प्रकाश डालिए।

स्मृति-संकेत

१. सामयिक परिस्थितियों का चंद को पूर्ण ज्ञान था।
२. चंद ने रासो में विषयवस्तु, भाव और कला-निरूपण में अपनी बहुज्ञता का परिचय दिया है।
३. चंद अनेक भाषा के विद्वान थे, इसका प्रदर्शन 'पृथ्वीराज रासो' में हुआ है।
४. चंद का पिंगल-शास्त्र का विशद ज्ञान रासो में सामने आ जाता है।
५. चंद का साहित्य और काव्य-शास्त्र का ज्ञान बहुत बढ़ा चढ़ा था।
६. सिद्धियों, तंत्र-मंत्र और ज्योतिष के भी चंद ज्ञाता थे।
७. चंद शास्त्रार्थ में पंडित थे।
८. काव्य-शास्त्र के पण्डित होने के साथ-साथ चंद युद्ध-विशारद भी थे।

उत्तर—चन्द का काव्य-रचना-काल भारत के इतिहास में राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक परिस्थितियों की दृष्टि से संघर्षकाल था। राजनीति के क्षेत्र में सारा देश युद्धों का मैदान बना हुआ था। जनता के सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक आदर्श पाखंड से पूर्ण होकर गिर रहे थे। भारतीय और मुस्लिम संस्कृति का समन्वय नये समाज और नये सांस्कृतिक वातावरण को जन्म दे रहा था। ऐसे समय में चन्द एक स्वतन्त्र चेता युग-कवि

के रूप में सामने आये और उन्होंने अपनी जागरूकता का परिचय 'पृथ्वीराज रासो' की रचना में दिया। उनका 'पृथ्वीराज रासो' उनके व्यापक और विशाल ज्ञान एवं बुद्धि-कौशल का साक्षीं है। उनका काव्य श्रेयमय प्रेय की प्रेरणामय धारा प्रवाहित करता है।

चन्द ने पृथ्वीराज रासो में तत्कालीन परिस्थितियों और मान्यताओं का इतनी अधिक व्यापकता से चित्रण किया है कि तत्कालीन युग का सारा समाज ही रासो में सजीव हो उठा है। कर्नल टॉड ने 'पृथ्वीराज रासो' को इसी कारण 'युगीन विश्व-इतिहास' के नाम से सम्मानित किया।

चन्द का काव्य-शास्त्र-ज्ञान और लोक-ज्ञान दोनों ही विशाल और व्यापक थे। रासो में चन्द ने विषय-वस्तु, भाव और कला के विविध प्रयोग कर अपनी वहुज्ञता का परिचय दिया है। व्याकरण, छन्द-शास्त्र, काव्य-शास्त्र, साहित्य, वेदान्त, तंत्र-मंत्र, इतिहास, पुराण, रस-अलङ्कार, षट्-भाषा, सिद्धियों आदि के क्षेत्र में चन्द की वहुज्ञता वहुत वढ़ी-चढ़ी थी। चन्द ने 'पृथ्वीराज रासो' में अपने को चौदह, भाषाओं का ज्ञाता और त्रैलोक में घटने वाली घटनाओं का ज्ञाता घोषित किया हैं। आगे उनकी वहुज्ञता पर हम विस्तार से प्रकाश डालेंगे।

चंद अनेक भाषाओं के पंडित

'पृथ्वीराज रासो' में स्वगत से प्रकट होता है कि चन्द षट् भाषाओं के पंडित थे। पंग दरवार का दसौंधी जयचन्द के द्वार पर उपस्थित चन्द की विद्वता का परिचय देता हुआ कहता है :—

"भाषा षट नव रस पढ़त वर पुच्छै कविराज।
संप्रति पंग नरिंद कै, कर दरवार विराज॥
भाषा परिषा भाष छह, दस रस दुब्भर भाग।
वित्त, कवित्त जु छन्द सौं पग सम पिंगल नाग॥"

—रासो-समय ६१

चन्द गजनी-नरेश शाहवुद्दीन के द्वारपाल को अपने षट्-भाषा ज्ञान का परिचय देते हुए कहते हैं :—

"षट् भाषा रस्स नव नट्ट नाद।
जानो विवेक विच्चार वाद।"

डा० विपिनविहारी त्रिवेदी ने चन्द के भाषा-ज्ञान का उल्लेख करते हुए लिखा है :—

"अस्तु देखते हैं कि संस्कृत, प्राकृत, महाराष्ट्री, अपभ्रंश, पैशाची, मागधी और शौरसनी, इन भाषाओं का उस समय साहित्य तथा बोलचाल में काफी प्रचार था और वहुत सम्भव है कि 'पृथ्वीराज रासो' में वर्णित कवि चंद की षट्-भाषा की जानकारी से इन्हीं भाषाओं की ओर संकेत हो।"

छन्द-शास्त्र का विस्तृत ज्ञान

चन्दवरदाई के समान छन्द-शास्त्र का ज्ञान हिन्दी के अन्य कवि में नहीं मिलता। 'पृथ्वीराज रासो' में अनेकानेक छन्दों का प्रयोग हुआ है। प्रचलित मात्रिक, वर्णिक छन्दों के अतिरिक्त चन्द ने अनेक नये छन्दों का भी प्रयोग किया है। 'पृथ्वीराज रासो' में ऐसे बहुत से छन्द मिल जाते हैं, जिनका न तो पहले प्रचलन ही था और न वे पिंगल-शास्त्र में ही मिलते हैं। उनका निर्माण चन्द ने स्वयं ही किया है। 'रासो' में बहत्तर प्रकार के छन्दों का प्रयोग हुआ है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने चन्द को छप्पयों का राजा कहा है। 'पृथ्वीराज रासो' के छन्द कथा-प्रवाह और कथा-मोड़ में सहायक हैं। डा० विपिनविहारी त्रिवेदी का निम्न कथन दृष्टव्य है :—

'चन्द ने अपने छन्दों का चुनाव बड़ी दूरदर्शिता से किया है। कथा के मोड़ों को भली प्रकार पहचानकर वर्ण और मात्रा की अद्‌भुत योजना करने वाला रासो का रचयिता वास्तव में छन्दों का सम्राट है। छन्दों की भाँति अलंकारों का भी चन्द को विस्तृत ज्ञान था। चन्द ने शब्दालंकार, अर्थालंकार और उभयालंकारों के क्षेत्र में नये-नये प्रयोग किये हैं।"

साहित्य एवं काव्य-शास्त्र का व्यापक ज्ञान

चन्द का काव्य-शास्त्र सम्बन्धी ज्ञान वहुत वढ़ा-चढ़ा था। वस्तु-वर्णन उनकी लौकिक जानकारी के साथ-साथ काव्य-शास्त्र की विशाल जानकारी का भी परिचय देता है। व्यूह-वर्णन, पनघट-वर्णन, नखशिख-वर्णन, षटऋतु, वारहमासा, वय:संधि, रूप-वर्णन, स्त्री-भेद-वर्णन, युद्ध-वर्णन में जहाँ उनकी लौकिक-सूक्ष्म निरीक्षण प्रतिभा का परिचय मिलता है, वहाँ काव्य-शास्त्र के सम्बन्ध में उनका प्रगाढ़ पांडित्य भी सामने आ जाता है। चन्द मानव-हृदय के पूरे पारखी थे। हृदय के सूक्ष्म भाव तक उनकी पहुँच थी। 'रासो' में नवरस-निरूपण इस तथ्य

का साक्षी है। काव्य-शास्त्र के प्रत्येक अंग और ऋतु का सम्यक् ज्ञान रासो में स्थान-स्थान पर प्रकट हुआ है।

युद्ध-कौशल

वस्तु-वर्णन के अन्तर्गत चन्द के युद्ध-वर्णन इतने सजीव और सूक्ष्म निरीक्षण पूर्ण वन पड़े हैं कि किसी भी भाषा के काव्य-साहित्य में न मिलेंगे। चन्द सच्चे अर्थों में हिन्दी के चॉसर हैं। उनका युद्ध-वर्णन कल्पना की करामात मात्र नहीं है। उन्होंने स्वयं युद्धों में भाग लिया और तलवार भी उठाई। उनकी काव्य-साधना और असि-साधना साथ-साथ चलती रही। वे पृथ्वीराज के आदेश के बिना ही समरांगण में उतरकर युद्ध-कौशल दिखाने लगते थे। निम्न उदाहरण में उनका युद्ध-कौशल द्रष्टव्य है—

"कृपान हथ्थ चन्दयं, सुरग्गदेव वद्दयं।
झरंत मीर अग्गयं, निकट्ट तट्ट गंगयं॥
घटं सुघाव घुम्मयं, परेसु मीर झुम्मयं।
लंगे तुरंग अगयं, संपूर लोह जंगयं॥
फिरयो सुचन्द तव्वयं, करन्न राज कव्वयं।
लगे न घाव गातयं, सहाय द्रुग्ग मातयं॥
कुंजर पंजर छिद्र करि, फिर वरदायी चन्द।
तिन अन्दर जिद्धति भ्रमत, जयों कंदरा मुनिंद॥"

धर्म-राजनीति, इतिहास आदि का ज्ञान

चन्द का लौकिक ज्ञान वड़ा ही व्यापक था। वे धर्म, राजनीति, इतिहास 'काव्य-शास्त्र' व्याकरण आदि के पण्डित थे। उन्होंने अपने अन्य ज्ञान के साथ ही पुराण और कुरान के ज्ञाता होने का भी उल्लेख किया है—

"उक्ति धर्म विशालस्य राजनीति नवं रसं।
षट-भाषा पुराणं च, कुराणं कथितं मया॥"

× × ×

"रासो वर वुद्धि सिद्धि, सुद्ध सो सव्व प्रमानिय।
राजनीति पाइयै, ज्ञान पाइयै सु जानिय॥
उकति जुगति पाइयै, अरथ घटि-वढ़ि उनमानिय।
या समान गुन आप, देव नर नाग वखानिय॥"

यहाँ चन्द का कथन गर्वोक्ति नहीं है। चन्द का 'पृथ्वीराज रासो' यथार्थ में साहित्यिक और लौकिक ज्ञान का अगाध भण्डार है।

शास्त्रार्थ-पण्डित

चन्द कवि और वीर योद्धा होने के साथ-साथ शास्त्रार्थ के भी पण्डित थे। एक बार शाहबुद्दीन गोरी के हिन्दू कवि भट्ट दुर्गा केदार और चन्द का शास्त्रार्थ हुआ। दोनों साहित्यिक दाँव-पेच एवं तंत्र-मन्त्रों में बढ़े-चढ़े हुए थे। इस शास्त्रार्थ में चन्द विजयी हुए। दुर्गा केदार ने उनकी प्रशंसा की और पुरस्कार दिया।

सिद्धि, तंत्र-मंत्र और ज्योतिष का ज्ञान

चन्दवरदाई सिद्ध पुरुष थे। कहा जाता है कि उनको देवी का दर्शन हुआ था और देवी ने उनको वरदान दिया था। चन्द को देवी की सिद्धि थी, इसका उल्लेख रासो में कई स्थलों पर हुआ था। 'पृथ्वीराज रासो' में कुछ स्थल ऐसे भी आये हैं, जिनमें देवी ने चन्द की सहायता की है। इसके उदाहरण 'कनक-कथा समय', 'दुर्गा भट्ट केदार-समय' एवं 'कनवज्ज समय' में मिलते हैं। चन्द का तन्त्र-मन्त्र का ज्ञान वहुत बढ़ा हुआ था। उन्होंने वावन वीरों को वश में करने की दीक्षा एक यती से प्राप्त की थी। चन्द को सर्प बाँधने, दानव एवं दैत्यों का वध करने, भविष्य वाणी करने, स्वप्न-फल वतलाने आदि की सिद्धि प्राप्त थी।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि चन्द काव्य-शास्त्र के पण्डित होने के साथ-साथ तलवार के भी धनी थे और साथ ही उनको तन्त्र-मन्त्र-जनित सिद्धियाँ भी प्राप्त थीं। उनका लौकिक ज्ञान बहुत बढ़ा-चढ़ा था।

११

सामाजिक आदर्श

प्रश्न ३६—'पृथ्वीराज रासो' के तत्कालीन सामाजिक आदर्शों पर प्रकाश डालिए।

अथवा

प्रश्न ३७—"साहित्य महान् चरित्र की प्रतिष्ठा द्वारा लोक-मानस को आदर्श की ओर आकर्षित करता है।"—इस कसौटी पर कसकर 'पृथ्वीराज रासो' के काव्यादर्श की मीमांसा कीजिए।

उत्तर—साहित्य-समाज का प्रतिविम्ब और जन-जीवन की प्रेरणा होता है। संसार में ऐसे अनेकों उदाहरण मिलेंगे, जिनमें साहित्य के द्वारा समाज में महान् परिवर्तन उपस्थित हुआ। परन्तु इस महती कार्य को करने में रस-सिद्ध कवीश्वर ही समर्थ हो सकते हैं। चन्दवरदाई जन-मानस के कवि और रस-सिद्ध कवीश्वर थे। चन्द ने 'पृथ्वीराज रासो' में जन-नायक पृथ्वीराज चौहान की अवतारणा की। पृथ्वीराज देश एवं सम्मान की रक्षा के लिए दृढ़ शौर्य एवं बलिदान का आदर्श उपस्थित करते हैं। चन्द के 'रासो' के महावीर पृथ्वीराज चौहान युग-युग तक शौर्य और बलिदान का आदर्श जन-मानस के समक्ष प्रस्तुत करते रहेंगे।

चन्द हिन्दी के प्रथम महाकवि हैं और उनका 'पृथ्वीराज रासो' हिन्दी साहित्य का प्रथम महाकाव्य है। वह भारतीय संस्कृति और सामाजिकता का अक्षय भण्डार है। चन्द का समय राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक आदि प्रत्येक दृष्टि से संघर्ष का काल था। युग की इन भयानक परिस्थितियों

के बीच में चन्द ने अपनी जागरूकता का परिचय दिया है। उनका रासो श्रेयमय प्रेम का महान् आदर्श उपस्थित करता है। पृथ्वीराज चौहान संयोगिता के साथ विलास में अवश्य डूब जाते हैं, परन्तु शाहवुद्दीन गोरी के आक्रमण पर तत्काल ही कर्त्तव्य-पालन के लिए सन्नद्ध हो जाते हैं। वे उसे ग्यारह बार पराजित कर मुक्त कर चुके हैं। इसके द्वारा उन्होंने भारतीय-संस्कृति के क्षमा आदर्श का परिचय दिया। परन्तु अन्तिम युद्ध में वे पराजित हुए और अंधे बनाकर बन्दीगृह में डाल दिये गये। अपना वलिदान करते हुए भी उन्होंने शत्रु का शीश धड़ से पृथक कर दिया और भारतीय शौर्यपूर्ण आदर्श का प्रदर्शन किया।

तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियाँ और आदर्श

चन्द का अवतरण संघर्षपूर्ण राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों में हुआ था। उनकी कृति 'पृथ्वीराज रासो' इन परिस्थितियों का दर्पण है। कर्नल टॉड ने पृथ्वीराज रासो को 'युगीन विश्व इतिहास' कहकर सम्मानित किया।

चन्द के समय में भारत की राजनीतिक परिस्थितियाँ वड़ी संघर्षपूर्ण थीं। सारे देश और समाज में तलवारों की झंकार गूँज रही थी। मुसलमानों से जहाँ राजनीतिक उद्देश्य से युद्ध होते थे, वहाँ परस्पर की शत्रुता, ईर्ष्या और आत्म-गौरव के थोथे प्रदर्शन में राजा परस्पर लड़कर शक्ति-क्षीण करते जा रहे थे। राजकुमारियाँ युद्ध का कारण बनी हुई थीं। वीरता का आदर्श इतना ही रह गया था कि **"जिहि की बिटिया सुन्दर देखी तिहि पै धाइ धरे हथियार"** राजाओं के दरबार में कवि और चारण रहा करते थे। वे अपने आश्रयदाताओं के शौर्य का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया करते थे। चन्द भी पृथ्वीराज चौहान के आश्रित कवि थे। उन्होंने पृथ्वाराज के शौर्य और पराक्रम का वर्णन किया है, परन्तु चन्द को खुशामदी नहीं कहा जा सकता। वे स्वयं तलवार के धनी थे। उन्होंने पृथ्वीराज द्वारा 'कयमास-वध' और उनके संयोगिता के साथ विलास-मग्न होने की निर्भीकता से भर्त्सना की और साथ ही शाहवुद्दीन से युद्ध करने के लिये प्रेरित किया। पृथ्वीराज उन्हीं की प्रेरणा से शाहवुद्दीन का शब्द-वेधी वाण से वध करते हैं।

धार्मिक परिस्थितियाँ

चन्द के समय तक बौद्ध-धर्म का ह्रास हो चुका था। हिन्दू धर्म का प्रचार

एवं प्रसार बढ़ता जा रहा था। जैन धर्म भी धीरे-धीरे विकसित हो रहा था। गुजरात का राजा भीमदेव चालुक्य जैनी था। धर्म के क्षेत्र में इस समय तन्त्र-मन्त्र-सिद्धि आदि प्रवेश पा गई थीं। चन्द स्वयं मारण-मोहन, वशीकरण, तन्त्र-मन्त्र आदि के ज्ञाता थे। चन्द ने जैन साधुओं के मिथ्या प्रचार का तीव्र विरोध किया। 'रासो' के अनेक स्थलों पर इस धार्मिक स्थिति के चित्र उभरे हैं। चन्द के युग में मुसलमानी प्रचार बढ़ने लगा था। हिन्दू-समाज में अवतारवाद, मूर्ति-पूजा का प्रवर्तन हो गया था। शैवों के तीन सम्प्रदाय—(१) पाशुपत, (२) कापालिक और (३) कालागुरु—इधर-उधर फैल गये थे। चन्द ने इस समस्त धार्मिक स्थिति का 'पृथ्वीराज रासो' में चित्रण किया है।

सामाजिक परिस्थितियाँ

चन्द के युग का समाज तलवार के वल से शासित था। अपमान की अपेक्षा मृत्यु को वरण करने वाले लोगों का प्रादुर्भाव हो चला था। सारा समाज और विशेषकर राजवंश-विलास में डूबे हुए थे। एक-एक राजवंशी अनेक स्त्रियों से विवाह करता था। युद्धों का मुख्य विषय स्त्रियाँ रहती थीं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस स्थिति को स्पष्ट करते हुए लिखा है—

"जैसे यूरोप में वीरगाथाओं का प्रसङ्ग 'युद्ध' और 'प्रेम' रहा, वैसे ही यहाँ भी किसी राजा की कन्या के रूप का सम्वाद पाकर दलबल के साथ चढ़ाई करना और प्रतिपक्षियों को पराजित कर उस कन्या को हरकर लाना वीरों के गौरव और अभिमान का काम माना जाता था। इस प्रकार इन काव्यों में शृङ्गार का भी थोड़ा-सा मिश्रण रहता था। शृङ्गार-रस केवल सहायक रूप में रहता था। जहाँ राजनीतिक कारणों से भी युद्ध होता था, वहाँ भी उन कारणों का उल्लेख न कर किसी रूपवती स्त्री का कारण कल्पित करके रचना की जाती थी। जैसे शाहवुद्दीन के यहाँ से एक रूपवती स्त्री का पृथ्वीराज के यहाँ आना लड़ाई की जड़ लिखी गई है। हम्मीर पर अलाउद्दीन की चढ़ाई का भी ऐसा ही कारण कल्पित किया गया है। इस प्रकार इन काव्यों में प्रथानुकूल कल्पित घटनाओं की वहुत अधिक योजना रहती थी।"

'पृथ्वीराज रासो' में सारे युद्ध राजकुमारियों के हरण को लेकर ही हुए। परन्तु रासोकार ने यहाँ नायक के आदर्श की रक्षा की है। उसने पृथ्वीराज की

रूप-लिप्सा को कोई स्थान नहीं दिया है। पद्मावती, शशिव्रता, इच्छिनी और संयोगिता स्वयं पृथ्वीराज को आत्म-समर्पण करती हैं। उनका विवाह उनकी इच्छा के विरुद्ध किया जा रहा था। वे अपनी रक्षा के लिए पृथ्वीराज से गुहार करती हैं। अतः उनकी रक्षा-हेतु उनका हरण कर और फिर उनसे विवाह करना पृथ्वीराज के लिए कर्त्तव्य बन गया है।

इस युग में नारी का सम्मान सुरक्षित नहीं था। उनकी इच्छा के विरुद्ध विवाह तय हो जाता था। अतः वे अपने प्रेमियों द्वारा हरण की जाती थीं। धर्म में अन्ध-विश्वास घर कर गया था और मन्दिरों में देवदासियाँ रहने लगी थीं। मन्दिर व्यभिचार और विलास के केन्द्र बन गये थे। राजा और पुरोहित तथा महन्त वर्ग मिलकर जनता का शोषण कर रहे थे। संक्षेप में कहा जा सकता है कि सामाजिक दृष्टि से यह युग पारस्परिक संघर्ष का युग था। सामाजिक उत्सवों का अन्त भी युद्ध में होता था। विवाह-मण्डप में ही तलवारें खिंच जाती थीं और रण-प्रांगण का युद्ध उपस्थित हो जाता था।

उपर्युक्त समस्त परिस्थितियों का चन्दवरदाई ने 'पृथ्वीराज रासो' में यथार्थ चित्रण किया है। इन विषम परिस्थितियों में चन्द ने पृथ्वीराज के महान् चरित्र की प्रतिष्ठा लोकादर्श के रूप में की है। सारे कथानक में पृथ्वीराज आदर्श सम्राट के रूप में चित्रित किये गये हैं।

'रासो' में पृथ्वीराज का चरित्र प्रत्येक प्रकार से महान् आदर्श के रूप में प्रतिष्ठित हुआ है। दिल्लीश्वर होते हुए भी वे गुरुजनों के प्रति संकोची हैं। जयचन्द का दूत उनकी सभा में राजसूय यज्ञ और संयोगिता-स्वयंवर का निमन्त्रण लाता है। पृथ्वीराज गुरुजनों को देखकर सकुच जाते हैं। वे उत्तर नहीं देते। उनका एक गुरुजन गोविन्दराज उत्तर देता है—

"बोलेउ न वयण प्रथिराज तांहि।
संकरिउ सिंघ गुरुजनन चांहि॥"

पृथ्वीराज वीरता और आत्म-सम्मान की मूर्ति हैं। जयचन्द ने द्वारपाल के रूप में उनकी सुवर्ण-प्रतिमा प्रतिष्ठित कर उन्हें अपमानित किया। इस अपमान का प्रतिशोध लिये बिना उनको अपना जीवन ही व्यर्थ लगने लगता है। वे उपहास पूर्ण जीवन का अन्त करने के लिए प्राणोत्सर्ग का संकल्प करते हैं—

"दोइ कंठ लग्गिय गहन, नयनह जल गल न्हांनु।
अब जीवन वंछिहि अधिक, कीह कवि कोन सयानु॥"

पृथ्वीराज का उक्त कथन सच्ची मनुष्यता का आदर्श उपस्थित करता है।

पृथ्वीराज वीरता का अनुपम आदर्श हैं। वे संयोगिता का अपहरण कर चुपचाप नहीं चल देते, अपितु दायज-रूप में जयचन्द से भीषण संग्राम करते हैं। पृथ्वीराज का महान् आदर्श कर्त्तव्य के प्रति सजगता है। संयोगिता की मोह-निद्रा में उनमें कुछ शिथिलता अवश्य आ जाती है, परन्तु शाहबुद्दीन के चढ़ आने पर चन्द की एक चेतावनी से ही वे जागरूक हो जाते हैं। युद्ध में प्रयाण के समय संयोगिता के रोकने पर उससे कहते हैं कि जिस वीर-पत्नी ने उसके बाहुओं की पूजा की थी, वह मुग्धा काम की बातें किस प्रकार कर रही है—

"सुनि प्रिय प्रिय दिष्यौ वदन, किय जिस निर्भय पाथ।
बाहू पूज्जउ वरह तुह, कहि स मुद्ध रतिनाथ॥"

पृथ्वीराज युद्ध को प्रयाण करते हैं और शाहबुद्दीन की कई गुनी विशाल सेना से वीरतापूर्वक युद्ध करते हैं। उनका बलिदान इतना गौरवमय है कि वह उनको विश्व के इतिहास में अमर कर देता है। वे शत्रु के भरे दरबार में पहले शत्रु का शीश अलग कर देते हैं, और फिर अपना बलिदान कर देते हैं :—

"मरन चन्द वरदिया राज धुनि साह हन्यउ सुनि।
पुहपंजलि असमान सीस छोड़ी त देवतनि।
मेछ अवध्धित धरणि धरणि नवत्रीय सुहस्सिग।
तिनहि-तिनहि संजोति जोति जोतिहि संपत्तिग॥"

देवताओं ने उसके शीश पर पुष्पों की वर्षा की। जो पृथ्वी म्लेच्छों से आबद्ध हो गई थी, वह अब नव वधू के समान हँस पड़ी। पृथ्वीराज का भौतिक शरीर परमात्मा की ज्योति से मिल गया।

यह है पृथ्वीराज का अमर चरित्र, जिसकी चन्द ने रासो में प्रतिष्ठा कर मानवीय उदात्त भावनाओं और वीरता का अनूठा आदर्श प्रतिष्ठित किया है, और यही रासोकार का काव्यादर्श भी है। इस प्रकार के महान् चरित्र की प्रतिष्ठा हिन्दी ही क्या विश्व-साहित्य में भी न मिलेगी।

प्रश्न ३८—"चन्दवरदाई स्वाधीन जाति की उठती हुई उमंगों एवं आकांक्षाओं को चित्रित करने वाले कवि हैं—इस कथन पर औचित्यपूर्ण विवेचनात्मक प्रकाश डालिए।

उत्तर—चन्द का अवतरण संघर्ष-पूर्ण परिस्थितियों में हुआ था। एक ओर भारत के क्षत्रिय राजा परस्पर ईर्ष्या और शत्रुता के कारण शक्ति-प्रदर्शन

में शक्ति को क्षीण कर रहे थे और दूसरी ओर भारत को लूटने और विजय करने के लिए यवन शक्तियाँ बढ़ रही थीं। क्षत्रिय राजा विलास की अफीमची मादकता में डूबे हुए परस्पर के युद्धों में शक्ति को क्षय करते हुए पतन की ओर जा रहे थे। उनका एक स्वाधीन जाति का राजनैतिक एवं सामाजिक आदर्श नहीं रहा था। सामाजिक आदर्श तो इतना गिर गया था कि "जिहि की बिटिया सुन्दर देखी तेहि पै धाइ धरे हथियार।" ऐसी विषम परिस्थिति में चन्द ने अन्तिम हिन्दू-सम्राट पृथ्वीराज चौहान के महान् चरित्र की प्रतिस्थापना की और उस गौरवमय चरित्र के माध्यम से स्वाधीन जाति की उठती उमंगों एवं आकांक्षाओं को चित्रित किया। दरबारी कवि होते हुए भी चन्द स्वतन्त्र, स्वाभिमानी एवं निर्भीक प्रकृति के थे। वे वीरगाथा काल के अन्य भाटों की तरह अपने आश्रयदाताओं की अतिशयोक्ति पूर्ण प्रशंसा में जमीन आसमान के कुलावे मिलाने वाले नहीं थे। वे पृथ्वीराज के समाज-विरोधी एवं राष्ट्र-विरोधी कार्य की आलोचना करने में नहीं चूके। पृथ्वीराज द्वारा कयमास-वध की घटना की उन्होंने भरे दरवार में आलोचना की और जब पृथ्वीराज पराजित होकर गजनी ले जाये गये और अंधे कर दिये गये तब उन्होंने इसे पृथ्वीराज के भोग-विलास और शिथिलता का परिणाम घोषित किया। सच तो यह है कि चन्द के विना पृथ्वीराज अधूरे हैं। पृथ्वीराज की प्रेरणा का स्रोत चन्द ही है। अब हम उपयुक्त उदाहरण देकर विश्लेषण करेंगे कि चन्द ने किस प्रकार निर्भीकता से स्वाधीन जाति की उमंगों और आकांक्षाओं को चित्रित किया है।

चन्द को भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों तक ने स्वाधीन जाति की उठती हुई उमंगों एवं आकांक्षाओं को चित्रित करने वाले महान् कवि के रूप में स्वीकार किया।

"चन्द हिन्दी-भाषा का आदि कवि है।"

—मि० जॉन वीम्स

चन्द "हिन्दी-कविता का जनक" है।

—ग्राउज

"महाकवि चन्दवरदाई वास्तव में हिन्दी के प्रथम कवि हैं।...और स्वयं इन्होंने हिन्दी-काव्य, रचना की नींव डाली।"

—मिश्रबन्धु

"प्रारम्भिक काल का प्रधान कवि चन्द है जो हमारे हिन्दी संसार का चॉसर है।"

—अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

'पृथ्वीराज रासो' में चन्द का उद्देश्य हमारी जातीय-भावना का उत्थान रहा है। स्वाधीन जाति की उठती हुई उमंगें आकांक्षाओं के लिए रासो का चरित्र-नायक युद्धों में कूद पड़ता है। शाहबुद्दीन से उसके सारे युद्ध देश-रक्षा के लिए ही होते हैं। उसके केलि विलास का परिणाम चन्द ने उसकी पराजय के रूप में दिखाया है। अन्त में चन्द की उक्तियों से वह अधर्मी शत्रु का संहार कर 'धरती को वर वधू' के समान उत्फुल्ल करने में भी सफल होता है। इस प्रकार चन्द का उद्देश्य सर्वत्र स्वाधीन जाति की उमंगों और आकांक्षाओं को चित्रित करना रहा है।

चन्द स्वयं वीर थे। वे तलवार के धनी थे। कलम और तलवार के साथ-साथ साधना उनका आदर्श था। वे स्वाधीनता और जातीय सम्मान की रक्षा में स्वयं भी युद्ध में कूद पड़ते हैं। उनका युद्ध-कौशल द्रष्टव्य है :—

"कृपान हाथ चन्दयं, सुरग्ग देव वद्दयं।
झरतं मीर अग्गयं निकट्ट तट्ट गंगयं॥
घटं सुघाव घुम्मयं, परे सु सुमीर झुम्मयं।
लगे तुरंग अंगयं, संपूर लोह जंगयं॥
फिरयौ सुचन्द तव्वयं, करन्न राज कव्वयं।
लगे न घाव गातयं, सहाय द्रुग्ग मातयं॥
कुंजर पंजर छिद्र करि, फिरि वरदाई चन्द।
तिन अन्दर जिद्धनि भ्रमत, ज्यों कंदरा मुनीन्द॥"

चन्द अपने निर्भीक व्यक्तित्व के कारण ही जन-मानस का उत्थान करने वाली अभिव्यक्ति कर सके। कयमास-वध के विषय में वे पृथ्वीराज से प्रश्न करते हैं और उत्तर भी देते हैं, उनकी दृष्टि में कयमास-वध प्रलय जैसा भयानक नृत्य है—

"हठि लगगउ चहुआन न्रिप, अंगुलि मुषह फणिंदु।
तिहुँ पुर तुअ मति संचरइ सु, कहे बनइ कवि चंदु॥"

× × ×

"सेस सिरुप्परि सूर तर जइ पुच्छइ नृप एस।
दोहुँ बोलि मंडन मरनु, कहइ तउ कव्बु कहेस।"

× × ×

"एकु वान पहुमी नरेस कयमासह मुक्कउ।
उर उप्परि षरहरिउ वीर कष्पहतर चुक्कउ॥"
बीउ वान संधानि, हनउ सोमेसुर नंदन।
गाडउ करि निग्गहउ षनिव षोदउ सम्भरि धनि॥
थर छंडि न जाइ अभागरउ, गारइ गहउ जु गुन परउ।
इम जंपइ चन्द विरद्दिया सु कहा निमिहहि इह प्रलउ॥"

चन्द पृथ्वीराज को मार्ग पर लाने में सक्षम थे। 'कनवज के युद्ध' में वे उनके घोड़े की लगाम पकड़कर उन्हें दिल्ली के मार्ग पर खींच लाते हैं।

पृथ्वीराज को विलास में निमग्न देखकर जातीय गौरव और देश की स्वतन्त्रता के लिए चन्द चिन्तित हो उठते हैं। शाहबुद्दीन दिल्ली पर चढ़ आया है। वे पृथ्वीराज को सचेत करते हुए कहते हैं—

"गोरी रत्तउ तुव धरा तू गोरी अनुरत्त।"

वे पृथ्वीराज को उत्साहित करते हुए कहते हैं कि वाण तो अपने अधीन है। उसके द्वारा अपनी रक्षा तो हो सकती है। कहीं दिल्ली की धरा डूब न जाय और जातीय गौरव नष्ट न हो जाय—

"अपज्ज वान चहुआन सुनि, प्रान रषि प्रारम्भ करि।
सामन्त नहीं सा मंत करि, जिनि बोलइ ढिल्लिय जु धरि।"

गजनी पहुँचकर वे बड़ी युक्ति द्वारा पृथ्वीराज को शाहबुद्दीन का वध करने को प्रेरित करते हैं। पृथ्वीराज को निराश और दुविधा में पड़ा देखकर बड़ी निर्भीकता से स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि जो विलास-मोह में पड़े कयमास के साथ पृथ्वीराज ने किया था, वही विलास में डूबने के कारण पृथ्वीराज के साथ होने जा रहा है। अर्थात् पृथ्वीराज को विलासता का परिणाम भोगना पड़ रहा है—

"प्रथमिराज कमान बांन द्रिढ़ मुट्ठि गहहि कर।
जिन विसमउ मन करहि भुअपत्ति अप्पु वर।
जि कछु दियउ कयमास किअउ अप्पनउ सु पायउ।
सोई संभरी नरेसु तुहि ज अम्मरपुर आयउ।

विधना विधान मेटइ कवन दीनमान दिन पाइयइ।
सर एक फोरि संभरि घनी सत्तहि सवुद गमाइयइ।"

चन्द की यह चेतावनी कितनी आदर्शपूर्ण है। वह स्पष्ट करता है कि विलास में पड़ने से कयमास का वध हुआ और अब विलास में डूबने के कारण वही फल पृथ्वीराज को मिल रहा है। अर्थात् विलास और मोह-निद्रा स्वाधीन जाति की उठती हुई उमगों को कुचलकर पराधीनता लाती है। चन्द की प्रेरणा से पृथ्वीराज शब्द-वेधी वाण से शाहबुद्दीन का वध करते हैं। इसके पश्चात् चन्द और पृथ्वीराज दोनों ही परस्पर कटार मारकर अपना वलिदान कर देते हैं। इस प्रकार हमारे जातीय सम्मान को कुचलने वाले और हमारी स्वाधीनता का हरण करने वाले का अन्त हो जाता है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि चन्द हमारे प्रथम राष्ट्रीय कवि हैं। उनके 'पृथ्वीराज रासो' में स्वाधीन जाति की उठती हुई उमंगों एवं आकांक्षाओं का चित्रण हुआ है।

कयमास-वध

१

कथा-विकास और प्रबन्धात्मकता

प्रश्न १—कथावस्तु की ऐतिहासिकता, प्रबन्धात्मकता और कथा-विकास की दृष्टि से 'कयमास-वध' की विशेषताएँ वतलाइये।

स्मृति-संकेत

१. 'कयमास-वध' 'पृथ्वीराज रासो' के कथानक का बीच का सर्ग है।
२. इस ४३ छन्दों के छोटे से सर्ग की कथा बहुत संक्षिप्त है—
"पृथ्वीराज संयोगिता के विरह-ताप में अस्थिर होकर दिल्ली का शासन कयमास को सौंपकर आखेट में समय व्यतीत करने लगते हैं। कयमास करनाटकी दासी के साथ विलास-मग्न हो जाता है। पृथ्वीराज उसका वध करते हैं। कयमास की स्त्री पति का शव लेकर सती हो जाती है। पृथ्वीराज कन्नौज जाकर रण-नृत्य करने का निश्चय करते हैं।"
३. 'पृथ्वीराज रासो' में प्रबन्धात्मकता की दृष्टि से इस सर्ग की यह विशेषता है कि यह पूर्वापर घटनाओं को जोड़ने की कड़ी बन गया है।
४. इस सर्ग से पूर्व जयचन्द द्वारा राजसूय और संयोगिता-स्वयंवर की योजना तथा संयोगिता के प्रेमानुष्ठान की कथाएँ आ चुकी हैं।

५. इस सर्ग के कथानक का प्रारम्भ पृथ्वीराज के संयोगिता के प्रेम-वियोग में अस्थिर मन से होता है। अतः पूर्व कथा से इसका सम्बन्ध स्थापित हो जाता है।
६. उपसंहार में पृथ्वीराज कन्नौज जाने और जयचन्द से अपमान का बदला लेने को उद्यत दिखाई पड़ते हैं।
७. इसके आगे के सर्गों में संयोगिता-हरण और जयचन्द से युद्ध की घटनाएँ घटित होती हैं।
८. स्वतन्त्र रूप में भी इस 'समय' का वस्तु-विन्यास प्रबन्धात्मक और क्रमिक विकसित है।
९. कथा का प्रारम्भ विकास और उपसंहार आरोह-अवरोह में होता है।

उत्तर—कथा-वस्तु

'कयमास-वध' समय की कथा की मुख्य घटना कयमास-वध है। सारा कथानक इसी घटना को केन्द्र बनाकर घूमा है। संयोगिता के अपने प्रति प्रेमानुष्ठान तथा जयचन्द द्वारा राजसूय में अपमानप्रद कार्य सौंपे जाने की सूचना पृथ्वीराज को मिल चुकी है। अतः अपमान के क्षोभ और संयोगिता के प्रेम-वियोग के कारण उसका चित्त स्थिर नहीं रहता। वे प्रधानामात्य कयमास को राजधानी का प्रबन्ध सौंपकर वन में आखेट करते हुए मन बहलाने लगते हैं। इधर अधिकार पाकर कयमास रमणियों के साथ भोग-विलास में लग जाता है। उसे अति सुन्दर करनाटकी दासी अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। एक ताम्बूल वाहिनी कयमास को राज-प्रासाद में करनाटकी दासी के साथ रमण करते देख लेती है। वह इसकी सूचना परमारी पटरानी को देती है। पटरानी तत्काल ही एक दासी से पत्र भेजकर महाराज को बुलाती है। पृथ्वीराज दासी और पटरानी सहित उस महल में जाते हैं, जहाँ कयमास करनाटकी दासी के साथ रति-क्रीड़ा कर रहा था। पृथ्वीराज दोनों का वध कर देते हैं और कयमास को भूमि में गड़वाकर रात्रि में ही वन को लौट जाते हैं। उनके आने-जाने का पता उसकी साथ की सेना और साथियों को भी नहीं लगता।

कयमास-वध की यह सारी घटना सरस्वती चन्द को पहले स्वप्न में और फिर उसकी विनय पर प्रत्यक्ष होकर बतला देती हैं। पृथ्वीराज वन से लौट आते हैं और सभा जोड़ते हैं। वे कयमास के विषय में पूछते हैं। कोई नहीं

बता पाता। वे चन्द से कहते हैं कि या तो वह बताये कि कयमास कहाँ है या महादेव की सिद्धि का वरदान छोड़ दे। अन्त में चन्द पृथ्वीराज द्वारा कयमास वध की घटना प्रकाशित कर देते हैं।

कयमास की स्त्री पति के वध का समाचार सुनकर चन्द की शरण में आती है और पति के शव की माँग करती है। चन्द उसे लेकर पृथ्वीराज के पास जाते हैं। चन्द के बहुत आग्रह करने पर पृथ्वीराज इस शर्त के साथ शव देने को तैयार होते हैं कि चन्द उन्हें जयचन्द को दिखा दे। पृथ्वीराज चन्द के साथ सेवक बनकर जाने को तैयार हो जाते हैं। कयमास की स्त्री को उसके पति का शव दे दिया जाता है। वह सती हो जाती है। पृथ्वीराज कन्नौज जाकर वहाँ जयचन्द की भूमि में रण-नृत्य करने का दृढ़-संकल्प करते हैं।

कथानक में ऐतिहासिकता

डा० दशरथ शर्मा ने जैन-ग्रन्थ 'पुरातन-प्रबन्ध-संग्रह' के आधार पर पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता सिद्ध की है। उनके अनुसार पृथ्वीराज योगिनीपुर अथवा दिल्ली का शासक तथा जयचन्द का शत्रु था। उसके दो मंत्री थे, जिनमें एक था दाहिमा वंश का कयमास और दूसरा प्रतापसिंह श्रीमाल था। प्रतापसिंह के कहने पर पृथ्वीराज ने कयमास का वध कर डाला। इस घटना का वर्णन दूसरी रात्रि को चन्दवलद्दिक ने इस प्रकार किया था—

"इक्कु वांण पहुवीसु जु पइं कइं वासह मुक्कउ।
उरभिंतरि खडहडिउ धीर कक्खंतरि चुक्कउ॥
वीअं करि संधीउं भंमइ सूमेसर नंदण।
एहु सु गडि दाहिमओं खणइ खुद्दइ सइं भंरिवणु॥
फुड छंडि न जाइ इहु लुब्भिउ वारइ पलकउ खल गुलह।
न जाणउं चंदवलद्दि किं न वि छुट्टइ इह फलह॥
अगहु मगहि दाहिमओं रिपु रायं खयंकरू।
कहु मंत्रु मम ठवओ एहु जंवूय मिलि जगरू॥
सह नामा सिक्खवउं जइ सिक्खिविउं वुज्झइं।
जंपइ चन्दवलद्दिउ मज्झ परमक्खर सुज्झइं॥
पहु-पहु विराय सइं भरि धणी सयंभरि सऊणइ संभरिस।
कइं वास वियास विसट्ठविणु मच्छिवंधि वद्धओ मरिस॥"

रासो में कयमास-वध का कारण उसका करनाटी दासी से रति-क्रीड़ा दिया गया है।

प्रबन्ध-कौशल और कथा-प्रवाह

'कयमास-वध' 'पृथ्वीराज रासो' की एक अवान्तर घटना है। यह घटना पृथ्वीराज के कन्नौज-गमन की पृष्ठभूमि तैयार करती है। साथ ही स्वतन्त्र रूप में भी कथानक-प्रवाह में प्रबन्ध-कौशल बना रहता है। कथानक का प्रारम्भ इस प्रकार हुआ है—

"तिहि तप आषेटक भमइ, थिर न रहइ चहुवान।
वर प्रधान जुग्गिनि पुरह, धर रष्पइ परवान॥"

"तिहि तप" वाक्य इस 'समय' की घटनावली का सम्बन्ध पूर्व के 'समयों' की घटनाओं से जोड़ देता है। प्रश्न यह उठता है कि किस ताप में चहुवान का मन स्थिर नहीं है अतः जिसके कारण वह दिल्ली का शासन प्रधान मन्त्री कयमास को सौंपकर वन में आखेट करता हुआ मारा-मारा फिर रहा है। इसका उत्तर इससे पहले के समय "जयचन्द का राजसूय और संयोगिता का प्रेमानुष्ठान" में मिल जाता है।

(१) जयचन्द ने राजसूय यज्ञ का आयोजन किया और उसमें पृथ्वीराज को अपमानित करने के लिए उसकी प्रतिष्ठा के विरुद्ध द्वारपाल का काम सौंपा। पृथ्वीराज इस अपमान में तप रहा है।

(२) संयोगिता पृथ्वीराज पर पहले ही अनुरक्त थी। उसके प्रेमानुष्ठान का भी पृथ्वीराज को पता लग चुका था। अतः जयचन्द के द्वारा किया हुआ अपमान तथा संयोगिता के प्रेम-वियोग में तप्त होकर पृथ्वीराज का मन अस्थिर हो रहा है और वे राजकाज कयमास को सौंपकर वन में मारे-मारे फिरते हैं। इस प्रकार 'कयमास वध' 'समय' पूर्व कथा से शृंखला जोड़ देता है। कथानक का प्रारम्भ पृथ्वीराज की अस्थिरता दिखाकर बड़ा ही स्वाभाविक हुआ है। मन की इसी अस्थिरता के कारण आगे चलकर वह साधारण से अपराध पर कयमास जैसे वीर और योग्य प्रधान मन्त्री का वध करेंगे।

कथा का विकास

प्रारम्भ के पश्चात् ही कथानक का विकास क्षिप्र गति से होने लगता है। पृथ्वीराज आखेट-शिविर में हैं और कयमास अधिकार पाकर रमणी-भोग में लगा

हुआ है। वह करनाटकी दासी के साथ रति-क्रीड़ा में डूबकर कर्तव्य-च्युत हो गया है। कवि बड़ी नाटकीय मोड़ों से कयमास और करनाटकी दासी के रति-विलास की सूचना पटरानी को ताम्बूल-वाहिनी से दिलवाता है और नाटकीय लाघव से ही पृथ्वीराज आकर कयमास का वध करते हैं। वे कयमास को भूमि में गड़वा देते हैं और रात्रि में ही आखेट-शिविर को लौट जाते हैं। उनके आने-जाने का पता उनके साथ की सेना और साथियों को भी नहीं लगता। सारा रहस्य पृथ्वीराज, पटरानी और साथ की विश्वासपात्र दासी तक ही सीमित रह जाता है। १४वें छन्द तक कयमास-वध की समस्त घटना घटित हो जाती है।

'कयमास-वध' का प्रकाशन नाटकीय होता है। सरस्वती चन्द को पहले स्वप्न में और फिर उनकी विनय पर प्रकट होकर कयमास-वध की सारी घटना बतलाती हैं। सवेरे चन्द पृथ्वीराज के हठ पर भरी सभा में सारी घटना को प्रकाशित कर देते हैं। यहाँ कथावस्तु चरमसीमा पर पहुँच जाती है। कयमास वध की घटना को सुनकर शूर-सामन्त भयभीत होकर अपने घरों को पलायन कर जाते हैं। पृथ्वीराज क्रोधित और चन्द भयभीत दिखाई पड़ते हैं। यहाँ पर बड़ी ही संवेदनशील नाटकीय स्थिति आ जाती है। तीसवें छन्द से बड़ा ही मार्मिक और करुणापूर्ण दृश्य सामने आता है। सती होने को उद्यत कयमास की पत्नी चन्द की शरण में आती है और अपने पति का शव माँगती है। उसके द्वारा जीवन की निस्सारता का वर्णन जीवन के मोह को दूर कर कर्म में प्रवृत्त करता है। कथानक बड़ी शीघ्रता से उपसंहार की ओर बढ़ता है। चन्द पृथ्वीराज के पास कयमास की स्त्री को लेकर जाते हैं। पृथ्वीराज इस शर्त पर शव देने को तैयार होते हैं कि चन्द उनको जयचन्द को दिखाये। वे चन्द के साथ सेवक रूप में भी कन्नौज जाकर रण-नृत्य करने को उद्यत हैं। वे चन्द से कहते हैं—

> अब उपाउ सुझ्झउ एक संच्यउ।
> सुनि कवि मरनु टरइ नवि रंच्यउ॥
> समय तिथ्य गंगह जल पंच्यउ।
> अवसरि अब स पंग धर नंच्यउ॥"

पृथ्वीराज की निराशा और मन की स्थिरता दूर हो जाती है। इससे चन्द

को प्रसन्नता हो जाती है। अन्तिम छन्द में कवि कथानक का उपसंहार करता हुआ कहता है—

"अप्पउ कवि कयमास सतीय सय ले संचरिउ।
मरन लगा विधि हथ्थु-तथ्थु कवि उच्चरिउ॥
धरि वर पंग प्रगट्ट, अरु थट्ट विहंडिहइं।
इत उपहास विलास न प्रान पमूकिहइं॥"

कवि चन्द ने कयमास का शव उसकी स्त्री को अर्पित किया। वह सती हो गई। तब कवि ने कहा कि मरण और लग्न विधाता के हाथ में होते हैं। हम भले ही कन्नौज राज्य की भूमि पर प्रकट होंगे और शत्रु-सेना को विखण्डित करेंगे। यहाँ रहकर उपहास सहन करते हुए और विलासों में हम अपने प्राणों को नहीं छोड़ेंगे।

इस प्रकार 'कयमास-वध' की कथा के उपसंहार के साथ ही आगे की घटना की सूचना मिल जाती है। 'कयमास-वध' सर्ग के पश्चात् ही 'पृथ्वीराज का कन्नौज गमन', संयोगिता-परिणय और पृथ्वीराज-जयचन्द युद्ध की घटनाएँ आती हैं। 'कयमास-वध' इन घटनाओं की पृष्ठभूमि बनकर कथानक की शृङ्खला जोड़ देता है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि 'कयमास-वध' जहाँ रासो की प्रवन्धात्मकता में कथा-शृङ्खला की सुन्दर कड़ी बनता है, वहाँ स्वतन्त्र रूप में भी उसमें प्रवन्धात्मकता और आरोह-अवरोह के रूप में सुशृङ्खलित कथा प्रवाह है। प्रवन्ध के अन्तर्गत कवि ने मार्मिक स्थलों का अनुभूतिपूर्ण चित्रण किया है। इससे कथानक में आद्यान्त रसात्मकता रही है। कयमास के कामांध होने, पृथ्वीराज के क्रोध, अन्त में चन्द के गले लगकर अश्रु गिराने और सती होने के शृङ्गार से सजी हुई कयमास की स्त्री के वर्णन में बड़ी ही मार्मिक एवं अनुभूति-पूर्ण स्थिति है। प्रवन्ध-कौशल और मार्मिकता की दृष्टि से कयमास-वध 'पृथ्वीराज-रासो' का सर्वाधिक प्रभावशाली और संवेदनापूर्ण 'समय' है।

२

काव्य-सौष्ठव

प्रश्न २—काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से 'कयमास-वध' की सम्यक् समीक्षा कीजिए।

उत्तर—भावपक्ष-कलापक्ष

चन्दवरदाई महाकवि हैं। महाकवि के उपयुक्त ही 'कयमास-वध' में भाव-प्रगल्भता, वर्णन-वैभव, अभिव्यक्ति-कौशल और भाषाधिकार की उत्कृष्टता है। 'कयमास-वध' में भाव और भाषा, अनुभूति और अभिव्यक्ति का सुन्दर समन्वय हुआ है। 'कयमास-वध' 'पृथ्वीराज रासो' की एक अवान्तर कथा है। यह कथा-प्रसङ्ग जहाँ 'रासो' की कथा शृङ्खला की सुदृढ़ कड़ी हैं, वहाँ कथा-प्रवाह और प्रबन्धात्मकता की दृष्टि से स्वयं भी पूर्ण है। वर्णात्मक कथा-प्रसङ्ग में कवि ने मार्मिक स्थलों पर अनुभूतिपूर्ण अभिव्यक्ति की है।

'कयमास-वध' 'पृथ्वीराज रासो' विशाल महाकाव्य के अन्तर्गत ४३ छन्दों का एक लघु सर्ग है, जिसमें पृथ्वीराज द्वारा प्रधानामात्य कयमास-वध की घटना का वर्णन है। काव्य-सौष्ठव के विभिन्न पक्षों की दृष्टि से इस 'समय' में रासो-कार की प्रतिभा का पूर्ण प्रस्फुटन मिलता है।

रसात्मकता और भावाभिव्यंजना

कयमास-वध की प्रमुख घटनाएँ निम्नलिखत हैं—

१. राज्य-सत्ता पाकर कयमास का कर्त्तव्य-च्युत होकर रमणी-भोग-विलास में डूबना।

२. पृथ्वीराज द्वारा कयमास का वध।

३. कयमास की स्त्री का सती होना।

४. चन्द के साथ पृथ्वीराज का कन्नौज जाकर जयचन्द की भूमि में रण-नृत्य करने का निश्चय करना।

इन घटनाओं में पहले कयमास का वध करने के लिए पृथ्वीराज में क्रोध की उग्रता रहती है। इसके साथ ही कथानक में आद्यान्त जयचन्द पृथ्वीराज के क्रोध का आलम्बन बना रहता है। जयचन्द द्वारा किया गया अपमान उससे बदला लेने के लिए उद्दीप्त करता रहता है। अतः 'रौद्र-रस' इस कथा-प्रसङ्ग में अंगी है। इसके साथ में 'वीर-रस' के स्थायी भाव 'उत्साह' और 'भयानक' रस के स्थायी भाव भय की भी व्यंजना मिल जाती है। रौद्र और वीर-रस के साथ में शृङ्गार की धारा भी अन्तः सलिला की भाँति प्रवाहित हुई है। कथानक का प्रारम्भ विप्रलम्भ-शृङ्गार के संकेत से होता है। पृथ्वीराज चौहान संयोगिता के प्रेम-वियोग में सन्तप्त है। इस कारण उनका मन स्थिर नहीं है। वह राज-काज कयमास को सौंपकर वन में आखेट करता हुआ मारा-मारा फिर रहा है—

"तिहि तप आषेटक भमइ, थिर न रहइ चहुवान।
वर प्रधान जुग्गिनि पुरह, धर रष्षइ परवान॥"

इसके पश्चात् कयमास के करनाटकी दासी के साथ रति-विलास में संयोग-शृंगार का वर्णन हुआ है। परन्तु शृंगार का वर्णन इतना संयत और शिष्ट है कि कवि सांकेतिक शैली में रति क्रीड़ा और सुरति का भी वर्णन कर देता है—

"दीपक जरइ संकूरि भमिअ रत्तिअ पति अन्तह"

ताम्बूल-वाहिनी पटरानी को सूचना देती है कि कयमास महल में करनाटकी दासी के साथ इस प्रकार रति-क्रीड़ा कर रहा है, जिस प्रकार कि चन्द्रमा आकाश में विचरण करता है। यह अर्द्ध पंक्ति ही सांकेतिक शैली में रति-विलास और रति-क्रीड़ा के अनन्तर की शिथिलता का यथार्थ चित्र उपस्थित कर देती हैं—

"रतिपति मुच्छि अलुष्षि तन"

अर्थात कयमास और करनाटकी दासी के शरीर काम-क्रीड़ा से मूर्च्छित और अलक्ष्य हो रहे थे। सांकेतिक शैली में रति-क्रीड़ा का इतना संयत और शिष्ट वर्णन अन्यत्र दुर्लभ है।

निम्न उदाहरण में रौद्र, उत्साह और भय की एक साथ व्यंजना देखते ही बनती है—

'भरिग वान चहुआन जानि दुरि देव नाग नर ।
मुट्ठि दिट्ठि रिसि डुलिग चुक्कि निक्करिग एक सर ।।
उभय बान दिअ हथ्थि पुट्ठि परमारि पचारिय ।
बानावरि तटकंति घुटित धर धरनि आधारिय ।।
किय कब्बु सब्बु सरसइ गनित फुणिव कहउ कवि चन्द तत ।
इमि परेउ अयास अवास तइं जिमि निसि नसित नषत्रपति ।।"

चौहान पृथ्वीराज का वाण भर जाना रौद्र रस के साथ उत्साह को भी प्रकट करता है। देव, नाग तथा नरों का छिप जाना 'भय' की अभिव्यक्ति है। परमारी पटरानी का दो वाण और देकर पृथ्वीराज को ललकारना भी उत्साह की व्यंजना करता है। रौद्र रस की सम्पूर्ण निष्पत्ति निम्न उदाहरण में देखते ही बनती है। दासी के जगाने पर पृथ्वीराज उठते हैं। कयमास का कार्य सुनकर उनका क्रोध उद्दीप्त हो उठता है। उनकी दोनों भुजाओं में वाणावलि शोभित होने लगती है। वे रोष में दग्ध हो उठते हैं। दासी का उनको जगाना ऐसा लगता है मानो नागपति शेषनाग को उसकी पत्नी ने जगाया हो—

"छत्तिय हथ्थु धरन्त नयन्नु चाहियउ ।
तबहिं दासि करि हथ्थ सु वंचि सुनवियउ ।
बानावरि दुह बाँह रोस रिस दाहियउ ।
मनहु नागपति, पतिनि अप्प जगावियउ ।।"

उत्साह स्थायीभाव की व्यंजना पृथ्वीराज के कन्नौज जाने के दृढ़ निश्चय में हुई है। वे चन्द के साथ जाकर जयचन्द से युद्ध करने का उत्साह प्रकट करते हुए कहते हैं—

"चलउं भट्ट सेवग होइ सथ्थहं ।
जउ बोलउं त हथ्थु तुह मथ्थहं ।
जवह राइ जानइ समुह हुअ ।
तव अंगमउं समर दुहनि भुअ ।"

रौद्र-रस के पश्चात् 'कयमास-वध' में करुण-रस की निष्पत्ति को स्थान मिला है। तीसवें छन्द से लेकर अन्त तक सती होने के लिए उद्यत कयमास की स्त्री का प्रसंग आता है। अतः करुण रस का प्रसङ्ग ही कथांश के अन्तिम भाग पर छाया हुआ है। सती होने के लिए मंगल-आभूषणों से सजी हुई कयमास की स्त्री काल के हाथों राँधे हुए पकवान के समान लगती है :—

"अंतकु कर रंध्रामु अङ्गगुण त्रिय तनु लिप्पउ ।"

कवि को कथानक के मार्मिक स्थलों की अपूर्व पहचान है। वह अवसर पाते ही अनुभूति की स्निग्ध धारा प्रवाहित कर देता है। पृथ्वीराज की निराशा दूर हो जाती है और उनका मन अस्थिर से स्थिर हो जाता है। वे कन्नौज जाकर जयचन्द से लोहा लेने का दृढ़ संकल्प करते हैं। चन्द को इससे असीम आनन्द होता है। दोनों मित्र गले लगकर अश्रु धारा से शरीर को स्नान कराते हैं। निम्न उदाहरण में अनुभूतिपूर्ण रसात्मकता की भरपूर गागर छलक पड़ी है—

"दोइ कंठ लग्गिय गहन, नयनह जल गल न्हांनु ।
अब जीवन वंछिहि अधिक, कहि कवि कोन सयानु ।"

भाव-व्यंजना के अन्तर्गत कवि वस्तु-वर्णन भी करता है। 'कयमास-वध' में मुख्य घटना पृथ्वीराज द्वारा कयमास-वध की है। यह घटना कवि की लेखनी से बड़ी ही मार्मिक, अनुभूतिपूर्ण और रसात्मक बन पड़ी है। स्वतन्त्र रूप में वस्तु-वर्णन दो रूपों में हुआ है :—

१. नख शिख-वर्णन के रूप में।
२. प्रकृति-वर्णन के रूप में।

'कयमास-वध' में सरस्वती के रूप-वर्णन में चन्द ने नख-शिख-वर्णन किया है। चन्द की विनय और आग्रह पर सरस्वती उनके सामने प्रत्यक्ष हो जाती हैं। वे उनका नख-शिख सौन्दर्य-वर्णन करना आरम्भ कर देते हैं :—

"कयंद केस मुक्करे ।
उरग्ग वास विठ्ठरे ॥"

चन्द केशों से लेकर रोमावली, जंघाओं और पग-तलों तक का वर्णन करते हैं। काव्य की दृष्टि से यह वर्णन परम्परागत और सुन्दर है। अङ्ग-प्रत्यंग के वर्णन के लिए चन्द ने परम्परागत उपमान लिये हैं।

प्रकृति-वर्णन

कयमास-वध में प्रकृति-वर्णन संक्षिप्त है। कवि ने प्रकृति को प्रायः पृष्ठभूमि के रूप में उपस्थित किया है। साथ ही अलङ्कारिक, मानवीकरण, तथा आलम्बन और उद्दीपन के रूप में भी प्रकृति-चित्रण के दो एक उदाहरण

१५

मिल जाते हैं। निम्न पंक्ति में रात्रि का घनघोर अन्धकार और उसमें वर्षा से छिन्न पृथ्वी का यथार्थ चित्र सामने आ जाता है :—

"अंधारेन जलेन छिन्न छितया तारानि धारा रत।"

परन्तु रात्रि की वह प्रकृति कामांध कयमास की रति-क्रीड़ा की पृष्ठभूमि बन रही है।

दासी पटरानी का पत्र लेकर वन में पृथ्वीराज के आखेट शिविर में पहुँचती है। पृथ्वीराज निद्रा में हैं, परन्तु रात्रि नायिका की तरह उनके साथ अवैध रूप से जग रही है। यहाँ रात्रि का मानवीकरण है—

"भूम्रत सचित सुनिद्दा संग सा रयणि जग्गइ अविध्धा।"

सरस्वती के नख-शिख वर्णन में कवि ने प्रकृति से उपमानों को लिया है। इस प्रसङ्ग में अलङ्कारिक रूप में प्रकृति-वर्णन हुआ है :—

"मराल वाल आसनं।
अलित्त छाय सासनं।"

निम्न उदाहरण में सवेरा होने का सांकेतिक वर्णन है। साथ ही भ्रमर और कमलिनी के चित्र में नायक और नायिका की मान-मनोवल का आरोप बड़े ही कवि-कौशल में हुआ है :—

"अंबुज बिकस वास अलि आयौ।
सांमि वयनि सुन्दरि समभायौ।"

सवेरा होने पर कमलिनी विकसित होने लगी और उसकी सुवास के लिये भ्रमर आ गया। स्वामी अलि ने वचनों द्वारा सुन्दरी कमलिनी को समझाया। यहाँ भी प्रकृति का मानवीकरण है।

कलापक्ष

काव्य के कलापक्ष के अन्तर्गत अभिव्यक्ति-कौशल आता है। छन्द, अलङ्कार और भाषा आदि अभिव्यक्ति-कौशल के अङ्ग हैं।

छन्द

कयमास वध में मुख्य रूप से गाहा, दोहरा (दोहा), साटिका, अडिल्ल, मुडिल्ल, रासा, आर्या, अर्द्ध-नाराच और कवित्त (छप्पय) छन्दों का प्रयोग हुआ है। इनमें कवित्त और दोहों की प्रधानता है। कथा-सूत्र के वर्णन जहाँ गाहा, दोहा जैसे छोटे-छोटे छन्दों में हैं, वहाँ वर्णन-वैविध्य लम्बे आकार के

छन्द कवित्त में हुआ है। सभी छन्द विषय और भावों के अनुकूल हैं। छन्द की सफलता पर वस्तु-वर्णन और अनुभूति निरूपण थिरक उठा है। संयुक्ताक्षर और पुरुष वर्णों का प्रयोग सर्वत्र हुआ है। मात्रिक और वर्णिक दोनों ही प्रकार के छन्दों का प्रयोग मिलता है। छोटे आकार के छन्दों में वस्तु-वर्णन और भाव-सौन्दर्य निखर गया है। अर्द्ध-नाराच छन्द में सरस्वती का नख-शिख सौन्दर्य-वर्णन बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है। भावानुकूल छन्दों के कारण ही वस्तु-वर्णन में काव्यात्मकता आ गई है।

अलङ्कार-योजना

'कयमास-वध' में अलङ्कारों की सफल योजना है। अनुप्रास और उत्प्रेक्षा कवि के विशेष प्रिय अलङ्कार हैं। इनके अतिरिक्त पुनरुक्ति प्रकाश, सभंगपद, यमक, उपमा, रूपक, रूपकातिशयोक्ति, अतिशयोक्ति, प्रतीप, लोकोक्ति आदि अलङ्कारों का प्रयोग भी सुन्दर बन पड़ा है। उत्प्रेक्षाएँ तो कवि के द्वारा बड़ी सटीक बन पड़ी हैं। निम्न उदाहरणों में देखिए :—

"बानावरि दुहु बाह रोस-रिस दाहियउ।
मनहु नागपति पतिनि अप्प जगावियउ।"

× × ×

"विविच्च रोम रिंथये।
मनु पपील रिंगये॥"

उपमा

"इम परउ आयास अवास तइं,
जिम निसि नसित नषत्रपति॥"

अनुप्रास

"नित्तीरे कर काम वांम वसना,
संगेन सेज्या गतिः॥"

× × ×

"नवति नवप्पल निसि गलित॥"

भाषा

'कयमास-वध' की भाषा भावानुकूल है। उत्साह और क्रोध की अभिव्यक्ति के कारण पुरुष वर्णों की प्रधानता है। संयुक्ताक्षरों और व्यंजन-द्वित्व की

बहुलता सर्वत्र मिलती है। माधुर्य भावों की अभिव्यक्ति में भाषा ललित और माधुर्य पूर्ण हो गई है। सरस्वती के नख-शिख सौन्दर्य के वर्णन में इसी प्रकार की भाषा मिलती है :—

"कपोल रेख गातयो।
उवंत इंदु प्रातयो॥
वभूव जूव षंचये।
कलंक राहु वंचये॥"

कहीं-कहीं भाषा में माधुर्य के साथ में सरलता और प्रसाद गुण भी आ गया है :—

"अंवुज विकस वास अलि आयौ।
सांमि वयनि सुन्दरि समझायौ॥
निस पल पंच घटिय दोइ धायौ।
आषेटक नंषे नृप आयौ॥"

'कयमास-वध' की भापा में भावानुकूल परिवर्तन मिलता है, यह कवि के काव्य-कौशल का सबसे बड़ा प्रमाण है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से कयमास-वध बहुत सफल काव्य रचना है। रसात्मकता, भाव-व्यंजन, वस्तु-वर्णन, अभिव्यक्ति-कौशल आदि सभी दृष्टि से 'कयमास-वध' में चन्द के कवि-कौशल का चरमोत्कर्ष मिलता है।

प्रश्न ३—भाव-व्यंजना और अनुभूति की मार्मिकता की दृष्टि से 'कयमास वध' की समीक्षा कीजिए।

अथवा

प्रश्न ४—इतिवृत्तात्मक और रसात्मकता की दृष्टि से 'कयमास-वध' की समीक्षा कीजिए।

अथवा

प्रश्न ५—रस-योजना की दृष्टि से 'कयमास-वध' की विवेचना कीजिए।

अथवा

प्रश्न ६—"कयमास-वध में रौद्र-रस अंगी है, साथ ही करुण-रस की भी मार्मिक व्यंजना हुई है।"—इस कथन की सोदाहरण विवेचना कीजिए।

स्मृति-संकेत

१. रस-योजना और भाव-व्यंजना की दृष्टि से 'कयमास-वध' बहुत ही सफल है ।

२. कवि इतिवृत्तात्मक कथानक का संकेत भर दे देता है और मार्मिक अनुभूति के स्थलों पर वह विस्तार से भावाभिव्यक्ति करता है ।

३. 'कयमास-वध' में रौद्र, करुण, शृङ्गार, वीर, और भयानक रसों की व्यंजना हुई है ।

४. कयमास की स्त्री जहाँ जीवन की निस्सारता का वर्णन करती है, शांत रस की भी झलक आ जाती है, परन्तु यह प्रसंग पृथ्वीराज के उत्साह को स्फुरित करता है ।

५. 'कयमास-वध' में रौद्र रस अङ्गी रस है । अन्य रसों की स्थिति सहायक रसों के रूप में है ।

६. शृङ्गार-रस का निरूपण बड़ा ही संयत बन पड़ा है ।

उत्तर—भावाभिव्यंजना

'कयमास-वध' का मुख्य वृत्त कयमास-वध है । कवि की दृष्टि इतिवृत्तात्मक कथा पर नहीं रही है । कथा की शृङ्खला जोड़ने के लिए वह कई घटनाओं का एक ही छन्द में संकेत भर कर देता है । उसका हृदय रसात्मक प्रसङ्गों के वर्णन में ही रमा है । कवि कयमास की रति-केलि के विस्तार में नहीं जाता । 'दीपकु जरइ संकूरि' वाक्य मात्र से सांकेतिक-शैली में सब कुछ समझा देता है । पृथ्वीराज के आखेट-शिविर से पटरानी के महल तक आने, उनके तथा एक विश्वास-पात्र दासी को लेकर उस महल तक पहुँचने, जहाँ कयमास रति-क्रीड़ा कर रहा था आदि घटनाओं को एक ही छन्द में कह देता है—

"संग सयन्न न सथ्थि नृपति न जानयउ ।
दुहूं विच्चि इक दासिय संग समानयउ ।
इंदु फणेंदु नर्‌यंदन अथ्थि स भानयउ ।
घरह घरिय दुहु मझ्झि ततष्षिन आनयउ ॥"

इसी प्रकार वह कयमास की करनाटकी दासी-सहित वध करके गड्ढा खुदवा कर गड़वा देता है और सारा रहस्य पटरानी को सौंपकर रात्रि में ही वन को

चला जाता है। इस सारी घटना को सरस्वती स्वप्न में चन्द को बतलाती हैं। इन सारी घटनाओं को समास-शैली में कवि दो ही पंक्तियों में कह देता है—

"अप्पु राय वलि वनि गयु, सुन्दरि संउपि स दाय।
सुपनंतरि कवि चन्द सउ', सरसइ वद्दि सु आय ।।"

सरस्वती के नख-शिख सौन्दर्य-वर्णन में कवि का हृदय रम जाता है। वह चालीस पंक्तियों में उनके सौन्दर्य का अनुभूतिपूर्ण वर्णन प्रस्तुत करता है। लघु छन्द अर्द्ध-नाराच में अनुभूति की गगरी छलक उठती है। भाषा भी भावों के रुनझुन रुनझुन भाव-स्वर-लहरी में पैंजनियाँ बजाने लगती है—

"सबद्द वद्द नुप्पुरे।
चलंति हंस अंकुरे।
सुभाय पाय रंगु जा।
सु अध्ध रत्त अंबूजा।"

कयमास का पृथ्वीराज ने किस प्रकार वध किया और उस गड्ढे को सौंप दिया। इसका वर्णन चन्द द्वारा २७वें छन्द में हुआ है। यथार्थ में यही एक छन्द इतिवृत्तात्मक वृत्त से सम्बन्धित है। 'कयमास-वध' 'समय' के उत्तरार्द्ध में सती होने को उद्यत कयमास की स्त्री का वर्णन है। इस वर्णन में अनुभूति की पराकाष्ठा हो गई है। सती होने को उद्यत कयमास की पत्नी साक्षात् करुण मूर्ति ही लगती है। उसके द्वारा किया हुआ जीवन की नश्वरता का वर्णन बड़ा ही मार्मिक है। वह रंधे हुए पकवान के समान दिखाई दे रही थी—

"अंतकु कर रध्धांमु त्रइगुण त्रिय तनु लिष्षउ ।।"

कयमास-वध और उसकी पत्नी को शव देने का करुण प्रसङ्ग पृथ्वीराज के कन्नौज-गमन की पृष्ठभूमि वन जाता है। वह कन्नौज जाकर जयचन्द की भूमि में रण-नृत्य करने को उद्यत होता है। चन्द और पृथ्वीराज दोनों का गले लगकर अश्रु गिराना अनुभूति का मार्मिक चित्र उपस्थित कर देता हैं—

"दोइ कंठ लग्गिय गहन, नयनह जल गल न्हांनु।
अब जीवन वंछिहि अधिक, कहि कवि कोन सयानु ।।"

अर्थात् दोनों चन्द तथा पृथ्वीराज कसकर गले मिले और नेत्रों के गिरते हुए जल से दोनों ने स्नान किया। पृथ्वीराज ने कहा कि हे कवि तुम्हीं कहो, अब जयचन्द के द्वारा अपमानित होने पर कौन समझदार व्यक्ति अधिक जीवन की इच्छा करेगा।

निष्कर्ष यह है कि 'कयमास-वध' में अनुभूति और रसात्मकता की वेगवती धारा प्रवाहित हुई है।

रस-निरूपण

'कयमास-वध' में रौद्र रस अङ्गी रस है तथा अन्य रसों की स्थिति सहायक रसों के रूप में है। अन्य रस रौद्र-रस के स्थायी भाव क्रोध को उद्दीप्त करने में सहायक हैं।

रौद्र-रस के आश्रय, विभाव, अनुभाव और संचारी-भाव निम्न प्रकार हैं—

१. **आश्रय**—पृथ्वीराज।

२. **आलम्बन विभाव**—कयमास।

३. **उद्दीप्न विभाव**—करनाटकी दासी के साथ महल में कयमास के रति-क्रीड़ा करने का पटरानी का पत्र और महल में आकर स्वयं पृथ्वीराज का रति-क्रीड़ा करते हुए देखना।

४. **अनुभाव**—पृथ्वीराज के वाणावली पर हाथ जाना, आँखें लाल होना आदि।

५. **संचारी भाव**—रोष, कंप, अमर्ष, उद्वेग आदि।

६. **स्थायी भाव**—पृथ्वीराज के क्रोध की पुष्टि।

'कयमास-वध' में रौद्र-रस के उपर्युक्त समस्त रसांग मिल जाते हैं और रौद्र रस की सफल निष्पत्ति हो जाती है। आश्रय में क्रोध की उद्दीप्ति आलम्बन की ललकार उसके सामने होने या उसके कार्यों से होती है। पृथ्वीराज ने विश्वास करके कयमास को दिल्ली का शासन सौंपा परन्तु वह रति-क्रीड़ा में अपने को भूलकर कर्त्तव्य-च्युत हो रहा है। वह सारा प्रसङ्ग दासी द्वारा परमारी पटरानी के लाये हुए पत्र से पृथ्वीराज को मालूम होता है। पत्र सुनते ही उनकी दोनों वाहुओं में वाणावली शोभित होने लगी और वे 'रिस-रोस' में दग्ध हो गये—

"वानावरि दुहु वाह रोस रिस दाहियउ।"

वे शेषनाग की तरह जागते हुए रौद्र-रस की मूर्ति ही दिखाई देने लगे—

"मनहु नागपति पतिनि अप्प जगावियउ।"

यहाँ पृथ्वीराज आश्रय, कयमास आलम्वन, पत्र उद्दीपन, वाणावरि पर हाथ जाना और क्रोध में जलना अनुभाव है।

महल में पहुँच कर पृथ्वीराज कयमास को दासी के साथ शैय्या पर रति-क्रीड़ा में लगा देखते हैं। दोनों की स्थिति "रतिपति मुच्छि अलुष्षि तन" की हो

रही है। उनका क्रोध उद्दीप्त हो जाता है और उनका वाण धनुष पर जा लगता है—

"रतिपति मुच्छि अलुष्षि तन, धनु डुल्लइ विय काज।
तडित कियउ अंगुलि अधम, सु भरिग वान प्रथीराज ॥"

निम्न उदाहरण में रौद्र रस की पूर्ण सामग्री है। साथ में भय और उत्साह की भी व्यंजना हो गई है—

"भरिग वान चहुआन जानि दुरि देव नाग नर।
मुठ्ठि दिठ्ठि रिस डुलगि चुक्कि निक्करिग एक सर ॥
उभय वान दिअ हथ्थि पुठ्ठि परिमारि पचारिय।
बानावरि तटकंति घुटित धर धरनि आधारिय ॥
किय कब्बु सब्बु सरसइ गनित फुणिव कहउ कवि चन्द तत।
भूमि परउ अयास अवास तइं जिमि निसि नसित नषत्रपति ॥"

यहाँ पृथ्वीराज चहुआन आश्रय, रति-क्रीड़ा में संलग्न कयमास आलम्बन, पृथ्वीराज का वाण-संधान करना, वाण छोड़ना, वाणावली को तटङ्कित करना कायिक अनुभाव हैं। अत्यधिक क्रोध के कारण कंप से हाथ डोल जाने और लक्ष्य चूक जाने में सात्विक अनुभाव है। अमर्ष, उद्वेग आदि संचारी भाव हैं। इस प्रकार विभाव, अनुभाव और संचारी भावों से पुष्ट होकर स्थायी भाव क्रोध के पुष्ट होने से रौद्र रस की निष्पत्ति हो रही है। 'पृथ्वीराज' के सर-संधान करते ही भय के कारण देव, नाग और मनुष्यों के छिपे जाने में भयानक-रस की व्यंजना है। पटरानी के पीछे से दो वाण देने और ललकारने, तथा पृथ्वीराज के पुनः वाण संधान करके कयमास का वध करने में उत्साह की अच्छी व्यंजना हुई है। यहाँ 'भय' और उत्साह के स्थायी भय रौद्र रस के उद्दीपन में सहायक हो रहे हैं। कयमास की स्त्री चन्द के साथ पृथ्वीराज के पास अपने पति का शव लेने को पहुँची है। पृथ्वीराज के उसकी ओर देखने में क्रोध की व्यंजना हुई है—

"जागिं जुलन पृथीराज नयन नयनन जव दिष्षउ।"

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि 'कयमास-वध' में रौद्र-रस की पूर्ण निष्पत्ति हुई है। 'कयमास-वध' के अन्त में आलम्बन जयचन्द का अपमान उसे उद्दीप्त करने में सहायक है। पृथ्वीराज जयचन्द की भूमि में ही जाकर रण-नृत्य करने को उद्यत दिखाई पड़ते हैं।

वीर-रस

वीर-रस का स्थायी भाव 'उत्साह' और आलम्बन शत्रु-पक्ष होता है। 'कयमास-वध' में स्थायी भाव उत्साह की भी व्यंजना हुई है। पृथ्वीराज जयचन्द के अपमान से अस्थिर चित्त हो रहे थे। परन्तु कयमास-वध और कयमास की पत्नी को शव देने की पृष्ठभूमि में उनके हृदय से निराशा और अस्थिरता निकल जाती है। उनका क्रोध स्थायी भाव उत्साह का रूप धारण कर लेता है। वे चन्द के साथ कन्नौज जाने और जयचन्द से युद्ध करने का दृढ़ संकल्प करते हैं। निम्न उदाहरण में स्थायी भाव उत्साह है—

"चलउं भट्ट सेवग होइ सथ्थहं।
जउँ बोलउँ त हथ्थु तुह मथ्थहं॥
जवह राइ जानइ संमुह हुअ।
तब अंगमउं समर दुहुनि भुअ॥"

यहाँ राजा जयचन्द के सामने होने पर दोनों भुजाओं से युद्ध करने के दृढ़ संकल्प में स्थायी भाव उत्साह की पुष्टि हो रही है। निम्न उदाहरण में चन्द आश्रय है। उसके कथन में युद्धोत्साह की अभिव्यक्ति हो रही है—

"मरन लग्ग विधि हथ्थु तथ्थु कवि उच्चरिउ।
धरि वरु पंगु प्रगट्ट अरु थट्ट विहंडिहइं।
इत उपहास विलास न प्रान पमूकिहइं॥"

अर्थात् मरण और विवाह विधाता के हाथ में होते हैं। हम भले ही कन्नौज की भूमि पर प्रकट होंगे और शत्रु-सेना को विखण्डित करेंगे। यहाँ रहकर उपहास सहन करते हुए और विलासों में हम अपने प्राणों को नहीं छोड़ेंगे। पृथ्वीराज के चन्द के प्रति निम्न कथन में युद्धोत्साह की अभिव्यक्ति बहुत सुन्दर बन पड़ी है—

"सुनि कवि मरनु टेरइ नवि संच्यउ।
समर तिथ्थ गंगह जल रंच्यउ।
अवसरि अव स पंग धर नंच्यउ॥"

यहाँ पृथ्वीराज आश्रय, उनका अपमान करने वाला शत्रु जयचन्द आलम्बन, उनके निम्न कथन अनुभाव हैं, जो उत्साह को पुष्ट करते हैं—

१. मरन रंच मात्र भी नहीं टलता है।
२. रण-तीर्थ और गंगाजल हमें बुला रहे हैं।

३. हम कन्नौज-राज की भूमि पर नृत्य करके रण-कौशल प्रदर्शित करेंगे।

'कयमास-वध' में युद्ध का वर्णन नहीं आया है। अतः वीर-रस की पूर्ण निष्पत्ति नहीं हो पाई है। वीर-रस उत्साह के उद्दीप्त होने तक ही सीमित रहा है। परन्तु यह वीरोत्साह ही आगे पृथ्वीराज के कन्नौज-गमन और जयचन्द से युद्ध का कारण बनता है।

भयानक-रस

'कयमास-वध' में भयानक रस की स्वतन्त्र अभिव्यक्ति न होकर रौद्र-रस के अन्तर्गत ही हुई है। क्रोध में पृथ्वीराज कयमास का वध करने के लिए धनुष पर वाण चढ़ाते हैं। इसे देखकर देवता, नाग और नर भयभीत हो जाते हैं—

"भरिग वान चहुआन जानि,
दुरि देव नाग नर।"

निम्न उदाहरण में स्थायी भाव 'भय' की सफल अभिव्यक्ति हुई है। चन्द भरी सभा में पृथ्वीराज द्वारा 'कयमास-वध' की घटना प्रकाशित करते हैं। इसे सुनकर सभासद भयभीत होकर अपने-अपने घरों को पलायन कर जाते हैं जैसे उनके सिर पर लाठी का प्रहार हुआ हो। चन्द भी पृथ्वीराज के क्रोध में क्षण-क्षण में सूख रहे हैं। यहाँ भी 'भय' की व्यंजना रौद्र-रस के ही अन्तर्गत है—

"भट्ट वयन सुनि-सुनि सोइ कानहु।
अप्पु-अप्पु गए ग्रेह परानहु॥"

× × ×

"राज मज्झि संभयउ पट्ट दरबांन परट्ठिय।
बाहु सव्व सामंत मनउ लग्गिय सिर लट्ठिय॥
रहयउ चन्द विरद्दिआ विमुष मुष पग न सरक्यउ।
गिम्ह तेज वर भट्ट रोस जल षिनि-षिन सुक्यउ॥"

यहाँ सभासद और चन्द भय का आश्रय हैं।

करुण-रस

करुण-रस का स्थायी भाव 'करुणा' है। इसमें विनष्ट प्रियतम आलम्बन, उसके कार्य और गुणों का स्मरण उद्दीपन तथा आश्रय का रुदन और कथन अनुभाव होते हैं। 'कयमास-वध में कयमास की पत्नी जो सती होने को उद्यत

है, करुण-रस की साकार प्रतिमा होने के कारण आश्रय है। उसका मृत पति कयमास आलम्बन है। उसका सत् उसे उद्दीप्त कर रहा है। जीवन की नश्वरता और उससे विरक्ति का जो वह वर्णन करती है, वह उसके सती होने के संकल्प को दृढ़ करते हैं। जीवन-दर्शन और जीवन की नश्वरता के प्रति उसके कथन 'शान्त-रस' के अन्तर्गत नहीं हैं। इनमें तो पति के साथ सती होकर जीवन-मुक्त होने की ही उसकी दृढ़ता प्रकट हुई है। कयमास की स्त्री के रूप में करुण रस की अभिव्यक्ति सांकेतिक पद्धति पर हुई है। वह पृथ्वीराज को काल के हाथों द्वारा राँधे हुए पकवान के समान दिखाई देती है—

"जागि जुलन पृथ्वीराज नयन,
नयनन जब्ब दिप्पउ।
अंतकु कर रंध्धामु,
त्रइग्गुण त्रियतनु लिप्पउ॥"

कयमास की स्त्री का यह शब्द-चित्र और पति का शव पाकर उसका सती हो जाना करुण-रस की व्यंजना करता है। परन्तु करुण-रस की यह व्यंजना रौद्र-रस के ही अन्तर्गत हुई है। पृथ्वीराज के क्रोध के कारण ही कयमास का वध हुआ है और क्रोध में जलते हुए नेत्रों में ही पृथ्वीराज कयमास की स्त्री को काल के हाथों राँधे हुए पकवान की तरह देखते हैं।

शृंगार-रस

शृङ्गार-रस के दो पक्ष होते हैं—(१) संयोग शृङ्गार और (२) वियोग शृङ्गार। संयोग और वियोग शृङ्गार नायक और नायिका दोनों ही तरफ से होता है। 'कयमास-वध' में नायक की ओर से विप्रलंभ शृङ्गार की सांकेतिक व्यंजना हुई है। प्रथम छन्द संयोगिता के प्रेम-वियोग में जलते हुए अस्थिर चित्त पृथ्वीराज को सामने ले आता है—

"तिहि तप आषेटक भमइ, थिर न रहइ चहुवान।"

संयोगिता के विरह-ताप में पृथ्वीराज का मन अस्थिर हो रहा है। वे मन बहलाने के लिए राज-काज अपने प्रधान मन्त्री कयमास को सौंपकर वन में आखेट करते हुए फिरते हैं। वियोग-जनित ताप से अस्थिर चित्त ही क्रोध में कयमास का वध करने के लिये पृथ्वीराज को उग्र कर देता है। इस प्रकार विप्रलंभ शृङ्गार रौद्र-रस की पृष्ठभूमि बनकर सांकेतिक रूप में अभिव्यंजित हुआ है।

संयोग-शृङ्गार के अन्तर्गत नायक-नायिका के मिलन और प्रेम-क्रीड़ाओं से लेकर रति-क्रीड़ा तक आती है। 'कयमास-वध' में संयोग शृङ्गार का नायक और नायिका के रूप में स्वतन्त्र विकास नहीं है। चन्द ने 'सरस्वती का नख-शिख सौन्दर्य वर्णन' एक असाधारण सुन्दरी नायिका के रूप में किया है। वह काव्यात्मक है, परन्तु उसमें पूज्य भावना ही जाग्रत होती है। 'कयमास-वध' में प्रेम का जो स्वरूप सामने आता है, वह परकीया का अनौचित्यपूर्ण वासना जनित विलास है। राज-महल की करनाटकी दासी कामांध कयमास को आकर्षित कर लेती है। वह कर्त्तव्य-च्युत होकर उसके साथ शय्या गत होकर रति-क्रीड़ा करता है।

कवि उच्छृंखल विलास और रति-क्रीड़ा तक पहुँच जाता है, परन्तु उसका वर्णन-कौशल इतना सांकेतिक और संयत है कि अश्लीलता नहीं आने पाती। परन्तु पर्दे की सारी बात प्रकट हो जाती है—

"दीपक जरइ संकूरि भमिअ रत्तिअ पति अंतह ॥"

ताम्बूल-वाहिनी दासी का यह कथन कि आकाश में विचरण करने वाले चन्द्रमा की तरह कयमास दासी के महल में फिर रहा है और दीपक धीमा जल रहा है ; पर्दे की सारी बात प्रकट कर देता है। इसी प्रकार कवि का "रतिपति मुच्छि अलुष्षि" मात्र कथन स्पष्ट कर देता है कि सुरति और रति-विलास करने के अनन्तर करनाटकी दासी और कयमास मूर्च्छित और अलक्ष्य हो रहे हैं। पृथ्वीराज यह देखते हैं और उनका क्रोध उद्दीप्त हो जाता है। वे कयमास के वध के लिए धनुष पर वाण चढ़ा लेते हैं। इस प्रकार शृङ्गार का सांकेतिक वर्णन रौद्र-रस की निष्पत्ति में सहायक है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'कयमास-वध' में रौद्र-रस अंगी-रस है अन्य रस उसे उद्दीप्त करने के लिए सहायक रूप में आये हैं।

३

वस्तु-वर्णन

प्रश्न ७—वस्तु-वर्णन की दृष्टि से कयमास-वध की सम्यक् समीक्षा कीजिए।

उत्तर—'कयमास-वध' का कथानक इतिवृत्तात्मक और घटना-प्रधान नहीं है। 'कयमास-वध' नाम सुनकर पाठक इसमें युद्धात्मक घटना की आशा करते हैं। परन्तु पृथ्वीराज रति-क्रीड़ा करते हुए कयमास का एक छन्द में वध कर देते हैं। चन्द का उद्देश्य इस कथांश में इतिवृत्तात्मक न होकर कथा-सूत्र को संकेत रूप में देकर संयोगिता-हरण और जयचन्द से पृथ्वीराज के युद्ध की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करना है। साथ ही मार्मिक स्थलों को पहचान कर उन्होंने वस्तु-वर्णन के बड़े ही सजीव और गत्यात्मक शब्द-चित्र उपस्थित कर दिये हैं। निम्न पंक्तियों में वस्तु-वर्णन के बड़े ही सजीव चित्र सामने आ जाते हैं। एक ही पंक्ति में पूरे वातावरण को कवि ने चित्रवत् उपस्थित कर दिया है—

"दीपक जरइ संकूरि भमिअ रत्तिअ-पति अंतह।"

दीपक मन्द-मन्द जल रहा है और चन्द्रमा की तरह कयमास अन्तःपुर में फिर रहा है।

"मनहु नागपति पतिनि अप्प जगावियउ।"

पृथ्वीराज को दासी का जगाना ऐसा था, मानो नागपति को उसकी पत्नी ने आप ही जगाया हो।

रति-क्रीड़ा में श्लथ और मूर्च्छित कयमास और पृथ्वीराज के धनुष पर सर-संधान का सजीव चित्र निम्न पंक्तियों में मूर्तिमान हो गया है—

"रतिपति मुच्छि अल्लुष्षि तन, धनु ढुल्लइ विय काज ।
तडित कियउ अंगुलि अधम, सु भरिग वान प्रथीराज ॥"

कयमास-वध में वस्तु-वर्णन दो रूपों में हुआ है

१. नख-शिख-वर्णन के रूप में ।

२. प्रकृति-चित्रण के रूप में ।

नख-शिख-वर्णन

'कयमास-वध' में चन्द की विनय पर सरस्वती उनके सामने प्रत्यक्ष होती हैं । वे उनके नख-शिख-सौन्दर्य का वर्णन करते हैं । यह वर्णन परम्परागत होते हुए भी काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से बड़ा ही उत्कृष्ट बन पड़ा है । कवि का कल्पना-कौशल इसके लिए अनूठे उपमान जुटाता है । यह वर्णन चालीस पंक्तियों तक अर्द्धनाराच छन्द में चलता है । इस छोटे से छन्द ने भाषा के माधुर्य, लालित्य, सरलता और रसात्मकता से वर्णन को बड़ा ही अनुभूतिपूर्ण और हृदय स्पर्शी बना दिया है ।

चन्द पहले सरस्वती के वाहन और मुद्रा का वर्णन करते हैं । बाल हंस उनका आसन था, भ्रमर नियंत्रणपूर्वक जिस पर छाये हुए थे । वीणा का तुंबा शोभा दे रहा था, उससे निकलते हुए अच्छे रागों का धूम्र शोभित हो रहा था—

"मराल वाल आसनं ।
अलित्त छाय सासनं ।
सोहंति जासु तुंबरं ।
सुराग राज धूंमरं ।"

हंस और वीणा के वर्णन के बिना सरस्वती का वर्णन पूर्ण नहीं हो सकता । इसके पश्चात् चन्द केशों से नख-शिख सौन्दर्य-वर्णन आरम्भ करते हैं—

कयंद केस मुक्करे ।
उरग्ग वास विठ्ठरे ।
कपोल रेख गातयो ।
उवंत इन्दु प्रातयो ।
वभूव जूव षंचये ।
कलंक राह वंचये ।

यहाँ केशों और कपोलों का वर्णन है। सरस्वती के कलिंद के समान केश मुक्त थे। वे ऐसे लगते थे मानों सुवास लेने के लिए सर्प बैठे हों। यह उत्प्रेक्षा परम्परागत है, केशों को काव्य परम्परा में सर्प कहा जाता है। गालों में कपोलों की रेखा को प्रातः काल का उदित इन्दु कहा गया है और कपोल रेखा में यह सम्भावना की है कि मानो इन्द्र अपने मृग-रथ के जुए को वहुत खींच रहा है। इस उत्प्रेक्षा में मौलिकता और नवीनता है। ताटंकों के वर्णन में चन्द ने सर्वथा नवीन और मौलिक उत्प्रेक्षा की है। उनको कामदेव के रथ का चक्र कहा है—

"श्रवन्न ताट पिष्षयो।
अनंग-रथ्य चक्कयो॥"

इसके पश्चात् सरस्वती के नेत्रों, नासिका, ओठों, दाँत, केयूर, वस्त्र शीश-फूल आदि का वर्णन किया है। यह सारे वर्णन परम्परागत ही किये गये हैं। नेत्रों को वारि-खंजन, नासिका को वाल-कीर, अधरों को विम्वाफल, दाँतों को अनार का वीच से फटा फल और नखों को कोमल, रक्षित और स्वच्छ लक्षणों वाला कहा है।

माला-युक्त ग्रीवा का वर्णन बड़ा सुन्दर वन पड़ा है। ग्रीवा में पड़ी हुई माला ऐसी लगती थी मानों सुमेरु से गंगा को प्राप्त किया हो—

"सुग्रीव कण्ठ मुत्तयो।
सुमेरं गंग पत्तयो॥"

रोमावली में रेंगती हुई पिपीलकाओं की उत्प्रेक्षा भी वड़ी सुन्दर वन पड़ी है—

"विविच्च रोम रिंथये।
मनु पपील रिंगये॥"

इसके पश्चात् कवि सरस्वती की क्षीण कटि का वर्णन करता है और उनके गुह्य-प्रदेश का वर्णन न करके अश्लील वर्णन के दोष से वचने की घोषणा करता है। इसके पश्चात् जंघाओं, पिंडलियों, पैर की उँगलियों, चाल और नूपुरों से युक्त जावक-रंजित चरणों का वर्णन करता है। सरस्वती की पिंडलियाँ अच्छी थीं और उँगलियाँ चम्पा की कलियों के समान थीं। मराल-शावक की सी चाल से उनके नूपुर शब्द कर रहे थे। पैर स्वाभाविक रीति से ऐसे रंजित थे, मानों उनके नीचे लाल कमल हों। जंघाओं के वर्णन में अश्लीलता से बचने

का प्रयास करने पर भी स्थूलता आ गई है। वे कदली के खम्भे के समान हैं। यह उपमा परम्परागत और सुन्दर है। परन्तु उनको तो कवि ने अनीश्वर-विश्वासी के लिए स्थूल ब्रह्म ही बना दिया है। इस उपमा में नवीनता है। इस प्रकार का नख-शिख-वर्णन काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से सुन्दर अवश्य है, परन्तु पूज्या सरस्वती का एक सामान्य नारी जैसा वर्णन करके चन्द अपभाषण दोष से बचने की घोषणा करते हुए भी उससे बच नहीं पाये हैं।

प्रकृति-चित्रण

प्रकृति अनादिकाल से मानव की सहचरी रही है। प्रकृति के बिना उसके जीवन का अस्तित्व ही नहीं है। यही कारण है कि काव्य में प्रकृति को महत्त्व-पूर्ण स्थान मिलता आया है। 'कयमास-वध' में प्रकृति-वर्णन को स्वतन्त्र रूप में स्थान नहीं मिल पाया है और प्रकृति का संकेत रूप में ही वर्णन यत्र-तत्र हुआ है। फिर भी प्रकृति की जो संक्षिप्त झाँकी सामने आती है, वह वस्तु-वर्णन की दृष्टि से अनूठी है। 'कयमास-वध' के प्रकृति-चित्रण की यह प्रमुख विशेषता है कि कवि ने संक्षिप्त-शैली में प्रकृति का सांकेतिक वर्णन किया है परन्तु ये सांकेतिक चित्र इतने गत्यात्मक और सजीव बन पड़े हैं कि वर्णित वस्तु का चित्र ही उपस्थित कर देते हैं।

कयमास-वध में प्रकृति-वर्णन निम्नलिखित रूपों में हुआ है

१. वातावरण और पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृति-चित्रण
२. मानवीकरण के रूप में प्रकृति-चित्रण
३. उपमान और आलङ्कारिक रूप में प्रकृति-चित्रण
४. प्रकृति का सांकेतिक वर्णन

वातावरण और पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृति-चित्रण

'कयमास-वध' के अधिकांश प्रकृति-चित्रण वातावरण एवं किसी घटना या वस्तु-वर्णन की पृष्ठभूमि उपस्थित करने के लिये किये गये हैं। रात्रि का घनघोर अन्धकार छाया हुआ है। बरसने वाली जलधारा से पृथ्वी छिन्न हो रही है। वर्षा की धारा में तारागण भी छिप गये हैं। यह वातावरण कयमास के लिए रति-क्रीड़ा हेतु अनुकूल पृष्ठभूमि प्रस्तुत करता है। छिपकर अनैतिक विलास ऐसे ही वातावरण में होता है। कयमास भी शैय्यागत होकर करनाटकी दासी के साथ रतिक्रीड़ा कर रहा है :—

'अन्धारेन जलेन छिन्न क्षितया तारानि धारा रत।
सा मन्त्री कयमास काम अन्धा देवी विचित्रा गति ।।'

निम्न उदाहरण में वर्षा के विगत होने और शरदागम का यथार्थ वस्तु-चित्रण हुआ है। अगस्त्य तारा उदय हो गया, जल और चन्द्रमा उज्ज्वल हो गये। कास फूल कर श्वेतता फैलाने लगी। अर्थात् वर्षा के जाने पर आवागमन के मार्ग खुल गये। अतः पृथ्वीराज के मन में भी कन्नौज पर युद्ध-अभियान करने की इच्छा जागृत हो रही है—

"उदय अगस्ति नयन दिठि, उज्ज्वल जल ससि कास।
मोहि चन्द हइ विजय मन, कहहुँ कहाँ कयमास ।।"

मानवीकरण के रूप में प्रकृति-चित्रण

प्रकृति का मानवीकरण आधुनिक काव्य की विशेषता मानी जाती है। परन्तु हमारी हिन्दी के आदि कवि चन्द के काव्य में भी प्रकृति का मानवीकरण मिलता है। यह उनके प्रकृति-वर्णन की प्रमुख विशेषता है। निम्न उदाहरण में जहाँ रात्रि की प्रकृति का वातावरण उपस्थित हो जाता है, वहाँ वह मानवीकरण के रूप में भी सामने आती है। पृथ्वीराज निद्रा-मग्न हैं, किन्तु एक नायिका की तरह रात्रि अवैध रूप से उनके साथ जग रही है—

"भूम्रत सचित सुनिद्दा सङ्ग सा रयणि जग्गइ अविध्धा।
दीपकु जरइ सुमद्धा नूपुर सद्दानि भानि अच्छानि ।।"

निम्न उदाहरण में जहाँ सांकेतिक शैली में सवेरा होने की सूचना मिलती है, वहाँ प्रकृति का मानवीकरण भी हुआ है। वहाँ भ्रमर नायक है जो अपनी मानिनी नायिका कमलिनी को उसी प्रकार मना रहा है, जिस प्रकार नायक मानिनी नायिका को मनाता है—

"अम्बुज विकस वास अलि आयौ।
सांमि वयनि सुन्दरि समझायौ ।।"

उपमान और आलंकारिक शैली में प्रकृति-वर्णन

सरस्वती के नख-शिख सौन्दर्य-वर्णन में कवि ने प्रकृति से उपमान जुटाकर

अलङ्कार योजना की है। अतः इस प्रसङ्ग में प्रकृति-वर्णन उपमान और आलङ्कारिक शैली में हुआ है—

"मराल बाल आसनं।
अलित्त छाय सासनं।"
× × ×
"कपोल रेख गातयो।
उवंत इन्दु प्रातयो।"
× × ×
"दिपंत तुच्छ दिठ्ठयो।
बिची अनार फुट्टयो।।"
× × ×
"अपुठ्ठ रम्भ नारुहे।"
× × ×
"कली सु चंप अंगुरी।।"

सांकेतिक-प्रकृति-वर्णन

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि 'कयमास-वध' में प्रकृति का विस्तृत वर्णन नहीं है। स्वतन्त्र-प्रकृति-चित्रण को कहीं भी स्थान नहीं मिल पाया है, परन्तु प्रकृति के सांकेतिक चित्र सुन्दर बन पड़े हैं। निम्न उदाहरण में प्रातः काल होने का वर्णन है। किरणों से युक्त सूर्य के उदय होने और देव-द्वार पर शंख और सूर्य बजने से प्रातः काल का सांकेतक वातावरण उपस्थित हो जाता है—

"उग्गिअं भान पायान पूरं।
बज्जियं देव दरि संप तूरं।।"

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि 'कयमास-वध' में वस्तु-वर्णन संक्षिप्त होते हुए भी सफल गत्यात्मक और शब्द-चित्रों से आकर्षक बन पड़ा है।

४

अभिव्यक्ति-कौशल

प्रश्न ८—छन्द-योजना की दृष्टि से 'कयमास-वध' की समीक्षा कीजिए ।

उत्तर—'कयमास-वध' में प्रयुक्त छन्द

'कयमास-वध' ४३ छन्दों का एक छोटा-सा 'समय' है । परन्तु इसमें अनेक मात्रिक और वर्णिक छन्दों का प्रयोग हुआ है । कुछ छन्द तो सर्वथा नए हैं । 'कयमास-वध' में निम्नलिखित छन्द प्रयुक्त हैं—

१. दोहरा, २. साटिका, ३. कवित्त (छप्पय), ४. गाथा, ५. रासा, ६. अर्ध नाराच, ७. अडिल्ल, ८. मुडिल्ल, ९. आर्या ।

इनमें मात्रा, वृत्त, संयुक्त वृत्त, वर्ण वृत्त और फुटकर सभी प्रकार के छन्द हैं ।

मात्रा वृत्त

१. गाथा या गाहा, २. आर्या, ३. दोहा, दूहा या दोहरा, ४. अडिल्ल, ५. मुडिल्ल, ६. रासा ।

संयुक्त वृत्त

१, कवित्त (छप्पय)

वर्ण वृत्त

१. साटक ।

फुटकर

१. अर्ध नाराच ।

उपर्युक्त वर्गीकरण से स्पष्ट है कि 'कयमास-वध' में छोटे-छोटे मात्रिक वृत्त ही अधिक प्रयुक्त हुए हैं ।

गाथा या गाहा

गाथा या गाहा प्राकृत-भाषा का सुप्रसिद्ध छन्द है। इसमें १५, १३ पर यति देकर २८ मात्राएँ होती हैं—

"बाला मंगइ वरयो काउ, वासं ति भट्ट सरनांई।
तुव गति कछु मन संभरिवइ, संभरिवइ त संभरु राय।"

आर्या

इसके पहले और तीसरे चरण में १२, १२ और दूसरे तथा चौथे चरण में १८ और १५ मात्राएँ होती हैं, इसके पूर्वार्द्ध में चतुष्कलात्मक गण और गुरु होता है :—

"उगियं भान पायानु पूरं।
वज्जियं देव दरि संष तूरं॥"
कलत कयमास चडि वरणसाला।
देव वरदाइ वर मंगि बाला।"

दोहा

इसके पहले और तीसरे चरण में १३ तथा दूसरे तथा चौथे चरण में ११ मात्राएँ होती हैं। 'कयमास-वध' के दोहों के चरणांत में सदैव लघु मिलता है :—

"तिहि तप आषेटक भमइ, थिर न रहइ चहुवान।
वर प्रधान जुग्गिनि पुरह, धर रष्षइ परवान॥"

अडिल्ल

अडिल्ल छन्द के प्रत्येक चरण में १६ मात्राएँ होती हैं। चरणांत में दो लघु (।।) होते हैं। कहीं-कहीं यगण भी प्रयुक्त हुआ है :—

"भइ परतष्षि कव्वि मनि आई।
उगति उकंठ कंठ समुहाई॥
बाहन हंस, अंस सुषदाई।
तव तेहि रूप चन्द कवि धाई॥"

मुडिल्ल

इसके प्रत्येक चरण में १६ मात्राओं का नियम प्रायः मिलता है और इन

१६ मात्राओं में गुरु लघु या चौकलों की स्वच्छन्दता है। इसमें जगणों का प्रयोग भी मिलता है :—

"प्रथम सूर पुच्छइ चहुआनहुँ।
हइ कयमास कहूँ कोइ जानहुँ।
तरणि छिपंत संझि सिर नायउ।
प्रात देव मुहुल न पायउ।"

रासा

यह 'रासो' नाम के काव्यों का प्रमुख छन्द है। इसके प्रत्येक चरण में २१ मात्रायें और अन्त में तीन लघु या नगण (।।।) होते हैं, तथा चारों चरण के अन्त में तीन लघु (।।।) होते हैं :—

"छत्तिय हत्थु धरंत नयन्नु चाहियउ।
तवहि दासि करि हथ्थ सु वंचि सुनावियउ।
वानावरि दुह वाह रोस रिस दाहियउ।
मनहु नागपति पतिनि अप्य जगावियउ।।"

कवित्त (छप्पय)

कवित्त संयुक्त वृत्त है। 'रासो' में छप्पय के लिए ही 'कवित्त' शब्द का प्रयोग हुआ है। इसके प्रथम चार चरण रोला के तथा अन्त के दो चरण उल्लाला के होते हैं :—

एकु वान पुहवी नरेश कयमासह मुक्कउ।
उर उप्परि षरहरिउ वीर कष्षहतर चुक्कउ।
बीउ वान संधानि हनउ सोमेसुर नंदन।
गाडउ करि निग्गहउ षनिव षोदुउ संभरि धनि।
थर छंडि न जाय अभागरउ गारइ गहउ जु गुन षरउ।
इंम जंपइ चन्द विरद्दिया सु कहा निमिट्टिहि इह प्रलउ।"

'साटक'

'साटक' में चार चरण होते हैं और प्रत्येक चरण में १९ वर्ण होते हैं—

"भूकंपं जयचन्द राय कटके शंकापि न ग्यायते।"

अर्ध नाराच

इसके प्रत्येक चरण में ८ वर्ण होते हैं तथा लघु गुरु की क्रमशः योजना होती है—

"मराल बाल आसनं ।
अलित्त छाय सासनं ।"
सोहंति जासु तुंवरं ।
सुराग राज घूंमरं ।।"

छन्द-योजना में कवि का कौशल प्रकट हुआ है। छप्पय की रचना में चन्द को वहुत अधिक सफलता मिली है। हजारीप्रसाद द्विवेदी ने चन्दवरदाई को छप्पयों का राजा कहा है—

"चन्दवरदाई छप्पयों का राजा था।·····वैसे तो हर तलवार की झंकार में चन्दवरदाई त्रोटक, तोमर, पद्धरी और नाराच पर उतर आये हैं, पर जमकर वे छप्पय (कवित्त) और दूहा (दोहा) ही लिखते हैं।"

'कयमास-वध' में कथा-सूत्र का वर्णन प्रायः छोटे-छोटे छन्दों में हुआ है। सभी छन्दों में संयुक्ताक्षरों तथा परुष वर्णों का प्रयोग अधिक हुआ है। छन्द-योजना भावानुकूल है। आवश्यकतानुसार छोटे-वड़े छन्दों का प्रयोग हुआ है। सौन्दर्य का वर्णन छोटे छन्दों में हुआ है। अर्द्ध-नाराच छन्द में सरस्वती का नख-शिख-वर्णन वड़ा ही मनोहर और आकर्षक बन पड़ा है।

प्रश्न ९—अलंकार-योजना की सफलता की दृष्टि से 'कयमास-वध' की समीक्षा कीजिए।

उत्तर—कला की दृष्टि से 'पृथ्वीराज रासो' के अन्तर्गत 'कयमास-वध' घटना-प्रसङ्ग उत्कृष्ट बन पड़ा है। इसमें कवि का कलात्मक-कौशल देखते ही बनता है। अलङ्कारों के प्रसङ्ग में सर्वत्र स्वाभाविकता रही है। रीति-कालीन कवियों की तरह अलङ्कारों के भार से अनुभूति कहीं भी बोझिल होने नहीं पाई है। अलङ्कारों की व्यर्थ की ठूँस-ठाँस कहीं नहीं मिलती। 'कयमास-वध' में शव्दालंकार और अर्थालंकार दोनों ही प्रकार के अलंकारों का प्रयोग हुआ है। शव्दालंकारों में अनुप्रास, पुनुरुक्ति प्रकाश और सभंगपद यमक अलंकार आये हैं और अर्थालंकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, रूपकातिशयोक्ति, अतिशयोक्ति, प्रतीप, व्यतिरेक, लोकोक्ति और सहोक्ति अलङ्कार आये हैं। इनमें उत्प्रेक्षा अलङ्कार कवि को विशेष प्रिय रहा है।

अनुप्रास

वर्णन-प्रवाह की तीव्रता के लिये अनुप्रास वहुत आवश्यक है। 'कयमास-वध' इतिवृत्तात्मक वृत्त है, अतः अनुप्रास के द्वारा वर्णन में सुन्दरता आ गई है।

अनुप्रास के अन्तर्गत छेकानुप्रास एवं वृत्यनुप्रास अलंकारों का प्रयोग हुआ है।

क—छेकानुप्रास—

१. नित्तीरे कर काम वांम वसना संगंन सेज्या गतिः।

२. निस पल पंच घटिय दोइ धायौ।

ख—वृत्यनुप्रास—

१. नवति नवप्पल निसि गलित।

२. सं साहिस्स सहावसाहि सकलं इच्छामि युद्धाइने।

पुनरुक्ति प्रकाश

पुनरुक्ति में शब्दों के वारम्वार आने से कथन में वल और प्रभाव आ जाता है—

१. अप्पु अप्पु गए ग्रेह परानहु।

२. कि किं विलास गहियं कि किं दुष्षाय दुष्षाय।

सभंगपद यमक

कयमास-वध में कई स्थलों पर सभंगपद यमक का प्रयोग हुआ है। इससे उक्ति में सौन्दर्य आ गया है—

१. मनहु नागपति पतिनि अप्प जगावियउ।

२. सवद्द वद्द नुप्पुरे।

उपमा

गुण-साम्य के आधार पर उपमालंकार में कवि ने सुन्दर अप्रस्तुत-योजना की है। यह अप्रस्तुत-योजना वस्तु-वर्णन का शब्द-चित्र उपस्थित कर देती है—

१. इम परउं अयास अवास तइं,
   जिमि निसि नसत नक्षत्रपति।

२. तडित कियउ अंगुलि अधम।

रूपक

रूपक में उपमेय तथा उपमान में अभेद मानते हुए उपमेय पर उपमान का आरोप किया जाता है।

१. तिहि तप आषेटक भमइ।

चन्द ने रूपक के द्वारा निम्न उदाहरण में नवीन और मौलिक अप्रस्तुत योजना की है। सरस्वती के कानों के तांटकों को कामदेव के रथ के चक्र ही वना दिये हैं—

"श्रवन्न ताट दिष्ययो।
अनंग रथ्य चक्कयो।"

रूपकातिशयोक्ति

रूपकातिशयोक्ति अलंकार में उपमान के द्वारा ही उपमेय का वर्णन करके सौन्दर्य की सृष्टि की जाती है। निम्न उदाहरण में रूप-जल में तैरते हुए जल-खञ्जनों के वर्णन द्वारा सरस्वती के नेत्रों का वर्णन किया गया है।

"उर्छमि वारि संजयो।
तिरंति रूप रंजयो।"

अतिशयोक्ति

अतिशयोक्ति में वस्तु-वर्णन इतना बढ़ा-चढ़ाकर किया जाता है जोकि लोक में नहीं मिलता—

"भूकंपं जयचन्द राय कटके,
शंकापि न ग्यायते।"

व्यतिरेक

व्यतिरेक अलंकार में उपमान से उपमेय में अधिक गुणों का कथन किया जाता है।

इंदु फणेंदु नर्यंदन अथ्यि स भानयउ।
घरह घरिय दुहुँ मझ्झि ततष्षिन आनयउ।"

लोकोक्ति

लोकोक्ति में कहावतों के माध्यम से वस्तु-वर्णन और भाव-निरूपण को अधिक वल दिया जाता है—

१. सा मन्त्री कयमास काम अन्धा देवी विचित्रा गति।
२. अग्यांनं चहुआंन जानं रहियं दैंयोऽपि रक्षा करे।

सहोक्ति

भूम्रत, सुचित सुनिद्दा संग सा रयणि जग्गह अविघ्धा।

उत्प्रेक्षा

उत्प्रेक्षा में उपमेय में उपमान की सम्भावना की जाती है। कवि ने उत्प्रेक्षाओं के द्वारा अभिव्यक्ति को नवीनता और सौन्दर्य प्रदान किया है—

१. विविच्च रोम रिंथये।
मनु पपील रिंगये।

२. मनहु नागपति पतिनि अप्प जगावियउ ।।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि अलंकार-योजना की दृष्टि से 'कयमास-वध' पूर्ण रूप से सफल है ।

प्रश्न १०—भाषा-शैली की दृष्टि से 'कयमास-वध' की समीक्षा कीजिए ।

अथवा

प्रश्न ११—"भाषा की व्यंजकता, ध्वन्यात्मकता और प्रवाह तथा शैली की सामासिकता, सांकेतिकता, उक्ति-वचित्र्य और वाग्विदग्धता के कारण 'कयमास-वध' उत्कृष्ट रचना है—इस कथन की सोदाहरण समीक्षा कीजिए ।

उत्तर—'कयमास-वध' की भाषा भावानुकूल है । कथानक में उत्साह और क्रोध भावों की व्यञ्जना अधिक है । इन प्रसङ्गों की भाषा ओज गुण प्रधान है । परुष वर्णों की अधिकता है और संयुक्ताक्षरों का प्रयोग अधिक हुआ है । भाषा प्राचीन ब्रजभाषा है, जिस पर अपभ्रंश और डिंगल का प्रभाव है । निम्न उदाहरण में क्रोध की अभिव्यक्ति में भाषा सहायक है । संयुक्ताक्षरों की ध्वन्यात्मकता पृथ्वीराज द्वारा कयमास-वध का शब्द-चित्र उपस्थित करने में समर्थ है—

"भरिग वान चहुँआन जानि दुरि देव नाग नर ।
मुठ्ठि दिठ्ठि रिस डुलिग चुक्कि निक्करिग्ग एक सर ।
उभय वान दिअ हथ्थि पुठ्ठि परमारि पचारिय ।
वानावरि तटकंति घुटित धर धरनि आधारिय ।
किय कव्वु सव्वु सरसइ गनित फुनिव कहउ कवि चन्द तत ।
इम परउ अयास अवास तइं जिमि निसि नसित नषत्रपति ।।"

माधुर्य भावों की व्यञ्जना के प्रसंग में परुष वर्णों और संयुक्ताक्षरों का प्रयोग अधिक नहीं हुआ है । सरस्वती के नख-शिख-सौन्दर्य में भाषा सरल, सरस और माधुर्य गुण-युक्त हो गई है—

"मराल वाल आसनं ।
अलित्त छाय सासनं ।
सोहंति जासु तुम्बरं ।
सुराग राज घूंमरं ।।"

× × ×

"सुरंग चंग पिंडरी।
कली सु चंप अंगुरी।"

इन स्थलों की भाषा अपनी ध्वन्यात्मकता में पैजनियों की रुनझुन का मधुर नाद-सौन्दर्य उत्पन्न करती हैं—

"सवद्द वद्द नुप्पुरे।
चलंति संघ अंकुरे।
सुभाय पाय रंगु जा।
सु अब्ध रत्त अंबुजा।"

प्रकृति-चित्रण के स्थलों पर भाषा में यही सरलता, सहजता और मधुरता का गुण मिलता है। निम्न छन्द की शब्दावली प्रातःकाल को जैसे ध्वनि-सी कह रही है—

उग्गिअं भान पायान पूरं।
वज्जियं देय दरि षंस तूरं।
कलत कयमास चडि वरणसाला।
देव वरदाइ वर मंगि वाला।।"

इस प्रकार भाव और प्रसंग के अनुसार भाषा परिवर्तित होती चलती है।

स्वर

कयमास-वध की भाषा में वैदिक भाषा की भाँति कहीं-कहीं 'ऋ' के स्थान पर 'उ' मिलता है। जैसे 'पृथ्वी' का 'पुहुवी, 'पुहुमि' आदि। इसी प्रकार सम्पर्क वर्ण के पूर्व के स्वर का ह्रस्व भी अनेक रूपता सहित मिलता है। जैसे 'हाथ' का 'हथ्य', 'माथा' का 'मथ्थह'।

व्यंजन—सर्वत्र व्यंजन-द्वित्व की प्रधानता है। 'अलित्त', 'मुक्करें', 'उरग्ग', 'विठ्ठरे', 'श्रवन्न', 'पिष्षयो', 'चक्कयो', 'फुट्टयो', 'सुरत्ति', 'लष्षण', 'विविच्च', 'कनक' आदि शब्दों में व्यंजन-द्वित्व की प्रवृत्ति द्रष्टव्य है। इससे भाषा पर प्राचीनता तथा अपभ्रंश का प्रभाव स्पष्ट होता है।

'सुद्धयो', 'तुच्छ', 'सच्छ' आदि व्यंजन-संयोग (अल्पप्राण और महाप्राण) की सुरक्षा है।

भाषा में इसी प्रकार स्वर-संयोगों की प्रवृत्ति है। जैसे 'मानुए', 'रुदइ'-मदइ', 'डायउ', 'अग्गयउ' आदि। आनुनासिकता की प्रवृत्ति भी प्रचुरता से मिलती

है। जैसे 'धूमरं', 'उछंमि', 'अमरं' आदि। इस प्रकार इकारान्त और उकारान्त की प्रवृत्ति भी वहुत अधिक पाई जाती है।

शैली

'कयमास-वध' में कवि इतिवृत्तात्मकता में नही गया है। कथा को बहुत संक्षेप में कहने की उसकी प्रवृत्ति रही है। सामासिकता का गुण शैली में सर्वत्र पाया जाता है। सांकेतिकता, उक्ति-वैचित्र्य और वाग्विदग्धता ने शैली को उत्कृष्टता और रमणीयता प्रदान की है। चन्द अपने वर्णन-कौशल और कथन-चातुर्य से संकेत में ही यथार्थ वस्तु-चित्र उपस्थित कर देते हैं। कयमास करनाटकी दासी के साथ महल में कामांध होकर रतिक्रीड़ा कर रहा है। कवि इसका विस्तार से वर्णन नहीं करता परन्तु संकेत-शैली में ही सब कुछ कह देता है। इससे यथार्थ सत्य भी सामने आ जाता है ओर अश्लीलता भी नहीं आने पाती है—

"दीपक जरइ संकूरि भमिअ रत्तिअ-पति अंतह।"

ताम्बूल वाहिनी दासी जाकर पटरानी से कहती है कि करनाटकी दासी के महल में दीपक मन्द-मन्द जल रहा है और कयमास निशापति चन्द्रमा की तरह अन्तःपुर में फिर रहा है। दीपक का मन्द होना ही कयमास के छिपकर रतिक्रिया करने की बात को प्रकट कर देता है। अन्य कवि रति-क्रीड़ा और सुरति के वर्णन में जमीन-आसमान के कुलावे एक करते हुए मर्यादा का उल्लंघन कर जाते हैं और उनका वर्णन अश्लील हो जाता है। पृथ्वीराज ने कयमास और करनाटकी दासी के रति-विलास का वर्णन किया है, परन्तु संकेत में ही पर्दे की बात कह दी है। "रतिपति मुच्छि अलुष्षि तन" अर्थात उनके शरीर काम से मूर्च्छित और अलक्ष्य हो रहे थे, सब कुछ स्पष्ट कर देते हैं। चन्द के अभिव्यक्ति कौशल की सबसे प्रमुख विशेषता है कि वे रति-क्रीड़ा का वर्णन बड़े संयत रूप से कर जाते हैं; किंचित भी अश्लीलता नहीं आने पाती।

चन्द की शैली में इतना अधिक लाघव है कि वे लम्बे-चौड़े प्रसङ्ग को एक-दो ही पंक्तियों में भली प्रकार सामने रख देते हैं। पृथ्वीराज वन से आये और कयमास का वध किया। वे उसके शव को भूमि में गड़वाकर पुनः रात्रि में ही वन को लौट गये। सरस्वती ने सारी घटना स्वप्न में चन्द को बतला दी। इतना लम्बा वर्णन दो ही पंक्तियों में चित्रवत् सजीव हो उठा है—

"अप्पु राय वलि वनि गयु, सुन्दरि संउपि स दाय।
सुपनंतरि कवि चन्द सउं सरसइ वद्दि सु आय ॥"

कवि अपनी कथन-विदग्धता से शैली में प्रेषणीयता ला देता है। पृथ्वीराज क्रोध में जल रहे हैं। चन्द कयमास की स्त्री को साथ लेकर उसे पति का शव दिलवाने जाते हैं। वे स्त्री की ओर से पृथ्वीराज की प्रशंसा कर उनके क्रोध को ठंडा कर स्त्री के प्रति दयार्द्र बना देते हैं।

बाला मंगई वरयो काउ वासं ति भट्ट सरनांई।
तुव गति कछु मन संभरिवइ, संभरिवइ त संभरु राय ॥

अपनी वचन-चातुरी से ही चन्द पृथ्वीराज के हृदय में कन्नौज चलकर वहाँ रण-नृत्य करने का उत्साह जागृत कर देते हैं।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भाषा-शैली की दृष्टि से 'कयमास-वध' वहुत सफल है। भाषा की व्यंजना, ध्वन्यात्मकता और प्रवाह तथा शैली की सामासिकता, उक्ति-वैचित्र्य और वाग्वैदग्ध्य के कारण 'कयमास वध' में कवि का अभिव्यक्ति-कौशल देखते ही बनता है।

५

चरित्र-चित्रण

प्रश्न १२—चरित्र-चित्रण की दृष्टि से 'कयमास-वध' की समीक्षा कीजिए।

अथवा

प्रश्न १३—कयमास-वध के चरित्र-चित्रण की विशेषताएँ बतलाते हुए पृथ्वीराज और चन्दवरदाई का चरित्र-चित्रण कीजिए।

उत्तर—'कयमास-वध' महाकाव्य 'पृथ्वीराज रासो' की एक अवान्तर घटना है। अतः इसमें पृथ्वीराज के चरित्र का एक अंश ही आया है, परन्तु इससे उनके चरित्र के शौर्य एवं शक्ति का परिचय मिलता है। चन्द का चरित्र पृथ्वीराज के अभिन्न-मित्र, शुभ-चिंतक, एक दूरदर्शी दैवी-शक्ति-सम्पन्न कवि और पृथ्वीराज की प्रेरणा-स्रोत के रूप में चित्रित हुआ है। पृथ्वीराज और चन्दवदाई ही 'कयमास-वध' के प्रमुख पात्र हैं। ये दोनों पात्र रंगमंच पर आकर क्रिया-कलाप करते हैं। अन्य पात्रों में कयमास प्रमुख पात्र है। उसी का पृथ्वीराज द्वारा वध होता है। परन्तु उसका चरित्र कवि द्वारा वर्णित है। शेष पात्रों में परमारी-पटरानी और कयमास की स्त्री हैं। दैवी पात्रों में सरस्वती को स्थान मिला है।

कयमास-वध के पात्रों को दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है—

१. **प्रमुख पात्र**—(१) पृथ्वीराज, (२) चन्दवरदाई, (३) कयमास।

२. **गौण पात्र**—(१) परमारी पटरानी, (२) कयमास की स्त्री, (३) सरस्वती, (४) करनाटकी दासी, (५) ताम्बूल वाहिनी सखी,

(६) पृथ्वीराज को आखेट, शिविर से लिवाकर साथ लाने वाली दासी। सभी गौण-पात्रों का चरित्र कवि द्वारा संक्षेप में वर्णित है। घटना का केन्द्र-विन्दु पात्र कयमास तक प्रत्यक्ष रूप से सामने नहीं आया है। कवि उसके कामांध होकर करनाटकी दासी के साथ क्रीड़ा करने और पृथ्वीराज द्वारा उसके वध होने का उल्लेख मात्र कर देता है।

कथानक में सभी पात्रों की स्थिति सार्थक हैं। वे कथा-विकास में सहयोगी हैं। ताम्बूल वाहिनी सखी अपने कर्त्तव्य का पालन करती हुई कयमास और करनाटकी दासी के रति-विलास की सूचना पटरानी को देती है। परमारी पटरानी क्षत्रियोचित गर्व और शौर्य से पूर्ण हैं। वे कयमास की कामांधता की बात सुनकर तत्काल पृथ्वीराज को बुला लेती हैं। कयमास-वध के समय वे भी उपस्थित हैं। पृथ्वीराज का एक वाण लक्ष्य से चूक जाने पर वे झट दो वाण और देती हैं और साथ ही उनको ललकार कर उत्तेजित भी करती हैं। पृथ्वीराज तक वन में सन्देश ले जाने वाली दासी मुग्धा युवती है। वह बड़ी तत्परता से अपने कर्त्तव्य का पालन करती है, परन्तु उसके द्वारा पृथ्वीराज की छाती पर हाथ रखकर जगाना मर्यादा का अतिक्रमण है। कयमास की स्त्री साक्षात् करुणा की मूर्ति है। उसके कथन में सती का तेज है। वह प्रत्यक्ष रूप में सामने आती है और पति का शव पाकर सती हो जाती है। सरस्वती चन्द को इष्ट हैं। वे स्वप्न में चन्द को कयमास-वध की सारी घटना वतलाती हैं और चन्द के आग्रह पर प्रत्यक्ष भी होती हैं।

'कयमास-वध' के चरित्र पर सामान्य दृष्टिपात करने के पश्चात् अव हम कयमास, कयमास की स्त्री, पृथ्वीराज और चन्दवरदाई के चरित्र की विशेषताओं का उद्‌घाटन करेंगे।

कयमास

कयमास कथानक का केन्द्र-विन्दु है, परन्तु उसका चरित्र वर्णित रूप में ही सामने आया है। कयमास पृथ्वीराज का विश्वास-पात्र भी है, तभी तो राजधानी के शासन का भार पृथ्वीराज उसे सौंप देते हैं। परन्तु अधिकार को पाकर वह कामांध हो जाता है। वह कर्त्तव्य-च्युत होकर रमणियों के भोग में अपना समय व्यतीत करने लगता है। अन्तःपुर की करनाटकी दासी उसे अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। वह उसके साथ रति-विलास में शैय्या-गत

होता है। जो वीर कयमास गुर्जर नरेश-चालुक्य भीम को बन्दी बनाने वाला हैं, वही दासी के साथ रति-क्रीड़ा में पड़कर कर्त्तव्य-विमुख होता है। कवि के शब्दों में दैव ही उसकी रक्षा कर सकता है। रति-क्रीड़ा में मूर्च्छित अवस्था में पृथ्वीराज उसका वध करते हैं। वह कर्त्तव्य-च्युत होकर रति-विलास का परिणाम भोगता है और मुत्यु को प्राप्त होता है।

कयमास की स्त्री

कयमास की स्त्री का चरित्र कथानक में बहुत महत्व पा गया है। ३० वे छन्द से लेकर अन्त तक उसी का प्रसंग चलता हैं। वह चन्द की शरण में जाकर पृथ्वीराज से पति का शव दिलवाने की विनय करती है। चन्द के समक्ष जीवन-दर्शन की उसके द्वारा की गई व्याख्या कर्त्तव्य की प्रेरणा देने वाली है। वह अपने तर्कों से चन्द को प्रभावित कर लेती है। वे उसके साथ पृथ्वीराज से उसके पति का शव दिलवाने जाते हैं। सती होने का श्रृङ्गार किये हुए वह पृथ्वीराज को इस प्रकार लगती है मानो काल ने अपने हाथों से उसे पकवान की तरह राँध दिया हो—

"अंतकु कर रंध्धामु त्रइग्गुण त्रिय-तनु लिष्षउ।"

उसका प्रसङ्ग पृथ्वीराज के कन्नौज जाने की पृष्ठभूमि बन जाता है क्योंकि पृथ्वीराज इसी शर्त पर शव देना स्वीकार करते हैं कि चन्द उनको कन्नौज ले जाएगा। शव को पाकर कयमास की स्त्री सती हो जाती है।

चन्द

चन्द पृथ्वीराज के राज-कवि होने के साथ-साथ उनके अभिन्न मित्र और प्रेरणा के स्रोत हैं। ऐसा लगने लगता है, जैसे चन्द के बिना पृथ्वीराज का कोई अस्तित्व ही न हो।

चन्द सिद्ध पुरुष थे उनको सरस्वती और महादेव की सिद्धि प्राप्त थी। कयमास-वध की सारी घटना सरस्वती उनको स्वप्न में बतलाती है। परन्तु वे अपनी सिद्धि-साधना से उनको अपने समक्ष प्रत्यक्ष कर लेते हैं। पृथ्वीराज-रासो में कयमास-वध के अनन्तर ही चन्द कथानक में आते हैं। आखेट से लौटकर पृथ्वीराज सभा जोड़ते हैं। चन्द राज-सभा में आकर उनको आशीर्वाद देते हैं:—

"सकल सूर बोलिव सभ मंडिय ।
आसिष जाइ दीघ कवि चंडिय ।।"

यहाँ चन्द की स्पष्टवादिता और निर्भीकता प्रकट होती है। पृथ्वीराज उससे कयमास के विषय में प्रश्न करते हैं :—

"हठि लग्गउ चहुवान नृप, अँगुलि मुषह फणिंदु ।
तिहुपुरि तुअ मति संचरइ, सु कहे वनइ कवि चन्दु ।।"

पृथ्वीराज चन्द से प्रश्न करने हुए हठ पकड़ जाते हैं। उनका हठ पकड़ना साँप के मुख में उँगली देना था। वे चन्द के काव्य को निकम्मा कहते हुए उसको प्राप्त महादेव की सिद्धि को भी ललकारते हैं :—

"कहा भुजङ्ग कहा उदे सुर, निकमु कव्व कवि षंडि ।
कइ कयमास वताहि मो कह हर सिद्धी वर छंडि ।।"

इस ललकार को सुनकर चन्द का स्वाभिमान और दृढ़ विश्वास जागृत हो जाता है। वे उत्तर देते हैं कि चन्द महादेव की सिद्धि का वर तभी छोड़ सकता है, जब शेष धरणी को छोड़ दें, शिव विष खाना छोड़ दें और सूर्य अपने ताप को छोड़ दे :—

"जउ छंड़इ सेसह धरणि, हर छंडइ विष कन्द ।
रवि छंडइ तप ताप कर, तउ वर छंडइ कवि चन्द ।।"

चन्द जैसे स्पष्टवादी और साहसी ही पृथ्वीराज को प्रत्युत्तर दे सकता था। चन्द सब कुछ जानता है। परन्तु एक ओर राजा का गोप्य रहस्य प्रकाशित होने तथा दूसरी ओर राजाज्ञा के उल्लंघन के असमंजस में पड़ जाता है :—

"सेष सिरूप्परि सूर तर, जइ तुच्छइ नृप एस ।
दोहूँ बोलि मंडन मरनु, कहइ तउ कव्वु कहेस ।"

पृथ्वीराज का हठ है कि—"तिहुँ पुरि तुअ मति संचरइ सु कहे वनई कवि चन्दु ।" अतः चन्द पृथ्वीराज द्वारा कयमास-वध की घटना प्रकाशित कर देता है और भरी सभा में घटना को प्रकाशित करके पृथ्वीराज से प्रश्न करता है कि इस प्रलय जैसे भयानक कार्य से आपको क्या मिलेगा :—

"इमि जंपइ चंद विरद्दिया ।
सु कहा निमट्टिहि इह प्रलउ ।।"

पृथ्वीराज के दोष का उद्‌घाटन करना तथा उस जैसे उग्र-प्रकृति सम्राट को मार्ग पर रखना चन्द ही का काम है।

चन्द का प्रभावशाली व्यक्तित्व पृथ्वीराज पर छाया हुआ है। पृथ्वीराज की कीर्ति और शौर्य का बहुत कुछ कारण चन्द ही है। छन्द को पृथक करके पृथ्वीराज को देखा ही नहीं जा सकता।

चन्द अपने तर्क और उक्तियों से पृथ्वीराज को जयचन्द से बदला लेने और कन्नौज जाकर युद्ध करने के लिए उद्यत कर देते हैं। पृथ्वीराज का कन्नौज जाने का दृढ़-संकल्प देखकर वे आनन्द विभोर हो जाते हैं :—

"आनंदउ कवि चन्दु जिय, नृप किय संच विचार।
मन गरुअर सिर हरुअ हर, जीवन हरुअ सिरभार॥"

'कयमास-वध' के अन्त में चन्द का कथन उनके चरित्र को प्रकाशित कर देता है :—

"धरि वरु पंगु प्रगट्ट अरु थट्ट विहंडिहइं।
इति उपहास विलास न प्रान पमूकिहइं॥"

पृथ्वीराज

'कयमास वध' में पृथ्वीराज का चरित्र संयोगिता के विरह-ताप में जलते हुए विरही के रूप में सामने आता है। उनको अपने प्रति संयोगिता के प्रेमानुष्ठान के सम्बन्ध में चर से पता लग चुका है। साथ ही उसे यह भी पता चलता है कि जयचन्द ने राजसूय में उसकी स्वर्ण-प्रतिमा दरवान के स्थान में स्थापित की है। उसका चित्त अशान्त हो जाता है। इस मानसिक ताप से जी को बहलाने के लिए वह आखेट में रहने लगता है :—

"तिहि तप आषेटक भमइ, थिर न रहइ चहुवान।
वर प्रधान जुग्गिन पुरह, धर रष्वइ परवान॥"

उसने राज-काज प्रधानामात्य कयमास को सौंप दिया है। इस मानसिक असंतुलन की स्थिति में ही पृथ्वीराज उस प्रधानामात्य कयमास का वध करते हैं, जिसने किसी समय भीम चालुक्य जैसे प्रचण्ड शत्रु को पराजित किया था। यदि पृथ्वीराज की यह असंतुलित मानसिक स्थिति न होती, तो शायद वे कयमास को इतना कठोर दण्ड न देते।

पृथ्वीराज शौर्य के अवतार और उग्र प्रकृति के हैं। उनके शौर्य, साहस और पराक्रम का वर्णन करते हुए चन्द कहते हैं :—

"भूकंपं जयचन्द राय कटके शंकापि न ग्यायते।
सं साहिस्स सहाबसाहि सकलं इच्छामि युद्धाइने ॥
सिद्धं चालुक चाइ मन्त्र गहने दूने सरे विस्वासरे।
अग्यान चहुआन जांन रहियं दैयोऽयि रक्षा करे ॥"

क्रोध के समय पृथ्वीराज रौद्र-रस की मूर्ति ही बन जाते हैं। पटरानी की भेजी हुई दासी उनको उठाती है और पत्र पढ़कर सुनाती है। कयमास की विलास-क्रीड़ा का प्रसङ्ग सुनते ही अत्यधिक क्रोध में उनके हाथों में वाणावलि शोभा देने लगती है :—

"बानावरि दुहु बाह रोस रिस दाहियउ ॥"

इसी क्रोध के आवेग में उनकी मुठ्ठी और दृष्टि डोल जाती है और पहला लक्ष्य चूक जाता है :—

"मुठ्ठि दिठ्ठि रिस डुलिग चुक्कि,
निक्करिग एक सर।"

पृथ्वीराज राजनीतिज्ञ हैं। वे बिना साथ की सेना और साथियों को सूचना दिये हुए वन से आते हैं और कयमास का वध कर उसको वहीं गड़वा कर पुनः वन को लौट जाते हैं। वे इस प्रकार राजनीतिक रहस्य को छिपाना चाहते हैं।

पृथ्वीराज को अपनी कीर्ति का गान सुनने की अभिलाषा है। वे कहते हैं :—

"कहि कवि विजय साह जिह डंडिय ॥"

× × ×

"वछिय कीत्ति बोलिय वयन ढिल्ली पुरहु नरिंद ॥"

पृथ्वीराज उदार और दयार्द्र भी हैं। मृत्यु के हाथों पकवान के समान रांधी हुई कयमास की स्त्री को देखकर वे दयार्द्र हो जाते हैं।

अन्त में पृथ्वीराज के चरित्र में परिवर्तन होता है। उनकी मानसिक संघर्ष की स्थिति समाप्त हो जाती है। वे चन्द के गले लगकर रोते हैं और उपहास-पूर्ण जीवन का अन्त करने के लिए प्राणों तक का उत्सर्ग करने का संकल्प करते हैं :—

"दोइ कंठ लग्गिय गहन, नयनह जल गल न्हांनु।
अव जीवन वंछिहि अधिक, कहि कवि कोन सयानु ॥"

पृथ्वीराज में युद्धोत्साह जागृत हो जाता है। वे जयचन्द की नगरी में रण-तांडव करने को उद्यत हो जाते हैं :—

"अब उपाय सुझ्झउ एक संच्यउ।
सुनि कवि मरनु टरइ नवि रंच्यउ।
समर तिथ्य गंगह जल षंच्यउ।
अवसरि अब स पंग घर नंच्यउ ॥"

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि पृथ्वीराज का चरित्र वीरता की एक अनुपम और अद्वितीय गाथा है, परन्तु उसके साहस-शौर्य और कीर्ति के निर्माण में चन्द का अस्तित्व भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।

६

उद्देश्य और संदेश

प्रश्न १४—कयमास-वध में प्रतिपाद्य उद्देश्य, सन्देश और प्रयोजन की तर्क संगत मीमांसा कीजिए।

उत्तर—प्रतिपाद्य विषय और उद्देश्य।

'कयमास-वध' 'समय' की प्रतिपाद्य विषय-वस्तु पृथ्वीराज द्वारा प्रधानामात्य कयमास का वध है। इस घटना के द्वारा चन्द ने निम्न सन्देश उद्देश्य और प्रयोजन स्पष्ट करना कहा है—

१. पृथ्वीराज के प्रबल पराक्रम और शौर्य की अभिव्यक्ति।

२. विलास-पूर्ण जीवन की व्यर्थता और उसका दुष्परिणाम।

३. जीवन की अनित्यता।

पृथ्वीराज के प्रबल पराक्रम और शौर्य की अभिव्यक्ति

'कयमास-वध' में पृथ्वीराज के प्रबल पराक्रम और शौर्य की सफल व्यंजना हो जाती है। यद्यपि प्रारम्भ में जयचन्द के द्वारा किये हुए अपमान और संयोगिता के विरह-ताप में उसकी मानसिक स्थिति अस्थिर हो रही है, परन्तु उसका प्रबल पराक्रम उसी प्रकार उद्दीप्त है। कयमास द्वारा कर्तव्य-च्युत होकर विलास-मग्न होने के समाचार से उसका क्रोध उद्दीप्त हो जाता है और उसकी दोनों भुजाओं में वाणावलि शोभित होने लगती है। दासी के द्वारा उसका जगाया जाना ऐसा लगता है मानो शेषनाग को उसकी पत्नी ने जगाया हो—

"बानावरि दुहु बाह रोस रिस दाहियउ।
मनहु नागपत्ति पतिनि अप्प जगावियउ॥"

चन्द ने पृथ्वीराज के प्रबल पराक्रम और शौर्य को प्रकट करने में कमी नहीं उठा रखी। जिस जयचन्द की सेना के चलने से भूकंप होता था, किन्तु पृथ्वीराज ने उसकी तनिक भी शंका नहीं की। शाहबुद्दीन से उसने सारे युद्ध साहस के साथ लड़े। चालुक्य राज भीमदेव को जब उनके मुख्य मंत्री कयमास ने बन्दी बनाया, तब वे दूर विस्वासर प्रदेश में थे। वे भीमराज को कुछ भी नहीं गिनते थे। ऐसे प्रबल पराक्रमी पृथ्वीराज को कयमास न जान पाया अतः दैव ही उसकी रक्षा करे—

"भूकंपं जयचन्द राय कटके शंकापि न ग्यायते।
सं साहस्सि साहबसहि सकलं इच्छामि युद्धाइने।
सिद्धं चालुक चाइ मन्त्र गहने दुरे स विस्वासरे।
अग्यानं चहुआन जांन रहियं दैयोऽपि रक्षा करे॥"

इसी शौर्य के साथ पृथ्वीराज चालुक्य भीम को बाँधने वाले कयमास का वध करते हैं।

जयचन्द ने जो अपमान किया है, उसके कारण पृथ्वीराज के हृदय में क्रोध की ज्वाला धधक रही है। उनका शौर्य उनको जयचन्द की राजधानी में ही जाकर उससे युद्ध करने को ललकारता है—

"जबह राइ जानइ संमुह हुअ।
तब अंगमउं समर दुहुनि भुअ॥"

वे जयचन्द की राजधानी में रण-ताण्डव करके प्राणोत्सर्ग तक करने का दृढ़ संकल्प करते हैं—

"अब उपाय सुभ्भ्झउ एक संच्यउ।
सुनि कवि मरनु टरइ नहिं रंच्यउ।
समर तित्थ गंगह जल षंच्चउ।
अवसरि अब स पंग घर नंच्यउ॥"

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि कयमास-वध में पृथ्वीराज का शौर्य और प्रवल पराक्रम अभिव्यक्त करने में चन्द को पूर्ण सफलता मिली है।

विलासपूर्ण जीवन की व्यर्थता और उसका कुपरिणाम

चन्द का दूसरा प्रयोग और उद्देश्य विलासपूर्ण जीवन की व्यर्थता और उसका कुपरिणाम सामने लाना है। कवि का यह उद्देश्य कथानक में आद्यांत

समाया हुआ है। कयमास का वध विलास-पूर्ण जीवन के कारण ही होता है। कवि प्रारम्भ में ही संकेत दे देता है कि कयमास कामांध हो रहा है। इसके कुपरिणाम से दैव ही उसकी रक्षा कर सकता है। कयमास रति-क्रीड़ा करता हुआ शिथिल हो जाता है। 'रतिपति मुच्छि अलुब्भि तन' की स्थिति में ही कयमास पृथ्वीराज के वाण का लक्ष्य बनकर विलास के कुपरिणाम को भोगता है।

कयमास ने किन-किन दुःखों को पाने के लिए क्या-क्या विलास किये। पृथ्वीराज पटरानी से कहते हैं—

"कि किं विलास गहियं किं किं दुष्षाय दुष्षाय।"

'कयमास-वध' के उपसंहार में चन्द ने विलासपूर्ण जीवन में प्राण-त्याग करने की अपेक्षा मृत्यु का वरण करना श्रेयस्कर वतलाया है—

"मरन लग्ग विधि हथ्थु तथ्थु कवि उच्चरिउ।
धरि वरु पंगु प्रगट्ट अरु थट्ट विहंडिहइं।
इत उपहास बिलास न प्रान पमूकिहइं॥"

'कयमास-वध' में कवि को विलासपूर्ण जीवन की व्यर्थता तथा उसका कुपरिणाम दिखलाने में पूर्ण सफलता मिली है।

जीवन की अनित्यता

कयमास-वध में चन्द ने जीवन और मृत्यु का दार्शनिक विवेचन किया है। कयमास की स्त्री के निम्न कथन में जीवन की नश्वरता का वड़ा ही सटीक और दार्शनिक विवेचन हुआ है। जीवन कितना दुःखमय और नश्वर है। मनुष्य माता के गर्भ में निवास करता है और नौ मास की अवधि पूरी होने पर जन्म धारण करता है। वह एक क्षण को यदि संसार में अनुरक्त होता है, तो दूसरे ही क्षण रुदन करता है। वह एक क्षण मौन रहता है, तो दूसरे ही क्षण हँसने लगता है। कच, त्वचा, और दाँतों के झंझट उसे व्यथित किये रहते हैं—

"मातु गब्भ बास करिवि जंम वासर वसि लहगउ।
षिन लग्गइ षिन रुदइ मुदइ षिन हसइ अभग्गउ।
वपु विसेस वढ्ढिअउ अंत डढ्ढइ डर डरयउ।
कच, तुचा दंत ज रार धीर किम उब्बरयउ॥"

यहाँ जीवन की अनित्यता विराग-परक होकर भी पलायनवादी नहीं बनती अपितु जीवन का मोह छुड़ाकर कर्म-पथ पर अग्रसर करती है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कयमास-वध में कवि का उद्देश्य विलासी जीवन का कुपरिणाम दिखाकर और जीवन की नश्वरता सामने लाकर पृथ्वीराज का प्रवल-पराक्रम पुनः आगृत कर उसे कन्नौज-युद्ध के लिए सन्नद्ध करना है। रस-प्रयोजन और उद्देश्य की अभिव्यक्ति में उसे पूर्ण सफलता मिली है।

७
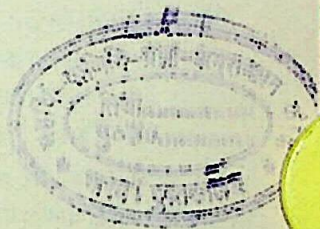
नामकरण और नायक

प्रश्न १५—नामकरण को दृष्टि में रखते हुए कयमास-वध में नायक-निर्णय कीजिए।

उत्तर—कयमास-वध' महाकाव्य 'पृथ्वीराज रासो' की एक अवान्तर घटना है। 'पृथ्वीराज रासो' के नायक पृथ्वीराज चौहान हैं। परन्तु यदि पाठकों की दृष्टि में 'पृथ्वीराज रासो' न रहे तो केवल 'कयमास-वध' के आधार पर उनके सामने यह प्रश्न उपस्थित हो जाता है कि वे 'कयमास-वध' का नायक पृथ्वीराज को माने या कयमास को।

कयमास को नायक मानने के कारण

'कयमास-वध' की मुख्य घटना कयमास का वध है। अतः घटना के आधार पर नामकरण सार्थक है। सारी घटनावली कयमास को ही केन्द्र बनाकर घूमी है। पृथ्वीराज के वन में आखेट शिविर में रहने की अवधि में कयमास राजधानी का शासन-सूत्र चलाता है। वह वीर और पराक्रमी भी इतना है कि गुर्जर-नरेश चालुक्य भीमदेव को पराजित करता है। किन्तु अधिकार-सत्ता पाकर कर्त्तव्य विमुख होकर अन्तःपुर की करनाटकी दासी के आकर्षण में फँस जाता है। वह उसके साथ शय्यागत होकर रति-क्रीड़ा में निमग्न होता है। इसके कुपरिणाम स्वरूप पृथ्वीराज उसका वध करते हैं। इसके पश्चात् कथानक में सती होने को उद्यत उसकी पत्नी का प्रसंग आता है, जो अन्त तक चलता है। उपसंहार में पति का शव पाकर वह सती हो जाती है।

इस प्रकार सारी घटना का केन्द्र कयमास ही रहा है। उसी के नाम से कवि ने प्रस्तुत 'समय' का नामकरण किया है। अतः कयमास को 'कयमास-वध' का नायक मानना चाहिए।

पृथ्वीराज ही कथानक के नायक हैं

समस्त घटना कयमास से सम्बन्धित होने के कारण भी कयमास कथानक का नायक नहीं है। प्रथम तो 'कयमास-वध' पृथ्वीराज रासो की एक अवान्तर घटना है, जिसका संघटन कवि ने पृथ्वीराज के कन्नौज पर आक्रमण करने की पृष्ठभूमि के रूप में किया है। दूसरे कथानक में आद्यान्त पृथ्वीराज की महत्वपूर्ण स्थिति वनी रहती है। प्रारम्भ में पृथ्वीराज अस्थिर चित्त लेकर सामने आता है। वह कयमास को उसकी विलासिता का दंड देता है। पृथ्वीराज में असंतुलित मन की चंचलता अवश्य है, जो कथानक के अन्त में दूर हो जाती है और उसका नायकोचित वीर दर्प जागृत हो जाता है। वह जयचन्द की राजधानी जाकर रण-तांडव करने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ बनता है—

"जवह राइ जानइ संमुह हुअ।
तव अंमगउं समर दुहन भुअ॥"

× × ×

"सुनि कबि मरनु टरइ नवि रंच्यउ।
समर तिथ्थ गंगह जल संच्यउ॥"
"अवसरि अब स पंग धर नंच्यउ।"

अतः सर्ग का नाम 'कयमास-वध' होते हुए भी कयमास कथानक के नायक नहीं है। कथानक के नायक पृथ्वीराज चौहान हैं। कयमास-वध घटना पृथ्वीराज के कन्नौज-गमन, संयोगिता-हरण और जयचन्द से युद्ध के लिए पृष्ठभूमि मात्र है। कयमास के नायकत्व के सम्बन्ध में निम्न तर्क दिये जा सकते हैं।

१. समय (सर्ग) का नाम कयमास के नाम पर है।
२. कयमास-गुर्जर नरेश चालुक्य भीमदेव को बन्दी बनाने वाला वीर है।
३. वह राजधानी का अधिकार प्राप्त करता है।

उपर्युक्त तीनों तर्क कयमास को नायकत्व का पद प्रदान नहीं कर पाते। जहाँ तक कृति के नामकरण का प्रश्न है, कवि ने कथानक की मुख्य घटना के

आधार पर नामकरण उपयुक्त किया है, परन्तु यह घटना पृथ्वीराज के चरित्र को प्रभावित करती है। मानसिक अस्थिरता के कारण ही पृथ्वीराज कामांध कयमास का वध करते हैं। कयमास कथानक में प्रत्यक्ष रूप में कहीं भी कार्य-कलाप करता हुआ नहीं दिखाई पड़ता। वह अपनी कामांधता से कर्त्तव्य-च्युत होकर पृथ्वीराज के द्वारा मृत्यु को प्राप्त होता है। इस घटना के कर्त्ता भी पृथ्वीराज ही रहते हैं। अतः घटना के आधार पर कयमास नायक नहीं ठहाराया जा सकता।

कयमास प्रवल पराक्रमी अवश्य है। वह गुर्जर-नरेश भीमदेव जैसे महा-प्रतापी राजा को पराजित कर वन्दी वना लेता है और पृथ्वीराज उसकी शक्ति और क्षमता पर विश्वास करके उसे राजधानी की रक्षा सौंपते हैं। परन्तु अपनी कामांधता के कारण वह इस उत्तरदायित्व को निवाहने में भी समर्थ नहीं हो पाता। फिर दिल्ली की रक्षा का भार उसको पृथ्वीराज द्वारा दिया हुआ है, जो कि यथार्थ में नायक हैं, अतः कयमास कथानक का नायक का नहीं है।

पृथ्वीराज ही कथानक के नायक हैं। उनमें एक धीरोदात्त नायक के वताये गये समस्त गुण मिलते हैं। जयचन्द द्वारा अपमान तथा संयोगिता का प्रेमानुष्ठान उनके चित्त को कुछ समय के लिए अस्थिर अवश्य वना देता है। उनके प्रवल पराक्रम के अङ्गारों पर कुछ समय के लिये राख अवश्य पड़ जाती है, परन्तु कयमास-वध की घटना उसे उड़ा देती है और वे प्रवल पराक्रम के ज्वलन्त अंगारों के समान पुनः सामने आ जाते हैं। उनमें युद्धोत्साह जाग्रत हो जाता है। वे जयचन्द के सामने होकर दोनों भुजाओं से उससे द्वन्द्व करने को उद्यत हो जाते हैं— '

"जबह राव जानइ संमुह हुअ।
तन अंगमउं समर दुहुनि भुअ ॥"

वे जयचन्द से अपमान का बदला लेने के लिए प्राणों तक का उत्सर्ग करने को प्रस्तुत हैं। युद्ध-तीर्थ और गंगाजल उनका आह्वान करने लगते हैं। वे कन्नौज जाकर जयचन्द की भूमि में ही रण-तांडव करने का दृढ़ संकल्प करते हैं—

"अव उपाउ सुझ्झउ एक संच्यउ।
सुनि कवि मरनु टरइ नवि रंच्यउ।
समर तिथ्थ गंगह जल षंच्यउ।
अवसरि अब स पंग धर नंच्यउ ॥"

चन्द पृथ्वीराज में नायकोचित गुणों का उद्घाटन करते हुए कहते हैं—

"भूकंपं जयचन्द राय कटके शंकापि ग्यायते ।
सं साहिस्स सहावसाहि सकलं इच्छामि युद्धाइने ।
सिद्ध चालुक चाइ मंत्र गहने दूरे स विस्वासरे ।
अग्यानं चहुवान जांन रहियं दैयोऽपि रक्षाकरे ॥"

जिस जयचन्द की सेना के चलने से पृथ्वी डोलने लगती थी, उससे पृथ्वीराज को शंका तक नहीं होती थी। शाहवुद्दीन से उसने युद्ध साहस के साथ किये थे और कई बार उसे वन्दी वनाकर दंडित करके छोड़ा था। उसके मंत्री कयमास ने जव गुर्जर-नरेश चालुक्य भीमदेव को वन्दी वनाया था, उस समय वे वहुत दूर विस्वासर प्रदेश में थे। अर्थात् उनको अपने प्रवल पराक्रम के सामने भीमदेव की किंचित भी चिन्ता नहीं थी।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कयमास के नाम पर ही कृति का नामकरण होने पर भी उसे कथा का नायकत्व प्राप्त नहीं होता। उसके वध की घटना पृथ्वीराज के प्रवल पराक्रम और शौर्य को उद्दीप्त करने में सहायक है। अतः पृथ्वीराज ही कथानक के नायक हैं और उनमें धीरोदात्त नायक के समस्त गुण मिलते हैं।